म हा दे वी

विचार और व्यक्तित्व

महादेवी जी के संबंध में विश्वम्भर 'मानव'
को लिखे गए शिवचंद्र नागर के पत्र

●

शिवचंद्र नागर एम० ए०

किताब महल, इलाहाबाद

समर्पण

प्रिय बहिन

फ़िलीस मेरिया को

जिन्होंने अपनी हँसी तथा आँसुओं में भाग लेने का मुझे पावन अधिकार दिया; पर मेरे आँसुओं को जो सदैव अपनी प्रेरणा और स्नेह के आँचल से पोंछती ही रहीं।

आमुख

किसी कागज पर अनजाने खींची हुई रेखाओं को यदि कोई चित्र की संज्ञा दे दे, तो उन रेखाओं को खींचने वाला हर्ष की अपेक्षा आश्चर्य में अधिक डूब जायगा। ६ मई १६४६ को स्थायी रूप से प्रयाग आ जाने पर एक दिन संध्या समय चाय पीते-पीते 'मानव' जी ने मुझसे कहा : तुम्हारे पत्र छपने जा रहे हैं। मैं समझा नहीं। इस पर उन्होंने मुझे बताया : तुम्हारे पत्र मैं नष्ट नहीं कर सका। उन सब को एक साथ पढ़ने पर मुझे लगा उन में अनायास ही महादेवी जी के विचारों और उनके व्यक्तित्व का एक चित्र-सा खिंच गया है। यह बात सुनकर मैं चुप रह गया। पर उस समय मेरा मन उस रेखा खींचने वाले की सी अनुभूति में डूब गया था।

मैंने तो तब भी उसे हँसी की ही बात समझी थी; पर आज तो वह बात सत्य बनकर आपके और मेरे सामने पुस्तक रूप में आ रही है। 'मानव' जी ने अपने वे पत्र जो उन्होंने इन पत्रों के उत्तर में मुझे लिखे थे, इनके साथ छपने को नहीं दिये। इसके लिये मैंने उनसे बहुत अनुरोध किया; पर मेरे अनुरोध को उनकी कठोरता से अंत में पराजित ही होना पड़ा। मैंने उनसे इसका कारण भी कई बार पूछा; पर मेरे प्रश्न को प्रति बार उनकी रहस्यमय मूकता से टकरा कर वापिस लौटना पड़ा और उनका वह मौन आज भी मेरे लिए रहस्य बना हुआ है।

ये पत्र कैसे और क्यों लिखे गये, यह बात सोचकर तो मैं स्वयं आश्चर्य में डूब जाता हूँ। सोचता हूँ जिस प्रकार कहानी कहने वाले के लिये सब से बड़ी प्रेरणा सहानुभूतिपूर्ण श्रोता का मिलना है,

उसी प्रकार पत्र लिखने वाले के लिये सबसे बड़ी प्रेरणा यही है कि जिसे वह पत्र लिख रहा है उसमें उसे एक ऐसा सहानुभूतिशील मन मिल जाये जिसमें वह अपनी आवाज़ की प्रतिध्वनि सुन सके, अपने भावों और विचारों की प्रतिकृति देख सके और अपनी दुर्बलताओं की धरोहर विश्वासपूर्वक रख सके, जिसका व्यक्तित्व एक ऐसा दर्पण हो जो पत्र लिखने वाले की चेतना की किरणों को कुंठित न कर दे; बल्कि उन्हें शत-सहस्रगुनी शक्तिशाली बनाकर लौटा दे। सौभाग्य से 'मानव' जी में मुझे ऐसा ही मन और ऐसा ही व्यक्तित्व अनायास मिल गया था। अतः इन पत्रों को लिखाने का सारा श्रेय उन्हें ही है।

इन पत्रों की केन्द्र-बिंदु निश्चित रूप से श्रीमती महादेवी वर्मा ही रही हैं, पर उनके साथ कहीं-कहीं अन्य साहित्यिकों के व्यक्तित्व की भी कुछ छोटी-मोटी झाँकियाँ आ गई हैं। मुझे उन साहित्यिकों के व्यक्तित्व का कुछ भाग विशेष परिस्थितियों, वातावरण और सीमाओं के अंतर्गत ही पढ़ने को मिला; अतः यदि मैं कोई बात उनके मन के प्रतिकूल कह गया होऊँ, तो विश्वास है वे उसे अपने विषय में आंशिक सत्य समझ कर उसे स्वीकार कर लेंगे।

जहाँ तक महादेवी जी के व्यक्तित्व और विचारों का संबंध है, वहाँ मैं तो केवल इतना ही कह सकता हूँ कि यह तो महादेवी जी के विराट व्यक्तित्व का केवल एक चित्र मात्र ही है। वह कैसा बन पड़ा है, यह आप लोगों के निर्णय का विषय है। जिस प्रकार वर्षा की सृष्टि में पवन का काम खाली इतना रहता है कि वह समुद्र से जल को उड़ा कर ले आता है पर उस वाष्पीभूत जल को फिर जल-कणों में परिवर्तित करा कर प्यासी धरा पर सुधा के मोती बरसाने का श्रेय गिरिमाला को ही है; इसी प्रकार इस पुस्तक के प्रणयन में मेरा काम तो केवल पवन का सा ही रहा है, बाकी श्रेय तो महादेवी जी और 'मानव' जी को ही मिलना चाहिये।

इस समय तो मैं उस भोले-भाले किसान की भाँति ही मूक रहना चाहता हूँ जो अपने खेत में लहलहाते अंकुरों को देखकर इस असमंजस में पड़ जाता है कि वह इस सुंदर उपज के लिये किस किस का कृतज्ञ हो—समुद्र का ? हिमालय का ? पवन का ? प्रकाश का ? या धरती का ?

अपनी वस्तु के विषय में मुझे तो कुछ भी कहने का अधिकार नहीं, पर 'मानव' जी ने एक दिन इसे एक ऐसे मंगल-कलश की उपमा दी थी जिसमें तीन व्यक्तित्वों के सुधारस की पावन त्रिवेणी का जल बंद हो। इस घट को आज आप सबके हाथों में सौंपते हुए मुझे निश्चित रूप से बड़ा हर्ष हो रहा है।

प्रयाग
माघ पूर्णिमा २००७

शिवचंद्र नागर

गलती सुधार

शुद्ध	अशुद्ध
तो अपना हाथ नहीं उठाया पर पंत जी ने उठा दिया। पृष्ठ ६२, पंक्ति ६	अपने हाथ से पकड़ कर पंत जी का हाथ ऊपर उठा दिया।
अनेको पृष्ठ ६५, पंक्ति २३	पचासों
सोक्रेटीज़ पृष्ठ ७६, पंक्ति २	"अरिस्टोटिल
खूब शान से रहते हैं। पुराने कायस्थ ज़मीदारों के से ठाट-बाट हैं। पृष्ठ ६२, पंक्ति ६	बन्दूक लेकर रोज चार पाँच चिड़ियाँ मार लाते हैं। उनके पैर बाँध कर टाँग कर घर ले आये। उनके पंख-वंख नोचे जाते हैं। फिर वे बनती हैं।"
बाबा पृष्ठ ६३, पंक्ति ५	पिता
दुनिया राई का पर्वत बना सकती है, पर जब राई ही न होगी तो पर्वत कहाँ से बन सकेगा। तिलों में से ही तेल निकल सकता है, बालू में से नहीं। पृष्ठ ६७, पंक्ति १४	एक बार जब पन्त यहाँ रहते थे तो उन्होंने मेरे ऊपर एक कविता लिखी और सरस्वती में उसे निकलवा दिया। बस फिर क्या था व्यर्थ का तूफान मच गया, लोग कहने लगे पन्त महादेवी को प्रेम करते हैं।"
बच्चन जी लिख तो रहे हैं पर— पृष्ठ ११७, पंक्ति १६	"बच्चन जी अब गिर रहे हैं।

विचित्र से पृष्ठ १६०, पंक्ति १३	मुसल्ला संस्कार
'मेरी सूरत कैसी है ?' पृष्ठ १६१, पंक्ति १४	(इसे काट दीजिये)
(i) उनकी मानसिक अस्वस्थता बढ़ गई है। पृष्ठ २१८, पंक्ति २	वे बहुत पागल हो गये हैं।
(ii) गरम होगा। पंक्ति ७	ऐसा ही है।
ले तू खुद देख ले! एक टूटा हुआ शीशा पड़ा था, उसे लाती हूँ देखती हूँ, मिलता भी है या नहीं।" इतना कह कर पृष्ठ २३१, पंक्ति १६	कंघा मुझे दो मैं निकालती हूँ।" कंघा मैंने उन्हें दे दिया और उन्होंने सिर की माँग ठीक से निकाल दी फिर बोलीं, "एक टूटा हुआ शीशा पड़ा तो था उसे लाती हूँ।"

१

३० ए० बेली रोड।
इलाहाबाद
१५।१०।४६

आदरणीय 'मानव' जी,

मैं यहाँ सकुशल आ गया हूँ, पर अभी मेरा मन यहाँ नहीं लग रहा। घर घर ही है, बाहर बाहर ही। सोचता हूँ यदि एक दिन बाहर भी घर हो जाये तो!

संध्याएँ तो यहाँ की भी सुन्दर होती हैं; पर आप जैसे सहृदय साहित्यिक तथा साहित्य-चर्चा के अभाव में यहाँ ऐसा कुछ भी नहीं कि मन और प्राण थोड़े से पलों के लिये भी जीवन के स्थूल धरातल से उठकर सूक्ष्म सौंदर्य की आलोक-सृष्टि में विचरण कर सकें। पता नहीं वह कौन सा रस और कौन सी प्रेरणा थी जिससे हम दोनों महादेवी जी के काव्य और जीवन के संबंध में घंटों बातें करते रहते थे—डूबे-डूबे से खोये-खोये से, और विवश होकर उठते समय यही मन करता था कि क्या ही अच्छा होता यदि इस चाय वाले को अपनी दूकान बंद न करनी पड़ती। लगता है ये संध्याएँ जिनकी पलकों में हमने बात-बात में एक स्वप्नलोक का-सा निर्माण कर लिया था अब नहीं लौटेंगी।

मैं महादेवीजी से दो बार मिलने जा चुका हूँ, पर दोनों बार ही भेंट नहीं हो पायी। अब तो मैंने अपना मन ऐसा बना लिया है कि जब मैं इनसे मिलने जाता हूँ तो अंतर में मिलने की आशा लेकर नहीं जाता। इसलिये यदि इनसे भेंट नहीं हो पाती तो उससे न तो दुःख ही होता है न क्षोभ और पछतावा ही। एक दिन जब मैं प्रयाग में आया ही आया था तो विश्वविद्यालय में अपना नाम लिखाकर सब से

पहले इन्हीं से मिलने गया था। इन्होंने फिर दूसरे दिन आने के लिये कहा। दूसरे दिन गया तो तीसरे दिन की संध्या को बुलाया और तीसरे दिन संध्या को पहुँचा तो फिर चौथे दिन प्रभात के लिये कह दिया। तीसरे दिन की संध्या को जब मुझे इनसे बिना मिले लौटना पड़ा तो मेरी आँखों में आँसू आ गये थे। आशा है ऐसे आँसू फिर कभी नहीं आयेंगे।

इस मिलने न मिलने के विषय में अब मैंने अपना सोचने का क्रम बदल दिया है। मैं सोचता हूँ हम उनसे अपने संतोष अथवा अपने काम के लिये मिलने जाते हैं। ऐसे में यदि वे नहीं मिलतीं तो हमें दुःख, क्षोभ अथवा पछतावा क्यों होना चाहिये? वे कलाकार हैं। हम बाहर खड़े-खड़े कैसे जान सकते हैं कि वे किस 'मूड' में हैं। किसी से भी मिलकर बात-चीत का रस और सुख इसी में निहित है कि मिलनेवाला तथा मिलने के लिए आने वाला दोनों अपने मानसिक सामंजस्य के सर्वोत्तम पलों में हों। मेरा विचार है कि कलाकार जीवन और जगत के सौन्दर्य का पारखी होने से सबसे धनी प्राणी होता है। उससे मिलकर भी यदि कोई अतृप्त-सा लौटता है तो समझ लेना चाहिये कि अवश्य ही उनकी भेंट में कहीं असामंजस्य की किरकिरी रह गयी है। और फिर मिलने के लिये कलाकार अकेला है और उससे मिलने आने के लिये अनेक; जिनमें से बहुत से तो केवल समय नष्ट करने के लिए चले आते हैं।

तीसरे दिन संध्या को इनसे बिना मिले लौटने की दुखानुभूति में आँसू अवश्य आ गये थे; पर चौथे दिन प्रभात में इनसे मिलकर लौटने पर जो सुखानुभूति हुई वह उस दुखानुभूति से कई गुनी थी। उस मिलने को मैं भेंट नहीं कह सकता। वह दस पंद्रह मिनट का परिचय मात्र ही था। पर आज इतने दिनों बाद भी मुझे लग रहा है कि पंद्रह मिनट का वह परिचय भी बहुतों की कई घंटों की भेंट से बहुत मूल्यवान था।

यह बात सत्य है कि आगन्तुकों से मिलने न मिलने के लिये न तो महादेवी जी का कोई सिद्धान्त ही है और न मिलने के लिये कोई नियत समय ही। यह सब उनकी सुविधा-असुविधा पर ही निर्भर करता है। कुछ भी हो, कलाकार को सामान्य व्यक्तियों के धरातल पर उतर कर सामान्य नियमों में न तो बाँधा ही जा सकता और न सामान्य दृष्टि से देखा ही जा सकता है। मैं समझता हूँ कल परसों में अवश्य ही उनसे भेंट हो सकेगी और उसी समय में आप की पुस्तक का पैकेज उन्हें दे सकूँगा।

हाईस्कूल में मैंने महादेवीजी की 'नीरजा' पढ़ी थी। तब से पता नहीं क्यों अनजाने ही उनके काव्य से एक मोह सा होगया है और उनके व्यक्तित्व के प्रति सहज जिज्ञासा-भाव को जन्म मिला है। इसके भी पूर्व यहाँ से पाँच सौ मील दूर एक गाँव के मिडिल स्कूल में अपनी पाठ्य-पुस्तक में मैंने इनका लिखा हुआ एक लेख 'बद्रीनारायण की यात्रा' पढ़ा था। उसमें एक वाक्य आया था : स्वर्ग के उत्तुंग चरणों से ही नरक की अतल गहराई बँधी हुई है। यह वह वाक्य है जिसने मेरा परिचय महादेवी नाम से पहले-पहल कराया था। और यह वाक्य आज भी मुझे उतना ही सारगर्भित और सुन्दर लगता है जितना आज से छह साल पहले कभी लगा था। उस समय उस गाँव से मैं इस कला और साहित्य के केन्द्र प्रयाग में पहुँचने की कल्पना भी नहीं कर सकता था और महादेवी जी से मिलने का तो स्वप्न भी मेरी गाँव के वातावरण में ढली हुई किशोरावस्था की सीमित दृष्टि के लिये अत्यंत विशाल था। पर जीवन की महत्त्वाकांक्षा, उसके संघर्ष और शिक्षा की भूख ने मुझे यहाँ ला पटका है और मेरे लिये यह बड़े सौभाग्य की बात है कि आज मैं महादेवी जैसे महान् कलाकारों के नगर में रह रहा हूँ।

स्नेहाकांक्षी
शिवचन्द्र नागर

२

३० ए० बेली रोड
इलाहाबाद
२८।१०।४६

आदरणीय 'मानव' जी,

कई दिन से आप मेरे पत्र की प्रतीक्षा में होंगे, किन्तु मैं इधर महादेवी जी के उत्तर की प्रतीक्षा में था। इस बार भी उनके यहाँ कई बार जाने के उपरांत भेंट हो सकी।

महादेवी जी के निवास-स्थान पर मैं २० ता० की संध्या को गया। परिचारक ने बताया दिन में उन्हें ज्वर आ गया था; अतः इस समय तो नहीं, पर कल सुबह को मिल सकेंगी। मैं २१ के प्रभात काल में ६ बजे फिर गया। २० मिनट की प्रतीक्षा के उपरान्त उनसे भेंट हो पाई। मैंने आपकी पुस्तक का पैकेज हाथ में दिया। सर्व प्रथम उन्होंने आपकी कुशल-क्षेम पूछी। मैंने कहा-ठीक हैं। "यह उनका नया प्रकाशन है न?" मैंने कहा, "हाँ?" पुस्तक खोली। कहा, "पत्र तो फिर पढ़ूंगी और तभी ठीक ठीक उत्तर दूंगी।" यह कह कर पत्र और पुस्तक दोनों को सोफे के एक ओर रख दिया। मैंने पूछा, "आपका स्वास्थ्य आजकल कैसा है?" बोलीं, "कुछ ठीक नहीं, कभी-कभी हल्का सा ज्वर आ जाता है।" "क्या आपकी कोई नवीन रचना निकट भविष्य में देखने को मिलेगी?" "अभी तो ऐसी आशा नहीं करनी चाहिये; क्योंकि आजकल मैंने अपने स्वास्थ्य से समझौता कर लिया है।"

और तब मंगलाप्रसाद पारितोषिक की बात चल पड़ी। कहने लगीं, "अपने किये हुए पर कीर्ति या पुरस्कार की बात कभी भी मेरे मन में नहीं आयी। यही कारण है कि मैं अपने बारे में पढ़ती तक नहीं। कदाचित् मानव जी भी इसीलिये बुरा मान रहे हों। कुछ व्यक्तियों ने तो मुझ पर इसी लिये लिखना भी बन्द कर दिया है कि मैंने उनका लिखा हुआ कभी पढ़ा ही नहीं।" इसी प्रकार कुछ देर बातचीत चलती

रही। अंत में मेरे पूछने पर कि पत्र का उत्तर आप कब तक दे सकेंगी, बोलीं, "२७ की संध्या को मिलियेगा।"

आज २७ की संध्या थी।

ड्राइङ्ग रूम में डाक्टर उनका परीक्षण कर रहा था। मुझे १५ मिनट प्रतीक्षा करनी पड़ी। डाक्टर आजकल उन्हें इन्जेक्शन दे रहा है। उसने बताया है कि शरीर में कैल्शियम और विटेमिन 'बी' की कमी है। एक महीने तक इन्जेक्शन लेने होंगे।

आज की बातचीत में कुछ समीपता का सा अनुभव हो रहा था। मैंने पूछा, "आपने 'मानव' जी के पत्र का उत्तर लिख दिया क्या?"

बोलीं, "हाँ, तीन चार दिन हुए उनका एक पत्र और आया था। दो दिन हुए मैंने जवाब लिख दिया है।" मैंने पूछा, "आपको अपने उस गीत का अँग्रेज़ी अनुवाद कैसा लगा?" "दो तीन दिन से मेरी तबियत ठीक नहीं रही; अतः मैं उसे नहीं देख सकी। यही मैंने 'मानव' जी को भी लिख दिया है। कल परसों को पढ़ूँगी तो मैं आपको बताऊँगी।"

फिर 'नोआखली' के बारे में बात चल पड़ी। कहने लगीं, "दो तीन दिन से मेरे मन में एक बड़ी अशांति और उथल-पुथल मची हुई है। बंगाल तथा युक्त-प्रान्त के बुद्धिवादी वर्ग को इस समय कुछ करना चाहिये। इस समय कदाचित् इस मानसिक अशांति को शान्त करने के लिये मैं कुछ लिखती; पर आँखों से विवश हूँ और कविता डिक्टेट करायी नहीं जा सकती।" फिर कहने लगीं, "बंगाल का स्त्री-समाज बहुत पीछे है। पर यदि वे पशुबल का शारीरिक बल से विरोध नहीं कर सकतीं, तो उन्हें आत्मिक बल से करना चाहिये। बंगाली लड़कियों में कला तो है। कला की प्रवृत्ति उनमें ऐसी है कि नृत्य और संगीत बहुत जल्दी 'पिक अप' कर लेती हैं, तूलिका पर भी उनका हाथ अच्छा चलता है; पर होती हैं बिल्कुल लता जैसी।"

प्रसंग को बदलते हुए मैंने कहा, "पंत और निराला तो बदल गये। उन्होंने अपना पथ बदल दिया; पर आप अब भी उसी पथ पर हैं।"

उस पर बोलीं, "भाई, मैं क्या बदलती। मुझ में कोई चीज बाहर की नहीं आयी थी। मैंने तो आज से १० साल पहले जो लिखा था वह आज भी सच है। पंत ने कामनामय सौंदर्य पर लिखा; पर जब उन्हें जीवन की विषमता का पता लगा, तो वे बदल गये। मेरे जीवन में तो कोई ऐसी बाहर की वस्तु थी नहीं। मेरा तो जो कुछ भी था, अन्तर्मुखी था। मैंने तो करुणा और स्नेह का अनुभव किया है। यदि मनुष्य करुणा को अपना धर्म बना ले और अपने स्नेह की परिधि में विश्व को समेटने का प्रयास करे, तो वह जीवन में सुखी रह सकता है।"

मैंने पूछा, "मानव जी ने 'रहस्य साधना' में आपके सम्बन्ध में लिखा है, 'वैदिक-काल से लेकर आज तक महादेवी जैसे असाधारण व्यक्तित्व की स्त्री लेखिका ने—ऐसी अतुल मेधाविनी दार्शनिक कवयित्री ने—इस भारत-भूमि में जन्म नहीं लिया।" इस कथन को यदि आप सच नहीं मानतीं तो कन्ट्राडिक्ट (Contradict) कीजिये।" बोलीं, "मैं अपने विषय में कुछ नहीं कह सकती; पर मीरा ने जो जैसा लिखा है, उसे मैं कभी भी नहीं पा सकती।"

इसी प्रकार डेढ़ घंटे बातचीत हुई। महादेवी जी का 'कमल' कुत्ता और 'गोधूली'···बिल्ली दोनों मर गये। एक दूसरी बिल्ली 'सुनयना' है। वह हम लोगों के बीच में आ गई थी। पहले मेरी गोदी में आ बैठी, फिर महादेवी जी के पास जा बैठी। महादेवी जी ने बड़े ही भावुक ढंग से बिल्ली से बातचीत की। बोलीं, "तू नहीं जानती सुनयना, मेरे हाथ में दर्द है, इन्जेक्शन लगा है, पर तू क्या जाने!"

अब मैं उनसे ६ नवम्बर को मिलूँगा।

मुरादाबाद के नवीन समाचार लिखियेगा। आजकल आपकी दिनचर्या क्या है? घर पर सब कुशल-पूर्वक होंगे। मकान का झगड़ा अभी चल ही रहा है क्या?

स्नेहाकांक्षी

नागर

३

३० ए० बेली रोड
इलाहाबाद
१७ । ११ । ४६

आदरणीय 'मानव' जी,

पत्र आपका यथासमय मिल गया था। मैं अपनी एक कहानी 'धज्जियाँ' और दूसरा एक अनुवाद 'बड़ी बहिन' भेज रहा हूं। 'धज्जियाँ' 'गल्प-एकादशी' के लिये है और 'बड़ी बहिन' पृथ्वीराज जी मिश्र को दे दीजियेगा। उन्होंने किसी अनुवादित कहानी को 'अरुण' में भेजने के लिये कहा था। 'धज्जियाँ' कहानी में आप संशोधन कर दीजियेगा और यदि ठीक समझें तो नाम भी बदल दीजियेगा। अपना परिचय स्वयं लिखने में संकोच तो होता है, पर आपका अनुरोध है; अतः लिखे दे रहा हूँ।

जन्म स्थान—कस्बा मीरापुर जिला मुज़फ्फर नगर।

जन्म तिथि—द्वितीय चैत्र की कृष्ण पक्ष द्वितीया।

पिता का नाम—पं० विशन चन्द्र नागर।

३०० वर्ष से उत्तरी भारत में आये हुए एक गुजराती परिवार में जन्म हुआ। जन्म के ठीक दो वर्ष बाद ही चैत्र कृष्ण द्वितीया को, जिस दिन सुबह को माता जी ने मेरे जन्म-दिवस का उत्सव मनाया था, उसी दिन संध्या को उनका सौभाग्य-सिंदूर पुछ गया, पिता जी का देहान्त हो गया। अपने पितृव्य पं० देवीचन्द्र व्यास की संरक्षता में जो संस्कृत के प्रकांड पंडित थे, मेरा लालन-पालन हुआ और बचपन से ही उन्होंने संस्कृत के श्लोक रटा-रटा कर शैशव मन में ही साहित्यिक भावनाओं का पोषण किया।

प्राथमिक शिक्षा गाँव में ही हुई, पर फिर मैं मुरादाबाद अपने बड़े भाई साहब के पास आ गया। उनका मुझ पर विशेष स्नेह था और है। गवर्नमेंन्ट कॉलिज से हाई स्कूल और इंटरमीडियेट पास

किया। साहित्य सम्मेलन की 'साहित्य-रत्न' परीक्षा पास की। अब प्रयाग विश्वविद्यालय में हूँ।

साहित्यः

प्रणय-गीत (गद्य काव्य) सन् १६४४ ई० में प्रकाशित

ज्योत्स्ना (कविता) सन् १६४५ ,, ,, ,,

अनुवाद :

श्री के. एम. मुंशी के

* १. किसका अपराध (उपन्यास)

* २. स्वप्न द्रष्टा (उपन्यास)

* ३. ध्रुवस्वामिनी देवी (नाटक)

* ४. शिशु और सखी (आत्म-कथा)

'गांधी -अभिनन्दन ग्रन्थ' के द्वितीय संस्करण में गुजराती विभाग का सम्पादन किया। प्रयाग विश्वविद्यालय के अर्थशास्त्र विभाग से प्रकाशित होने वाली 'अर्थशास्त्र मालिका' का इस समय सम्पादक हूँ।

इसमें बहुत कुछ बेकार है। कहानी संग्रह में परिचय के लिए आवश्यक अंश ले लीजियेगा।

मैंने सेवक राम को पत्र लिख दिया है। कल मैं और दो तीन पुस्तक-विक्रेताओं से मिला था। वे आपकी पुस्तक चाहते हैं पर कहते थे कि यदि आपके पास यहीं हों तो दे दीजियेगा। डाक खर्च देने के बाद हमें कुछ पड़ता नहीं। आप बड़े दिन की छुट्टियों में किसी के हाथ १० महादेवी की रहस्य-साधना १० खड़ी बोली के गौरव-ग्रन्थ और पाँच-पाँच 'अवसाद' और 'निराधार' भेज दीजियेगा। मुझे बहुत दुःख है कि मैं ऐक्समस की छुट्टियों में आपके दर्शन नहीं कर सकूँगा।

---

* ये अनुवाद किताब महल, इलाहाबाद,से प्रकाशित हो चुके हैं।

एक लम्बे व्यवधान के बाद आज सुश्री महादेवी जी से भेंट हुई। जब मैं उनके ड्राइंग रूम में घुसा तो एक परिवर्तन पाया। चारों कोनों पर रखी हुई मूर्तियाँ हटा दी गई थीं। सामने शीशे की अलमारी में भगवान कृष्ण की त्रिभंगी मूर्ति थी। एक ओर 'सरस्वती' की प्रतिमा थी। दोनों प्रतिमायें नीले पर्दों के बीच से दृष्टिगत होती थीं। सामने वाली दीवार पर दो मूर्तियाँ और थीं। एक महात्मा 'गांधी' की और दूसरी महात्मा 'ईसा' की। सोफे सब हटा दिये गये थे। कमरे का फर्श सुन्दर कालीनों से सजा हुआ था। एक ओर नीचे गद्दे थे और गद्दों पर सुनहरा कालीन। बैठने के स्थान के पीछे की ओर दो गोल मखमली खोल के तकिये थे। तकियों के नीचे ऐसा लगता था जैसे उन गद्दों पर दो व्यक्तियों के बैठने का स्थान हो। आगे एक फीट ऊँची टेबिल पर सुनहरी मखमली टेबुलपोश चमचमा रहा था। उस पर एक बिल्कुल सुनहरा कलमदान। कलमदान पर दो तीन सुन्दर क़लम। इससे यह पता लगता है कि महादेवी का ऐस्थेटिक सेंस (Aesthetic sense) और सेंस आव प्रपोरशन (sense of proportion) कितना बढ़ा चढ़ा है। सब कुछ देखकर मैंने यह अनुमान लगाया कि आज कोई बैठक होने वाली है। दो ही मिनट बाद महादेवी जी आगईं। उस समय वे बिल्कुल ऐसी लग रही थीं जैसे हलके धूमिल वातावरण में से चाँदनी हँस रही हो। बात यह थी कि उनके गले में एक ग्रे (Grey) रंग का शॉल पड़ा था। मैं उनको प्रणाम ही कर पाया था कि हँस कर कहने लगीं, "आज तो हमारी मीटिंग है।" उनकी हँसी में और इस वाक्य में ऐसा भाव था जैसे वे कह रही हों कि आज उनके पास बातचीत के लिये अधिक समय नहीं है। फिर भी वार्तालाप का स्रोत कहीं इन विवशताओं के पाषाणों में दब सकता था? मैंने कहा, "कौन सी मीटिंग और कब है?" कहने लगीं, "साहित्यकार संसद् की अन्तरंग कार्यकारिणी की मीटिंग है, आज दो बजे। पर अभी मैं गुप्त जी के साथ 'रसूलाबाद' संसद् के लिये

जमीन देखने जा रही हूँ।" पहले जब मैं उनसे मिला था तो मैं गुजराती-लेखक 'स्नेह रश्मि' की पुस्तक 'स्वर्ग और पृथ्वी' के अनुवाद की पांडुलिपि महादेवी जी को दे आया था। मैं चाहता था कि साहित्यकार संसद् से यह निकले। राजनारायण महरोत्रा तो १५ प्रतिशत रॉयल्टी देना चाहते हैं। साहित्यकार संसद् लेखकों की संस्था है, उनका भला चाहती है, २० प्रतिशत कम से कम देगी। महादेवी जी ने भी मुझसे कहा था कि हम २० प्रतिशत से कम और ३० प्रतिशत से अधिक नहीं देंगे। मैंने पूछा, "आपने मैन्यूस्क्रिप्ट (Manuscript) पढ़ी ?" बोलीं, "हाँ, मैंने पढ़ ली, मैं उसे आज अन्तरंग में रक्खूँगी और अन्तिम निर्णय एक दो दिन बाद दे सकूँगी।"

मैंने आपके पत्र के लिये कहा। कहने लगीं, "बड़ा आश्चर्य है! मैं तो मानव जी को दो पत्र लिख चुकी। एक तीसरा रजिस्ट्रार का अलग था।" मैंने कहा, "रजिस्ट्रार का पत्र तो उन्हें मिल गया, पर आपका कोई पत्र उन्हें नहीं मिला!" मैंने पूछा, "इंग्लिश अनुवाद के बारे में आपने क्या लिखा ?"

बोलीं, "मुझे कुछ अंश उसका बहुत पसन्द आया। मैंने उन्हें उसके बारे में भी लिखा था और लिखा था कि वे साहित्यकार संसद् मेंभी कुछ करें।" वे आपकी सेवायें साहित्यकार संसद् में चाहती हैं। पर कह रही थीं कि वे इसके नियम-बन्धन को मान सकेंगे या नहीं, जानती नहीं। मैं उन्हें इसका विधान भेज रही हूँ।

मैंने पूछा, "नोआखली के बारे में अब आप क्या सोच रही हैं ?" बोलीं, "मैं चाहती हूँ कोई व्यक्ति वहाँ जाये। उसे हम आने जाने तथा वहाँ रहने की सब सुविधायें तथा खर्च देंगे। हम चाहते हैं कि वह वहाँ की दशा का निरीक्षण कर हमें कुछ मौलिक साहित्य दे ?" मैंने पूछा, "वहाँ की ऐबडक्टिड (Abducted) गर्ल्स के बारे में आप का क्या विचार है ?" बोलीं, "वे तो बिल्कुल पवित्र हैं। भला सोचो तो यदि एक बुरा आदमी एक स्त्री को भ्रष्ट करता है तो यह उस स्त्री की लज्जा नहीं, यह तो मनुष्यता की लज्जा है।"

महात्मा गांधी की मूर्ति देखकर मुझे पुरानी बात याद आ गयी। मैंने पूछा, "आप कहती हैं कि जो भी मैंने लिखा है वह अपने अन्तर की बात लिखी है। मेरे जीवन में बाहर से कुछ नहीं आया। तो फिर महात्मा गांधी पर जब वे फास्ट (Fast) कर रहे थे, २१ कवितायें और २१ चित्र क्यों बनाये ?" इस पर ज़रा वे रुकीं, सँभली और बोलीं, "भाई, एक व्यक्ति पर झूठा आरोप लगाया गया हो, उसकी असत्यता सिद्ध करने के लिये उसने अपने प्राणों की बाजी लगा दी हो, वह कारावास में बन्दी हो, ऐसी दशा में वह बाहर की वस्तु नहीं रह जाता, परिस्थितियों ने उसे मेरे अन्तर की वस्तु बना दिया था। वह उस समय करुणा और स्नेह का पात्र था। मैंने कभी भी गांधी पर या किसी पर कोई काव्य नहीं लिखा। टैगोर की मृत्यु के उपरान्त उन पर एक कविता लिखी थी। उनके जीवित रहते हुए कुछ नहीं।"

बातचीत में एक जगह उन्होंने यह भी पूछा कि 'मानव जी आजकल क्या कर रहे हैं ?' मैंने कहा, "अब तो केवल साहित्य-सृजन ही में उनका समय बीतता है।" तो बोलीं, "बहुत ठीक है। एक व्यक्ति यदि केवल साहित्य-सृजन ही करे तो दस साल में वह अपना एक स्थान बना सकता है। दूसरी झंझटों में फँसकर हम ऐसा नहीं लिख पाते जैसा लिखना चाहते हैं।" इस पर मैं बोला, "पर आज की अवस्था ऐसी है कि केवल साहित्य-सृजन से रोटी की समस्या हल नहीं हो सकती।" तो बोलीं, "यदि लेखक स्वयं ही प्रकाशक भी हो, जैसे मानव जी हैं, तो फिर उसके लिये कोई कमी नहीं।"

फिर मैंने महादेवी जी से आपकी वह 'खिलाने पिलाने' की बात कह दी। बोलीं, "वह आयें तो !" हम बातचीत कर ही रहे थे कि इतने में श्री मैथिलीशरण गुप्त दो अन्य व्यक्तियों के साथ आ पहुँचे। महादेवी जी ने आगे बढ़कर उनका स्वागत किया। मैं महादेवी जी के पीछे था। 'गुप्त जी' को मैं प्रणाम भी न कर पाया था कि महादेवी जी मेरी ओर संकेत कर 'गुप्त जी' से बोलीं, "आपके एक दर्शनार्थी पहले से

ही मौजूद हैं।" इस पर मैंने उन्हें प्रणाम किया। उन्होंने भी बड़ी नम्रता से हाथ जोड़े। महादेवी जी अन्दर चली गईं। मैं बढ़कर गुप्त जी के पास आ गया। बोला, "मुझे आपके दर्शन की बड़ी इच्छा थी। आप स्वस्थ तो हैं?" उन्होंने हाथ जोड़े और बोले, "ऐसे ही चलता रहता है।" मैं बोला, "अब आपकी कौन सी नवीन कृति निकल रही है?" बोले, "अभी कारागार में जेल-जीवन पर कुछ गीत लिखे थे। कदाचित् वे निकलेंगे।"

आज गुप्त जी के एक नवीन रूप में दर्शन हुये। एक खादी की टोपी, मोटी खादी का एक कुर्ता, एक खादी की धोती वे पहने हुये थे। कुर्ते के नीचे संभवतः रुई की बंडी थी, हाथ में बेंत था। दाढ़ी मूँछ दोनों साफ थीं। पर साथ-साथ क्लीन शेव भी नहीं थे, थोड़े थोड़े बाल उग रहे थे। बाल सफेद और काले मिले-जुले, गजरे थे। थोड़ी देर बाद ही महादेवी जी अपना हैंड-बेग लिये आ पहुँची। बाहर निकल कर ताँगे की पिछली सीट पर सुश्री महादेवी और श्री मैथिलीशरण गुप्त बैठ गये। नमस्ते हुई। ताँगा एक ओर चल दिया और मैं दूसरी ओर।

पत्र आवश्यकता से अधिक लम्बा हो गया। आपका 'विजय' कब से निकलना आरम्भ होगा? आप अपने श्वसुर साहब को अपने विचारों के अनुसार उस पत्र में परिवर्तन करने के लिये परस्यूएड (Persuade) कीजियेगा। आपको याद होगा 'अभ्युदय' कहानी का पत्र था, पर अब बिल्कुल बदल गया। आप उसे 'नवयुग' की तरह का बना सकते हैं।

आप इलाहाबाद कब आ रहे हैं? बम्बई से आपके पास पत्रों का कोई उत्तर आया क्या? आपके मकान के बारे में क्या रहा? क्या कोई पेशी की तारीख पड़ गई है।

'गल्प-एकादशी' कब तक प्रकाशित होगी? मैं समझता हूँ जब उसमें कुछ लेखक और बढ़ा रहे हैं तब अब उसका नाम 'गल्प पूर्णिमा' हो जाना चाहिये।

मैं ठीक हूँ। आशा है आप भी अपने परिवार के सब सदस्यों सहित स्वस्थ तथा प्रसन्न होंगे। आपके पत्र की प्रतीक्षा करूँगा।

स्नेहाकांक्षी
शिवचन्द्र नागर

४

३० ए० बेली रोड
इलाहाबाद
२६।११। १९४९

आदरणीय 'मानव' जी,

कई दिन से पत्र लिखने को सोच रहा था, पर पता नहीं क्यों नहीं लिखा जा सका।

आज प्रातःकाल सात बजे सुश्री महादेवी जी से भेंट हुई।

आज उनका कमरा फिर पुराने ढंग से सजाया जा रहा था। कुछ प्रतिमायें अपने स्थान पर आ चुकी थीं; पर कुछ नहीं। मैं कमरे में घुसा। तीन मिनट किसी परिचारक की प्रतीक्षा में खड़ा रहा। इतने में क्या देखता हूँ कि एक पिक्चर स्टैंड (Picture stand) भक्तिन आगे-आगे लिये आ रही हैं और दूसरा पीछे-पीछे महादेवी जी। बेचारी बुढ़िया भक्तिन से हलका-सा पिक्चर स्टैंड भी उठ नहीं रहा था और महादेवी जी के रुग्ण, निर्बल हाथ भी सुलभता से सहज में ही उसे नहीं उठा पा रहे थे, पर फिर भी महादेवी जी और भक्तिन इस प्रकार काम में जुटे हुए थे जैसे एक ही परिवार के सदस्य हों। आप जानते ही होंगे भक्तिन उनकी रसोई का काम करती है और 'स्मृति की रेखाएँ' में पहला रेखा-चित्र उसी पर है।

मुझे देखते ही महादेवी जी ने पिक्चर स्टैंड वहीं छोड़ दिया और उनके हाथ मेरे प्रणाम के प्रत्युत्तर में उठ गये। वहीं जमीन पर कालीनों से सजे हुये सिंहासन पर महादेवी जी अधिष्ठित हो गईं। पास ही सामने की ओर मैं बैठ गया। अपने अस्त-व्यस्त वेश में भी महादेवी

महादेवी ही थीं। कदाचित् अभी उन्होंने स्नान नहीं किया था। पर फिर भी मैंने देखा हास्य-रश्मियाँ उनके मुख की मलीनता पर अपना कोमल आलोक डालकर उसको वैसा ही बना रही थीं जैसी वे पहले लगती थीं।

बातचीत आरम्भ हुई। मैंने कहा, "मैं कल मुरादाबाद जा रहा हूँ। सोचा जाने से पहले आप से मिल लूँ।" "बहुत अच्छा किया तुमने। कल जा रहे हो। मुझे मानव जी को एक पत्र भी देना है। पत्र लेते जाना, आज मैं लिख रक्खूँगी।" मैंने कहा, "हाँ, जरूर लेता जाऊँगा।" फिर बोलीं, "आपका अनुवाद मैंने पढ़ लिया, कुछ कहानियाँ बहुत अच्छी हैं, पर हमारी अन्तरंग कार्यकारिणी यह चाहती है कि हम गुजराती के प्रतिनिधि कहानी लेखकों का एक संग्रह निकालें। आप ऐसा ही कीजियेगा।" मैंने कहा, "ठीक है, समर वैकेशन (summer vacation) में वैसा कर सकूँगा।" बोलीं, "हाँ, कीजियेगा, धीरे-धीरे करते रहियेगा।"

मैंने पूछा, "रसूलाबाद जो आप गई थीं वह साइट गुप्त जी को कैसी लगी?" बोलीं, "उन्हें तो बहुत पसन्द आई पर रुपये का सवाल है, चालीस हजार रुपये चाहिये और दिसम्बर के पहले सप्ताह तक प्रबन्ध करना है।" इस पर मेरे मुँह से निकल गया, "चालीस हजार एक बहुत बड़ा सम (sum) है। आपने इसके लिये क्या सोचा?" इस पर वे जरा गंभीर हुईं। फिर बोलीं, "चालीस हजार बड़ा (sum) है तो क्या है, हम भी तो बड़े आदमी हैं। होने को तो एक लाख रुपया भी कुछ अधिक नहीं होता।" मैंने कहा, "कला-प्रिय पूँजीपति चाहें तो इससे भी अधिक दे सकते हैं।" इसपर बोलीं, "ऐसे पूँजीपति भारतवर्ष में कहाँ? पूँजी तो उन व्यक्तियों के पास है जो पूँजी-पिशाच हैं। यहाँ का पूँजीपति रुपया दे सकता है, पर कलाकार को झुका कर देना चाहता है और कलाकार झुकना नहीं जानता।"

आज हम जमीन पर बैठे थे। मुझे आपके घर पर आकर चटाई पर बैठने की बात याद आ गई। पता नहीं कुछ ऐसी बात है जब दो व्यक्ति इस प्रकार समतल पर बैठ

कर वार्तालाप करते हैं तो कुछ निकटता (Nearness) का अनुभव होता है। ऐसा ही अनुभव आज मैं भी कर रहा था। आज मैंने सब चीज़ें बहुत पास से देखीं। कलमदान चमकीले रंगों से चित्रित पीतल का था। वह मयूर-पुच्छी था और दावात के दोनों कोनों पर दो मोर अपनी नृत्य-मुद्रा में बने हुये थे। राइटिंग टेबुल (writing table) पर बिछा हुआ मेजपोश बारीक परशियन ढंग का था जिसके कोनों पर फारसी में कुछ लिखा था।

इस समय भी उन्हें १०० डिगरी बुखार था। बता रही थीं संध्या को अधिक हो जाता है। ऐसी अस्वस्थ दशा में मैंने उन्हें अधिक कष्ट देना ठीक नहीं समझा। चलती बार मैंने कहा, "आप अस्वस्थ रहती हैं और मैं आपको ऐसी अवस्था में भी बहुत कष्ट देता रहा हूँ। पता नहीं आपको बुरा तो नहीं लगता?" बोलीं, "बुरा क्या लगता? मैं अस्वस्थ रहती हूँ यह तो मेरा ही दोष है।"

मैंने विदा ली। कल मैं उनसे पत्र लेने जाऊँगा। जिस दिन आपको यह पत्र मिलेगा उस दिन संध्या को मैं भी मुरादाबाद पहुँच जाऊँगा। उस दिन यदि आप हमारी तरफ आयें तो घर पर भी आइयेगा, नहीं तो फिर दूसरे दिन प्रातः काल मैं आपके दर्शन करूँगा ही।

आपने लिखा है, "इतने छोटे काम के लिये झंझट उठाने की आवश्यकता नहीं।" इसमें झंझट की क्या बात है? मैं अपने और आपके काम को दो समझता ही नहीं। यह बात मैं केवल सैद्धान्तिक रूप से ही नहीं कह रहा। भविष्य में प्रयाग में रहना चाहता हूँ। मुझे तो सदैव अपने विषय में यही भय बना रहता है कि आपने तो अपना अमित स्नेह मुझ पर उड़ेल दिया है; पर कहीं मैं आगे चलकर कोरी मरुभूमि ही न निकलूँ। अपने काम को यदि आप झंझट कहेंगे या समझेंगे तो मैं समझूँगा आप मुझे अपना नहीं समझते।

स्नेहाभिकांक्षी
नागर

५

३० ए. बेली रोड
इलाहाबाद
३० । ११ । ४६

आदरणीय 'मानव' जी,

जैसा कि कल महादेवी जी ने मुझे बुलाया था, मैं सुबह साढ़े सात बजे उनके यहाँ गया। पूछने पर परिचारक से पता लगा कि वे कहीं गई हैं, घंटे भर बाद आयेंगी। मुझे चौक बाजार जाना था, अतः मैं वहाँ चला गया और वहाँ से ठीक घंटे भर बाद लौट आया। द्वार पर एक रिक्शा खड़ी थी जिससे मैंने जान लिया कि महादेवी जी जहाँ गई थीं वहाँ से लौट आई हैं।

मैं प्रसन्नता से खिला हुआ चेहरा लिये हुये, ड्राइंग रूम में घुसा। मेरी दृष्टि केन्द्रीय प्रधान स्थान पर अधिष्ठित सुश्री महादेवी जी पर पड़ी। प्रणाम किया। पास में दो व्यक्ति और बैठे थे—एक गंगाप्रसाद पांडेय और एक दूसरे व्यक्ति जिनके लम्बे लम्बे बाल थे, क्लीन शेव, रंग गोरा, आँखें साधारणतया अच्छी। ये दोनों व्यक्ति चाय पी रहे थे। एक प्लेट में गुजराती नमकीन चिउड़ा था, दूसरी प्लेट में कुछ विभिन्न प्रकार की बर्फियाँ और तीसरी बड़ी प्लेट में कुछ शंतरे की फाँकें, बेदानी अनार के दाने और तराशे हुये सेब के टुकड़े। मैं अभी बैठ भी नहीं पाया था कि महादेवीजी बोल पड़ीं: बैठो भाई चाय पियो। मैंने जरा सकुचा कर कहा, "नहीं रहने···" मैं पूरी बात भी न कह पाया था कि महादेवी जी उठकर अन्दर चली गईं। उनके अन्दर जाते ही पांडेय जी बोले, "खाइयेगा"··· मैंने कहा, "हाँ, हाँ, मैं ले लूँगा।" दूसरे व्यक्ति बोले, "परिचय हो जाना चाहिये।" इस पर मैंने अपना परिचय दिया। फिर मैं पांडे जी को सम्बोधित करके बोला, "आपको मैं·····" दूसरे व्यक्ति की ओर संकेत कर पांडे जी ने कहा, "आप हैं इलाचन्द्र जी जोशी।" मैंने उन्हें प्रणाम किया। प्रणाम का उत्तर देने पर

जोशी जी कदाचित् अपना पूरा परिचय देना चाहते थे कि पांडेय जी ने फौरन टोक दिया, "बस केवल आपके नाम की बात थी अब......" मैं फौरन बोल पड़ा, "देखा तो मैंने आपको कई बार था और यह धारणा भी अपने मन में बना ली थी कि आप कोई साहित्यिक हैं; पर परिचय का सौभाग्य आज ही हुआ।" मैं इतना ही कह पाया था कि महादेवी जी एक प्याला और प्लेट लिये हुए आ पहुँचीं और अपने स्थान पर बैठ कर चाय बनाने का उपक्रम करने लगीं। मैंने चायदान की ओर हाथ बढ़ाकर तुरन्त कहा, "नहीं नहीं, मैं स्वयं बना लूँगा।" इस पर बड़े ही स्नेहमय ढंग से बोलीं, "छोटे यह काम नहीं किया करते, यह काम तो घर में माँ-बहिनें ही किया करती हैं।" चायदान की ओर बढ़े हुए हाथ तुरन्त लौट गये और अन्दर ही अन्दर मुझे ऐसा अनुभव हुआ जैसे कोई ऐसी चीज़ उन्होंने इस वाक्य द्वारा दे दी हो, जो मुझे कभी किसी ने न दी थी। बात यह है कि मेरी माता जी तो हैं; पर मैं जानता नहीं मेरे लिये कितना स्नेह उनके हृदय में है। मैं अपने एक बड़े भाई के साथ उनसे दूर ही दूर रहा हूँ। वैसे मेरी बड़ी बहिन भी हैं, पर उनके स्नेह का भी मुझे अधिक अनुभव नहीं। पर आज मुझे ऐसा लग रहा था जैसे महादेवी जी ने मेरी माँ और बहिन दोनों का असीम स्नेह एक छोटे से वाक्य की सीमा में बाँध कर दे दिया हो। इसे सुनकर मैंने केवल मंद हास्य सा बखेर दिया। एक क्षण बाद उसी बात में योग देते हुये जोशी जी की ओर मुड़कर वे बोलीं, "क्या बताऊँ छोटे तो छोटे हैं ही, पर बड़े भी मेरे सामने छोटे ही हो जाते हैं। गुप्त जी बड़े हैं उनके प्रति सम्मान का भाव भी है, पर जब यहाँ आते हैं तो तुम देखते ही हो किस तरह व्यवहार करते हैं, निराला जी बड़े भाई हैं, पर बड़े भाई जैसी कोई भी बात नहीं करते।" चाय का प्याला उन्होंने मेरे सामने रख दिया था; पर मैं महादेवी जी के मुख की ओर देख रहा था। अपनी बात समाप्त करते ही महादेवी जी फलों की ओर संकेत कर बोलीं, "खाओ न..." मैंने तुरन्त खाना आरम्भ कर दिया।

एक दो घूँट चाय पी कर मै बोला, "मै आठ बजे भी आया था।" "हाँ, मै रसूलाबाद चली गई थी, जोशी जी को ज़मीन दिखानी थी।" यह बात वे कह रही थीं, पर उनकी मुख-मुद्रा से कुछ इस प्रकार का भाव टपक रहा था जैसे निश्चित समय पर न मिलने के लिये पछता रही हों। इस पर मै हँस कर बोला, "मानव जी वाला वह पत्र लिख दिया क्या आपने?" "वह पत्र तो मै लिख ही नही सकी, किस समय जा रहे हैं आप?" मैने कहा, "तीन बजे।" "इधर से आप जायेंगे ही, यदि आप उस समय लेते जायें तो अच्छा हो।" मैने कहा, "मै प्रयाग स्टेशन से बैठूँगा इसलिये इधर को तो आना नही होगा, अच्छा हो आप अभी लिख दें, मै प्रतीक्षा करूँगा।" बोलीं, "अच्छा!" इसी बीच मैं पहला चाय का प्याला समाप्त कर चुका था। चायदान का पानी समाप्त हो चुका था। खाली चायदान लेकर महादेवी जी फिर अन्दर चली गईं। उनके अन्दर जाते ही पांडेय जी बोले, "आप मानव जी का कोई पत्र लाये थे क्या?" मैने कहा, "दो महीने हुये तब एक पत्र लाया था।" "हमे तो मानव जी मेरठ में एक बार मिले थे," जोशी जी ने पांडेय जी की ओर मुड़ कर कहा। "हमने तो उन्हें एक बार देवी जी के यहाँ ही देखा था," पांडेय जी बोले। "मानव जी हैं कौन? वे भी 'नागर' हैं क्या?" मैंने कहा, "नही, पहले अपने नाम के आगे शांडिल्य लिखा करते थे।"

"शांडिल्य कौन हुये?"

"शांडिल्य ब्राह्मणों का एक गोत्र है।"

"फिर आपका उनका क्या सम्बन्ध है?" इस प्रश्न पर मुझे ज़रा हँसी आई और मै कुछ कहना ही चाहता था कि जोशी जी बोले, "अरे जैसा हमारा और आपका है, ऐसा ही होगा।" इतने में महादेवी जी वहीं से हँसती हुई चाय लेकर आ गईं।

मैंने सोचा कि इस बार चाय मुझे स्वयं ही बनानी चाहिये। यह ठीक नहीं लगता कि महादेवी जी मेरे जूठे प्याले को हाथ से छूकर

फिर उसमें चाय बनायें। मैंने स्वयं चाय बनाने के लिये बहुत ही आग्रह किया, पर उन्होंने एक न सुनी। प्याले को हाथ से लेकर दूसरा प्याला चाय का बनाया। फिर पांडेय जी से बोलीं, "चाय लो।" वे बोले, "अब नहीं।"

"तो क्या अब तीन प्याले लेने की आदत छोड़ दी?" इस पर मैं ज़रा ज़ोर से हँस पड़ा। मैं दूसरा प्याला पी चुका था, महादेवी जी मुझसे बोलीं, "और लोगे?" मैंने बड़ी नम्रता से कहा, "नहीं।"

इधर-उधर की बातें चलीं। जोशी जी कह रहे थे, "जगह बहुत अच्छी है। ज़मीन आप खरीद ही लीजियेगा। चालीस हज़ार में ऐसी ज़मीन नहीं मिल सकती।" पांडेय जी बोले, "पाँच हजार से कम में तो कुआ भी नहीं बन सकता।" महादेवी जी चुप रहीं। थोड़ी देर बाद बोलीं, "......ने देखो रुपये नहीं भेजे।" जोशी जी बोले, "एक नम्बर झूठा आदमी है।" थोड़ी देर बाद जोशी जी बोले, "अच्छा अब आज्ञा दीजियेगा।" यह कह कर वे चलने के लिये उठ खड़े हुये। द्वार तक महादेवी जी गईं और पीछे-पीछे मैं भी। फिर वे दोनों चले गये और हम दोनों ड्राइङ्ग रूम में लौट आये। अब वातावरण बिल्कुल शांत हो गया था। "अच्छा आप बैठिये, मैं अभी आती हूँ," यह कह कर वे अन्दर चली गईं। कमरे में मैं अकेला था। मैं अपने स्थान से उठा, कमरे में रखी हुई प्रत्येक प्रतिमा के पास जाकर देखा। आज मैंने चोरी से महादेवी जी के कमरे का कोना कोना देखा। उनके राइटिंग डेस्क के पास एक फाइल का गट्ठर रखा था, जो मैं समझता हूँ साहित्यकार संसद् का था। 'विशाल भारत' की कुछ फाइल्स भी थीं। राइटिंग टेबल पर आज दो छोटे लाल शीशे के गुलदस्ते रखे थे जिन पर चाँदी के तार जड़े थे। उनमें 'रात की रानी' अपनी सुरभि कमरे में बखेर रही थी। पांडेय जी तथा जोशी जी के विषय में भी मैं सोचता रहा।

मैं कमरे में अकेला था। पन्द्रह मिनट बीत गये थे। इस बीच केवल कभी-कभी कागज़ उठा कर इधर से उधर रखने की आवाज

आती थी। इसी बीच कमरे से सुनयना गुज़री। मैंने उसे बुला लिया। वह बड़े प्यार से आकर मेरी गोद में बैठ गयी। मेरा अकेलापन दूर हो गया। मैं सुनयना से बातें करने लगा। सबसे बड़ी बात तो यह कि महादेवी जी के यहाँ के चित्र तथा उनके कुत्ते बिल्ली भी चेतन से प्रतीत होते हैं। उस एकाकीपन में मौन रहते हुए भी मुझे वे बात करते से लगे। पन्द्रह मिनट तक मैं सुनयना को गोद में बिठा उसके मुँह से मुँह मिला बातें करता रहा और वह अपनी आखें फिरा कर मेरी बातों का उत्तर-सा देती रही। आज कमरे के लगभग सभी गुलदान बदल दिये गये थे और आज सभी में रजनीगन्धा सुसज्जित था।

किसी के कुर्सी से उठने की आवाज़ हुई और महादेवी जी एक पत्र और एक रसीद-बुक तथा कुछ और कागज लिये हुये आईं और बोलीं, "आपको देर हो गई। होस्टल से मुझे एक शिष्या को बुलाना पड़ा तब पत्र लिखा गया। यह पत्र और यह विधान तो मानव जी को दे दीजियेगा और इसमें जो कुछ साहित्यिकों से 'लेखक निधि' के लिये हो सके, वह एकत्र कर लेना और रसीद में मेरी जगह तुम अपने हस्ताक्षर कर देना। फिर अपनी अन्तरंग समिति का प्रस्ताव ढूँढ़ने लगीं, अँग्रेजी का मिल गया पर हिन्दी का नहीं मिला। बोलीं, "अँग्रेजी का तो ठीक नहीं रहेगा, कोई देखेगा तो भला क्या कहेगा।" फिर उन्होंने फाइल में से निकाल कर हिन्दी का भी दिया। हाथ में रसीद-बुक देती हुई बोलीं, "जो भी लेखक दे दें वह ले लेना, घर-घर टक्कर मारते मत फिरना। तुम्हारी जो तीन कहानियाँ रह गई थीं वे बहुत ढूँढ़ने पर भी नहीं मिलीं, मैं ढूँढ़ कर चपरासी के हाथ तीन बजे से पहले तुम्हारे घर भिजवा दूँगी।" मैंने कहा, "फिर भिजवा दीजियेगा जब भी आपको सुविधा हो।" बोलीं, "अब तुम गुजराती कहानियों का संकलन कर देना, मुझे गुजराती पुस्तकों की सूची दे देना, मैं मँगा लूँगी और हम यह कोठी खरीद लें तो बस एक पुस्तकालय का प्रबन्ध कर दूँ। निराला जी को बुला लूँ।

एक कमरे में आनन्द से रहेंगे। एक नौकर रख दूँगी। बस ठीक रहेगा। परीक्षा समाप्त होने पर तुम भी वहाँ आ जाना और वहाँ काम किया करना।" इसका मैं उत्तर क्या देता? बोला, "मेरे घर के सब आदमी मेरी मामी, भाभी, मौसी इत्यादि आपके दर्शन की बहुत इच्छुक हैं, मैं उनसे कहता हूँ माघ मेले पर प्रयाग चलो तो दर्शन हो जायें; पर उनका आना नहीं होता। एक बार आप ही न मुरादाबाद हमारे घर चलियेगा। आप वहाँ तो कभी गई भी नहीं।" "हाँ, मुरादाबाद तो आज तक गई तो नहीं, देखो कभी आऊँगी। पर क्या आऊँ लोग कोलाहल बहुत मचा देते हैं।" मैं बोला, "मैं किसी को भी आपके आने की सूचना नहीं दूँगा, पर आप आइये अवश्य।" "तो फिर कभी आऊँगी, जून में मैं देहरादून जाया करती हूँ, वहाँ महादेवी कन्या पाठशाला में मेरी एक मित्र हैं। वहाँ जाऊँगी तब आऊँगी।" मैंने पूछा, "आप अपने विषय में इतनी मौन क्यों रहती हैं?" "भाई मैं अपने विषय में क्या कहूँ? कुछ हो तो कहूँ। लोग अपनी जीवनी लिखते हैं, पर मैं क्या लिखूँगी। मैं तो बचपन से ही भिक्षु होना चाहती थी; पर मेरी माता जी ने यह सब पसन्द नहीं किया। वे बोलीं कि यह ठीक नहीं। मैंने उनकी आज्ञा का पालन किया, पर फिर भी मैं अपरिग्रही रही। आज भी मुझे भगवा वस्त्र बहुत अच्छे लगते हैं। अपनी अपनी बात है। मेरी छोटी बहिन है, वह गृहस्थी में बहुत सुखी है। उसके सात आठ बच्चे हैं, पर मुझे शुरू से ही यह सब अच्छा नहीं लगता था।" इस पर मैंने कहा, "यह तो अच्छा ही है। यदि आप को गृहस्थी अच्छी लगती तो आपके स्नेह की परिधि संकुचित हो जाती, पर आज आप उस परिधि में समस्त विश्व को समेट सकती हैं।" मैं बोला, "मैंने सुना है, आपने किसी 'विदुषी' पत्र का संपादन किया है?" "नहीं तो, एक 'महिला' पत्र विद्यापीठ से निकलता था। उसके सम्पादक-मंडल में जरूर नाम था, चाँद का सम्पादन किया जब तक किया, पर अब तो मुझे यह अच्छा नहीं लगता। अब जब संसद का पत्र निकलेगा तो उसका सम्पादन करूँगी।"

थोड़ी देर बाद मैं बोला, "यदि मैं आपको किसी विषय पर बोलने के लिये आमंत्रित करूँ तो आप आयेंगी ?" "तुम जानते हो कि यूनिवर्सिटी तो मैं जाती नहीं।" मैं बोला, "नहीं, मैं अपनी किसी गोष्ठी में आमंत्रित करूँगा।" तो बोलीं, "देखा जायगा अभी तो आप ही हमारे यहाँ आते रहियेगा।" "वह तो मैं आता ही रहूँगा। जब तक आपके दर्शन नहीं हुये थे, तब तक मेरा आप से 'एकलव्य' का सा सम्बन्ध था और आज···" हँस कर बोलीं, "जब तुम पहली बार आये थे तो तुमने यही बात कही थी न, पर मैं द्रोणाचार्य नहीं बनूँगी। मैं अँगूठा नहीं लूँगी। मुझे वे बड़े बुरे लगते हैं।" मैं बोला, "द्रोणाचार्य तो क्रूर थे, पर आप तो वैसी नहीं हैं।" वे बोलीं, "कुछ नहीं भाई, अब हमारा तो समय बीत ही गया समझो, अब तो तुम लोग ही हमारे पीछे-पीछे आओगे।" "पर मुझे तो पग-पग पर यही भय बना रहता है कि पता नहीं हम आपके पद-चिन्हों का भी अनुसरण कर सकेंगे या नहीं।" "ऐसी कोई बात नहीं" महादेवी जी ने हँस कर उत्तर दिया।

तुरन्त ही मैं बोला, "आप कहीं आना जाना क्यों पसंद नहीं करतीं ?" ज़रा गम्भीर होकर बोलीं, "जब मनुष्य इधर-उधर फिरने लगता है तो फिर उसे वैसा ही जीवन अच्छा लगने लगता है और वह बिखर जाता है। यदि मैं जाऊँ तो कहीं मुझे फूलों के दो-तीन हार मिल सकते हैं, मान-पत्र मिल सकता है, लोग मेरी तारीफ में लम्बे-लम्बे व्याख्यान दे सकते हैं, पर जहाँ तक पास पहुँचने की बात है उनके पास जाने पर भी मैं उनके इतने अधिक पास नहीं पहुँच सकती जितना यहाँ मैं बैठे-बैठे पहुँच सकती हूँ।"

मैंने प्रश्न किया, "आप क्या विदेश नहीं जाना चाहतीं ?" "पहले जाना चाहती थी, पाली में रिसर्च करने का मेरा इरादा था, पर पाली के विद्वान, गुरु डा०·········की मृत्यु हो गई; अतः फिर वह विचार छोड़ दिया।" मैं बोला, "आप वैसे ही भ्रमण के लिये बाहर जाना पसंद नहीं करतीं ?" बोलीं, "पश्चिम में तो जाने का कोई इरादा नहीं। वहाँ

के आदमियों को मैं यहीं बहुत देख चुकी। मुझे बिल्कुल अच्छे नहीं लगे। कभी जाऊँगी तो चीन और तिब्बत।" मैं बोला, "भारत का भ्रमण तो आपने किया होगा।" बोलीं, "कई बार बद्रीनारायण यात्रा पैदल की है।" "अब आप बद्रीनारायण नहीं जायेंगी?" बोलीं, "अब कैलाश जाने का इरादा है।" "पर अब आप पैदल नहीं जा सकेंगी।" "नहीं यह बात नहीं, मैं अभी इतनी दुर्बल नहीं हूँ।" फिर थोड़ी देर देहरादून तथा मंसूरी की ओर के उन स्थानों पर बात चलती रही जिनका पर्यटन मैं भी कर चुका हूँ।

मैंने अँग्रेजी के अनुवाद के विषय में फिर पूछा। वे बोलीं, "मुझे उसमें से कुछ बातें बहुत पसंद आईं।" मैं बोला, "तो फिर मैं उनको दूसरे गीतों के अनुवाद के विषय में लिखूँगा। अपनी कवितायें या तो आप छाँट दीजियेगा या मानव जी छाँट देंगे।" वे बोलीं, "मानव जी ही ठीक से छाँट सकेंगे।"

मैं बोला, "मानव जी ने पहले तो आने को लिखा था, पर अब कुछ नहीं लिखा। मुरादाबाद में साहित्यिक वातावरण बिल्कुल नहीं। वहाँ वे बिल्कुल (Oblivion) में हैं। मैं उनसे इलाहाबाद आने के लिये कहता हूँ तो टाल देते हैं।" "हमारी संसद् की जमीन का ठीक-ठाक हो जाये। फिर तो प्रेस इत्यादि का काम ही इतना हो जायगा कि आप लोग ही करेंगे, नहीं तो और करेगा कौन? आजकल मानव जी मुरादाबाद में कर क्या रहे हैं?" मैं बोला, "कुछ लिखते रहते हैं" "और परिवार कितना है?" "उनकी माता जी हैं, पत्नी हैं और दो छोटे-छोटे बच्चे। पिता जी की मृत्यु दो महीने हुए तब हो गई।" जरा उदास हो कर बोलीं, "उनके कन्धों पर उत्तरदायित्व तो बहुत है।" उस समय की उनकी मुख-मुद्रा से पता लगता था जैसे वे कुछ सोच रही हों। सहसा बोलीं, "बहुत देर हो गई।" मैं उठ खड़ा हुआ। महादेवी जी आज बातचीत में बहुत डूब गई थीं। धीरे-धीरे कुछ सोचती हुई वे विद्यापीठ की ओर बढ़ गईं।

स्नेहाकांक्षी
शिवचन्द्र नागर

६

३० ए० बेली रोड
इलाहाबाद
१२ । १२ । ४६

आदरणीय 'मानव' जी

मैं सकुशल यहाँ कल दोपहर एक बजे आ गया। चलते समय आपके दर्शन न कर सका, इसका मुझे दुःख है। हाँ, कल रात ८ बजे 'बच्चन' जी को आपका पत्र दे दिया था और आज सुबह मैं उनसे मिला भी था। उन्होंने कहा, "पत्र तो मैंने पढ़ लिया था, पर उसे मैं कहीं भूल आया।" आपका पता पूछ रहे थे, वह मैंने बता दिया है। कदाचित् वे आपको पत्र लिखेंगे। अभी सुश्री महादेवी जी के यहाँ नहीं जा सका। कल जाऊँगा।

यहाँ आकर जिस समय मैंने अपना संदूक खोला तो उसमें और तो सब सामान था ही; पर दो सुन्दर पैड्स भी निकले। पहले तो मैं आश्चर्य करता रहा कि किसने चुप से रख दिये पर..................

सदैव आपका ही
शिवचन्द्र नागर

७

३० ए० बेली रोड
१५ । १२ । ४६

आदरणीय 'मानव' जी

मैं १२ ता० को सुबह महादेवी जी के यहाँ गया था। उस समय वे किसी कार्य विशेष में संलग्न थीं, अतः भेंट तो न हो सकी, पर मैं नोआखली सहायता के लिये मुरादाबाद-लेखक-निधि, आपका पत्र और अपना सदस्यता फार्म पहुँचा आया।

आज रविवार था। आठ बजे मैं वहाँ गया। महादेवी जी का कमरा फिर अपने पुराने रूप में आ गया था। केवल नवीनता इतनी थी कि बड़े लम्बे वाले सोफे पर सब रेशमी काम वाले उपधान पड़े थे और दो छोटे सोफों पर जो दो उपधान थे उनका परिवेष्ठन तिरंगा था—राष्ट्रीय ध्वजा का प्रतीक।

कमरे की सारी वस्तुओं में ये उपधान ही सबसे अधिक आकर्षक लग रहे थे। पता नहीं महादेवी जी ने उन्हें अपनी राष्ट्रीय भावना के प्रतीक रूप तो नहीं रक्खा, क्योंकि इस कमरे में लगभग जितनी भी वस्तुयें हैं वे सब उनकी किसी न किसी भावना की प्रतीक मात्र ही हैं।

मैं कमरे में जाकर बैठ गया। आज मेरा ध्यान सामने की दीवार वाले चित्रों पर गया। ये चित्र वैसे तो मैंने पहले भी कई बार देखे थे, पर इन्हें समझने का प्रयत्न आज तक कभी भी नहीं किया था। दीवार के आधे दाँये भाग में जो चित्र है वह तो समझ में आ गया, एक विशाल वट वृक्ष के नीचे बुद्ध भगवान् तपस्या कर रहे हैं। किन्तु आधे बाँये भाग में एक चित्र है, जिसमें एक सुन्दरी सो रही है, पास ही एक बालक सो रहा है, परिचारिका पंखा डुलाती-डुलाती सो गई है और एक राजकुमार उस सुन्दरी तथा बालक को इस प्रकार देखता हुआ दिखाया गया है जैसे आज वह उन्हें अन्तिम बार देख रहा हो। पहले तो एक दम मेरी समझ में कुछ नहीं आया; पर फिर तुरन्त ही विचार उठा कि इस चित्र में राजकुमार सिद्धार्थ अपनी जीवनसंगिनी यशोधरा और अपने बेटे राहुल को अन्तिम बार देख रहे हैं। फिर मैंने दोनों चित्रों को मिला कर देखा। फिर तो स्पष्ट एक पूरी कहानी बन गई। ऐसा लगता है जैसे यह महादेवी जी की अपनी ही कहानी हो। वे भी तो आज अपने परिवार से मोह-बन्धन तोड़कर इस विश्व के विशाल वट वृक्ष के नीचे महिला विद्यापीठ के एकान्त कोने में अपनी साधना कर रही हैं। उन्होंने भी तो अपने काव्य में विश्व को बुद्ध की तरह करुणा का संदेश

दिया है। आज मुझे इन चित्रों को देखकर ऐसा लग रहा था जैसे महादेवी जी ने अपने जीवन की पूरी कहानी इन दो चित्रों में कह दी हो।

इतने में किसी के आने की हलकी-हलकी चरण-चाप सुनाई दी। नीले पर्दों में से महादेवी जी बाहर आईं। आकर एक सोफे पर बैठ गईं। आज उनकी खद्दर की सफेद धोती की तिरंगी कन्नी थी और जिस उपधान के सहारे वे बैठी थीं वह भी तिरंगे वस्त्र से परिवेष्ठित था। यह सब देखकर ऐसा लगता था जैसे अब महादेवी जी को राष्ट्र के प्रतीक तिरंगे वस्त्र से अधिक अपनाव हो गया हो।

बैठने पर मैंने स्वास्थ्य के विषय में पूछा। बोलीं, "बराबर मलेरिया चला जा रहा है। पता नहीं मैं कितनी कुनैन खा चुकी। डाक्टर लोग कुनैन के लिये मना करते हैं। अब कुनैन न खाऊँ, तो करूँ क्या" मैंने पूछा, "क्या टेम्परेचर प्रतिदिन हो जाता है?" बोलीं, "इस समय मैं ठीक हूँ। बारह बजे के बाद कुछ सर्दी सी लगेगी, फिर कुछ टेम्परेचर हो जायगा।" मैंने कहा, "आप काम भी तो बहुत करती रहती हैं। तभी तो आप स्वस्थ नहीं हो पातीं?" बोलीं, "भाई काम न करूँ तो फिर काम कैसे चले?"

फिर कुछ मिनट तक किसी ने कुछ नहीं कहा। बोलीं, "आप तो मुरादाबाद से बहुत रुपया ले आये।" "हमें तो संकोच लगता है इतना कम देते हुये और आप कह रही हैं बहुत है" मैंने कहा। फिर हँसकर कहने लगीं, "मानव जी ने इतने अधिक रुपये क्यों दिये? हमें उनकी यह बात बिल्कुल अच्छी नहीं लगी।" मैंने कहा, "नोआखाली की बात तो छोड़िये उन्हें तो इस बात काब हुत दुःख था कि वे ऐसे समय में जब कि संसद् को ज़मीन खरीदने के लिये रुपये की आवश्यकता है वे कुछ नहीं कर सकते।" इस पर वे कुछ गम्भीर सी हो गईं और बोलीं, "लेखक निर्धन होता है, पर फिर भी सब कुछ दे सकता है। तुमने अपना आदमी समझ कर उन पर जोर दिया होगा, मैं उन्हें अभी लिखूँगी कि हम उनके पाँच रुपये रख रहे हैं और

बाक़ी वे लौटा लें।" यह कह कर वे फिर हँस पड़ीं। मैंने कहा, "मैं तो पहले ही नहीं ले रहा था पर मैं उनकी बात लौटा नहीं सका। इस पर वे तो यही कहते रहे कि मुझे दुःख है, मैं कुछ भी नहीं दे पा रहा हूँ।"

फिर मैंने पूछा, "संसद् की सदस्यता के बारे में आपकी क्या नीति है? आप इसको बढ़ाना चाहती हैं या नहीं?" बोलीं, "बढ़ाना तो चाहते हैं, पर हम इसे झगड़े का स्थान नहीं बनाना चाहते, इसलिये हमने यही रक्खा है कि हर जगह के लेखकों को संगठित कर हम उनका प्रतिनिधि लें जिसके द्वारा ही हम उनकी बातें सुनें। उनके लिये उसे ही बोलने का अधिकार होगा, नहीं तो प्रत्येक व्यक्ति यदि अपने-अपने मतभेदों के साथ यहाँ आयेगा, तो हम किस-किस को समझायेंगे? एक को तो समझा भी सकते हैं। ऐसा हो सकता है कि हम मुरादाबाद से मानव जी को ले लें। वहाँ एक शाखा हो सकती है। वहाँ के लेखक उसमें संगठित हो सकते हैं।" मैंने पूछा, "फिर क्या वे आपके सदस्य नहीं होंगे?" "होंगे क्यों नहीं पर उनकी बात उनके प्रतिनिधि द्वारा ही सुनी जायगीं।" "उन पर यही विधान लागू होगा।न?" "हाँ, वह तो होगा ही, पर प्रतिनिधि चाहे तो कुछ उपनियम भी बना सकता है। उनके शुल्क का पैसा भी रक्खे तो क्या बुराई है? नहीं तो जब उन्हें रुपये की ज़रूरत पड़ेगी, यहाँ दौड़ना पड़ेगा। वह पैसा हमें रखना थोड़े ही है। लेखकों का पैसा लेखकों पर ही खर्च होगा। यदि प्रतिनिधि अपने स्थानीय लेखकों में से किसी को सहायता या प्रोत्साहन की आवश्यकता समझता है तो यह वह करेगा।" मैंने कहा, "तो फिर आप सदस्यता पत्र दे दीजियेगा मैं मुरादाबाद भेज दूँ।" बोलीं, "मैं मानव जी को लिख रही हूँ।" मैंने कहा, "पत्र कहीं बीच में खो जाते हैं। पता नहीं यह पत्र छोड़ने वाले की भूल तो नहीं है, अतः आप या तो रजिस्टरी से भेजियेगा, नहीं तो आप मुझे दे दिया कीजिये। मैं छोड़ दिया करूँगा।" "हाँ, यह भी ठीक है।" फिर मैंने दयानन्द गुप्त वाली

बात कही। सुन कर कहने लगीं, "वहाँ जाकर मुझे करना क्या होगा?" मैंने कहा, "बसंत पंचमी पर एक समारोह होता है। कदाचित् उसमें बुलाना चाहते हों। मैंने तो कह दिया था कि आप कोलाहल से दूर रहना चाहती हैं। मानव जी कह रहे थे, यदि वे न आ सकें तो गुप्त जी आ जायें। "पर मेरे या गुप्त जी के जाने से होगा क्या?" मैंने बड़े झिझकते हुये कहा, "एक डेढ़ हजार रुपया हो सकता है?" "हमें साथ में लेकर रुपये की भीख माँगनी हो फिर तो कितना भी रुपया हो सकता है। गुप्त जी जैसे बड़े आदमी को भेजा भी जाये यदि कोई बड़ी बात हो।" मैं बोला, "हाँ वह तो बड़ी लज्जा की बात है कि आप या गुप्त जी वहाँ जायें और हम लोग एक डेढ़ हज़ार रुपये से सम्मान करें।" हँसकर बोलीं, "भदंत जी चले जायेंगे, अपना डंडा कमंडल उठा कर" यह कह कर बड़ी जोर से हँसती रहीं। उनके डंड कमंडल शब्द के कहने के ढंग पर मुझे भी हँसी आगई और मैंने भी उनकी हँसी में खुलकर सहयोग दिया। मैंने बात बढ़ायी, "एक दूसरा ढंग यह हो सकता है कि हम कुछ आजीवन सदस्य बनायें।" बोलीं, "हाँ यह भी हो सकता है। पर वे सदस्य लेखक ही होने चाहिये। यदि कोई और सहायता देना चाहे और लेखक न हो तो सहायक सदस्य की कोटि में आ सकता है।" "रुपये के लिये कुछ सदस्यता तो बढ़ानी ही चाहिये।" बोलीं, "यदि सदस्यता से ही रुपया एकत्रित करने की बात होती तो तीन चार हजार सदस्य बन सकते थे, पर हमें शिव जी की बारात तो नहीं बनानी है। हो गईं दलबंदियाँ और लगे लड़ने झगड़ने। लेखकों की दलबंदियों से मेरा थोड़ा सा परिचय है।" शिव जी की बारात वाली बात पर वे खूब हँसती रहीं। बात आगे बढ़ाते हुये बोलीं, "अब तो हमें यह निश्चय करना है कि किन-किन स्थानों पर शाखायें होंगी। इस प्रकार शाखायें हो जाने से यह लाभ होगा कि हम अपनी बात उन तक पहुँचा सकेंगे और मान लो संसद् की कोई पुस्तक निकली तो उसकी सेल (sale) का प्रश्न हल हो सकता है।"

इस प्रकार बहुत देर तक संसद् की बातें चलती रहीं। फिर मैंने पूछा, "निराला जी की जयन्ती में आप वसन्त पंचमी पर बनारस तो जा ही रही होंगी ?" "मेरा कुछ ठीक नहीं। उस दिन महिला विद्यापीठ का भी तो दीक्षान्त समारोह है। महिला विद्यापीठ का भी (Foundation day) बसन्त पंचमी ही है।" "दीक्षान्त भाषण देने को किसे निमंत्रित कर रही हैं।" बोलीं, "राजगोपालाचार्य को बुलाने का विचार है। अब देखो जो भी आ जाये।" मैंने कहा, "कुछ भी हो निराला जी की स्वर्ण-जयन्ती में तो आप की उपस्थिति आवश्यक है।" "हम तो इन जयन्ती-वालों से असहयोग कर रहे हैं। कितनी उल्टी बात है कि निराला जी तो बीमार हैं, उनका मस्तिष्क विक्षिप्त हो गया है, उनका कोई संतोष-जनक उपचार नहीं और ये स्वर्णजयन्ती मनाने जा रहे हैं। अभिनन्दन का मोटा पोथा लेकर निराला जी क्या करेंगे ? चाहिये था कि उन्हें राँची या आगरे ले जाया जाता। उनका उपचार होता, पर हमारे यहाँ की कुछ बातें ही अजीब हैं। पहले की बात पीछे और पीछे की बात पहले होती हैं। पाँच हजार रुपये में अभिनन्दन ग्रन्थ निकलेगा। यदि इसमें से एक या दो हजार रुपया उनके उपचार के लिये दे दिया जाता तो कुछ ठीक भी था। अभिनन्दन ग्रन्थ में प्रकाशक का या सम्पादक का ही लाभ है।" मैंने कहा, "उसकी रायल्टी तो निराला जी को ही मिलेगी ?" "मिलेगी जब मिलेगी, इस समय तो कुछ नहीं। क्या पता कितने वर्षों में ग्रन्थ निकले और बिके। इससे तो यही अच्छा होता कि कुछ रुपया निराला जी के नाम से बैंक में जमा कर दिया जाता और उससे वे अपना काम चलाते या उस रुपये से हम किसी अध्ययन-प्रिय छात्र को छात्र-वृति देते। वह कोई नवीन खोज करता। फिर उससे जो पुस्तक हिन्दी साहित्य को मिलती वह इस अभिनन्दन ग्रन्थ से अच्छी होती। पर आजकल कुछ बात ही ऐसी चल पड़ी है। गांधी अभिनन्दन ग्रन्थ निकला, प्रेमी अभिनन्दन ग्रन्थ निकला, अब निराला अभिनन्दन ग्रन्थ निकल रहा है। लेखकों

का निकले सो तो निकले, पर प्रकाशकों का अभिनन्दन भी होने लगा। यहाँ के साहित्यिक जो करने का काम है वह नहीं करते।" मैंने कहा, "भारतवर्ष में कुछ ऐसा रिवाज है कि मरने पर तो श्राद्ध करते हैं पर जीते जी कौड़ी को भी नहीं पूछते। कहने को तो कहते हैं हिन्दी साहित्य तीव्र गति से बढ़ रहा है, पर जाग्रति शून्य के बराबर है।" "यह तो है ही। नन्ददुलारे जी मेरे पास आये थे। उन्होंने मुझसे सब बातें कहीं, मैंने कहा, "सम्मान तो निराला जी को मिलना ही चाहिये और मिलेगा ही और सम्मान की हम भीख भी नहीं माँगते, पर इस समय जिस बात की आवश्यकता है पहिले वह तो पूरी होनी चाहिये। अब मैं यही देख रही हूँ कि उनके किये कुछ होता है या नहीं। यदि कुछ हो गया तो मैं बनारस जाऊँगी, नहीं तो हम स्वर्णजयन्ती मनाते हुये क्या अच्छे लगेंगे। राजनीति के क्षेत्र में कल के आदमियों को थैलियाँ भेट हो रही हैं और निराला जी को आज ३० साल हिन्दी की सेवा करते करते हो गये पर उनके लिये कुछ नहीं। जब उन्होंने साहित्य में काम किया है तो पुस्तकें तो उन पर बहुत सी लिखी जायेंगी; पर अब तो उनके जीवन को बचाने का प्रश्न है।"

मैंने बात को बदलते हुये कहा, "किसी दिन आप गांधी जी वाले अपने चित्र दिखाइयेगा।" बोलीं, "देख लेना। सब अन्दर रक्खे हैं, एक दिन निकालूँगी तब देख लेना। चित्रों को देखकर फिर चित्र बनाने की इच्छा होने लगती है। और यह काम अब मुझसे होता नहीं, इसलिये मैंने सब चित्र अन्दर बन्द करके रख दिये हैं। जब बंगाल का अकाल पड़ा था तो मैंने प्रदर्शिनी का आयोजन किया। यहाँ के चित्रकारों ने बहुत थोड़े से चित्र दिये। उस समय मैंने ७५ चित्र बनाये। बनाते बनाते आँख पर इतना अधिक जोर पड़ा कि अन्त में मुझे तूलिका से खिंची हुई रेखायें भी दीखनी बन्द हो गईं। तब मैंने उल्टे सीधे तैलचित्र बनाये।" मैं बोला, "अब आप लिख पढ़ तो लेती होंगी!" बोलीं, "मोटा टाइप पढ़ लेती हूँ।" "और लिखने की बात?" "लिखा नहीं जाता।"

इस समय मैंने अपनी दुःख से सिक्त दृष्टि उनकी आँखों पर डाली। उनको आँखों की पुतली का दर्पण निस्तेज चमक रहा था। उस समय मेरा मन भारी हो आया और मैंने कहा, "एक दिन मानव जी ने अपना मन भारी करके कहा था कि अब महादेवी जी अधिक दिन जीवित नहीं रहेंगी।" "जीना मैं चाहती ही कब हूँ" पर फिर तुरन्त सँभल कर बोलीं, "नहीं, मैं अभी नहीं मरूँगी," यह बात कह कर खूब जोर से हँसती रहीं। मैंने फिर कहा, "निराला के बाद पंत की जयन्ती होगी और फिर आपको भी अभिनन्दन-ग्रन्थ भेंट किया जायगा।" "यह सब मुझे बिल्कुल अच्छा नहीं लगता। मेरी जयन्ती नहीं होगी।" इस पर मैं बोला, "यदि कोई दूर से आपकी पूजा करता है तो उसे रोकने का आपको अधिकार थोड़े ही है।" "इसमें दूर की पूजा की बात तो नहीं। गले में फूल माला पहनाई जायेंगी, अभिनन्दन का पोथा दिया जायगा।" यह बात उन्होंने कही और हाथों से पहनाने तथा अभिनन्दन ग्रन्थ देने का अभिनय सा किया, और खूब हँसती रहीं। मैंने फिर उनसे तुरन्त पूछा, "आपके जन्म का सन् तो १९०७ है, पर आपकी जन्म तिथि क्या है?" "मैं होली के दिन पैदा हुई थी। अरे, तभी तो इतनी हँसती रहती हूँ।" मैं ज़रा गम्भीर हो गया। फिर हँसती हुई बोलीं, "होली जो जन साधरण की प्रसन्नता का दिन है······उस दिन तो एक नवीन उत्साह रहता है। नई फसल आती है। इसलिये वैसी ही सब बातें मुझमें हैं।" यह बात सुनकर मैं चुप रह गया। इस बात में महादेवी जी अपनी हँसी का रहस्य खोल गई थीं। पहले मैं यह सोचा करता था कि महादेवी जी क हँसी कदाचित् ज्वालामुखी पर छिटकी हुई चांदनी की तरह है, पर आज उन्होंने स्पष्ट कह दिया था कि उनकी हँसी तो जलती हुई होली की तरह है जो दूसरों को उत्साह तथा उल्लास प्रदान करती है, पर स्वयं जलती रहती है। उनकी बात में योग देते हुये मैं बोला, "मेरा जन्म होली से दो दिन बाद का है।" इस पर मुझे अपने पिता जी की मृत्यु तिथि भी याद आ गई। मैं बोला, "पर दो साल बाद माता जी ने जिस दिन सुबह को मेरे जन्म

दिवस के उपलक्ष में शोरा पूरी बनाया था और अपने भाग्य को सराहा था, उसी दिन संध्या को मेरे पिता जी का देहान्त हो गया। मैं उस दिन दो वर्ष का था। अब भी कभी-कभी मेरे जन्म दिवस पर आँखों में आँसू भर कर मेरी माता जी यह कहानी सुना देती हैं।" इस पर वे उदास हो गईं और बोलीं, "पता नहीं वह उनके जीवन में कैसा दिन होगा। उस दिन उन्होंने एक का जन्म दिवस मनाया था और एक को विदा दी थी।" एक क्षण तक हम शांत रहे। फिर मैं बात बदलते हुये बोला, "आपने मानव जी की 'निराधार' पढ़ी।" बोलीं, "कविताओं की?" "नहीं कहानियों की।" "हाँ पढ़ा।" "और अवसाद भी?" "हाँ, दोनों पढ़ी हैं।" "निराधार के विषय में गुप्त जी ने मानव जी को एक पत्र लिखा था। बहुत प्रशंसा की थीं।" "प्रशंसा तो वे सबको करते हैं।" इस पर मैं हँसकर बोला, "तारीफ तो खैर उन्होंने की थी ही, पर अलकाब आदाब की जगह उन्होंने लिखा था, "प्रिय महाशय। महाशय शब्द बड़े गजब का था।" इस पर खूब हँसीं। फिर बोलीं, "कुछ बुरा तो न था और लिखते भी क्या।" मैंने कहा, "प्रिय मानव जो ही लिख देते।" फिर जोर से हँसकर बोलीं, "यह महाशय लिखने का आर्य-समाजी ढंग है।" इस पर मुझे और भी हँसी आ गई। फिर बोलीं, "इधर सी० पी० के लोग जो भी उन्हें लिखते हैं, उनमें से कोई दद्दा, कोई कक्का, ऐसे लिखते हैं, उसी रिश्ते से वे भी जवाब दे देते हैं।" मैंने कहा, "सियारामशरण जी तो बीमार हैं।" बोलीं, "हाँ उन्हें दमे का मर्ज है। जाड़ों में यह और भी अधिक हो जाता है। लेखकों को तो कुछ न कुछ कष्ट लगा ही रहता है। किसी को रुपये पैसे का कष्ट तो किसी को शारीरिक कष्ट।"

बातें करते-करते बहुत देर हो गई थी, अतः बातचीत का स्रोत धीमा पड़ गया। जरा सी देर बाद ही मैं बोला, "कल मैंने आप पर लिखी हुई मानव जी की पुस्तक का पहला चैप्टर पढ़ा। उसमें उन्होंने लिखा है कि वे "दीप-शिखा और यामा की महादेवी को वे नहीं देख सके।

उस ड्राइंग रूम में या तो महिला विद्यापीठ की प्रधान अध्यापिका हँस रही थीं या चांद की गत संपादिका। इस पर वे कुछ नहीं बोलीं। बहुत देर तक हँसती ही रहीं। फिर मैंने कहा, "पर जब आप उठकर अपने अध्ययन-कक्ष में चली गईं, तब उनका अनुमान था कि 'दीपशिखा' और 'यामा' की महादेवी लौट आई हैं।" इस पर उन्होंने केवल इतना कहा, "भाई मैं तो सब जगह एक सी ही हूँ" तुरन्त विषय की धारा मोड़ बोलीं, "जब सन् ४२ में यहां आसपास के गांव के गांव पुलिस ने जला दिये थे तब हमने उनके लिये जो बेचारे बेघरबार हो गये थे, बहुत से कपड़े और दवाइयां एकत्रित की थीं। कठिनाई तो यह थी कि हम जिस को भी उन्हें लेकर भेजती थीं उसे ही पुलिस गिरफ्तार कर लेती थी। इसलिये हम स्वयं ही जाया करते थे। पुलिस मुझे गिरफ्तार नहीं करती थी, बल्कि उल्टे मुझसे कहा करती थी कि हमारे बाल-बच्चों को भी देखती आइयेगा गुरु जी! वे सब मुझे जानते थे, क्योंकि पहले भी मैं उन गांवों में आती जाती रहती थी। पर उनकी बात तो देखिये दूसरों का घर उजाड़ रहे हैं, दूसरों के बाल बच्चों को बेघरबार कर रहे हैं और अपनों के लिये कह रहे हैं कि उनको भी देखती आइयेगा। साथ में सी० आई० डी० भी जाता था। एक दिन हम उसे पहचान गये। हमने उससे पूछा, "सोना बिट्टी जाओगे?" बोला, "नहीं"। हमने दूसरे गाँव केलिये पूछा, "बोला नहीं" हमने कहा, "तो फिर हमारे साथ-साथ चलना है तो लो, थोड़ा सामान ही ले चलो। इस तरह हमने अपना सामान ही उस पर लाद दिया। बेचारा घबरा गया और फिर तो उसने हमारे साथ-साथ चलना छोड़ दिया।" मैंने कहा; "तो उन दिनों यहाँ भी आप पर दृष्टि रक्खी जाती होगी?" "हाँ, यहाँ भी रक्खी जाती थी और उन दिनों हमारी डाक पर भी सेन्सर था।" फिर आगे बोलीं, "सन् ४२ से फिर तो विश्राम मिला ही नहीं। काम बहुत करना पड़ा। पांच-पांच छः-छः मील धूल मिट्टी, ऊबड़ खाबड़ में पैदल घूमना, इधर-उधर के काम करना, रात में बहुत अधिक जागना। सन् ४२ के बाद बंगाल का अकाल पड़ गया

और इतना काम मुझे निपटाना पड़ा कि मेरी आँखें और स्वास्थ्य फिर ठीक नहीं हो सके। तब से ऐसे ही चली आ रही हूँ।"

जब वे अपनी बात पूरी कर चुकीं तो मैंने पूछा, "आपकी संसद् की पुस्तकें छपती कहाँ हैं?" बोलीं, "इधर उधर के दूसरे प्रेसों में।" "आपके हाथ में इस समय कितना काम है?" बोलीं, "पांच-छः किताबें हैं।" मैं बोला, "आजकल तो आलोचना, कहानी और उपन्यास का खूब मारकेट है।" इस पर वे बोलीं, "हाँ कविता का मारकेट बिल्कुल नहीं। यही कारण है कि बहुत से लेखक कविता के क्षेत्र से कहानी उपन्यास और आलोचना की ओर मुड़ गये हैं।"

इस समय मुझे आपकी "रहस्य साधना" वाली पुस्तक का समर्पण याद आ गया और मैं ज़रा हँस कर महादेवी जी से पूछ बैठा, "आपकी 'रहस्यसाधना' वाली पुस्तक का डैडीकेशन मानव जी ने 'सा' को किया है। पता नहीं ये 'सा' कौन है?" इस पर वे बिल्कुल हँसी नहीं और कुछ असमंजस के से भाव उनके मुख पर दृष्टिगत हुये। बोलीं, "कोई 'सा' से कल्पना होगी या कल्पना का कोई आधार होगा।"

मैंने कहा, "सा से सावित्री होता है और सावित्री उनकी पत्नी का नाम भी है, पर पूछने पर वे कह रहे थे कि पत्नी को डैडीकेट Dedicate नहीं की।" इस पर बोलीं, "तुमने उनसे पूछा नहीं" मैंने कहा, "पूछा तो था पर उन्होंने केवल इतना ही बताया कि पत्नी को नहीं है और जिसे यह डैडीकेट Dedicate की गई है वह आप के काव्य को बहुत अच्छी तरह समझता है।" इस पर वे जरा हँसी और बोलीं, "यह रहस्य तो हमारे रहस्यवाद से भी ऊँचा है।" इस विषय में तो मेरी भी धारणा वैसी ही है जैसी महादेवी जी की। आपने इस पुस्तक में महादेवी जी के रहस्य को तो सुलझा दिया है, पर अपने रहस्य में उलझा दिया है। कौन जाने इस रहस्य को कभी कोई सुलझा भी पायेगा?

इतने में उनकी एक शिष्या अपने पिता जी के साथ आ गईं। मैंने विदा ली।

स्नेहाभिकांक्षी
शिवचन्द्र नागर

८

३० ए० बेली रोड,
प्रयाग
२०।१२।४६

आदरणीय 'मानव' जी,

कई दिन से पत्र की प्रतीक्षा थी। आज संध्या को पत्र मिला। इस समय रात के १० बजे हैं। चारों ओर नीरवता है। बस कभी-कभी कमरे के बाहर-वाली सड़क पर किसी की पदचाप या कुत्ते की भौं-भौं उस शांति को भंग कर देती है।

मैं उस दिन विदा हो गया, उदास और निराश। कर्तव्य ने भावना को ललकारा और मुझे विदा होना ही पड़ा। पता नहीं मुरादाबाद का जीवन मुझे क्यों अच्छा लगता है। आपके साथ दस दिन किस प्रकार व्यतीत हो गये थे। यदि पूरा जीवन ही इस प्रकार व्यतीत हो हो जाये ? बहुत मनन के बाद मुझे तो ऐसा लगा है कि मुरादाबाद मेरे लिये 'भावना क्षेत्र' है और इलाहाबाद 'कर्तव्य क्षेत्र।' इलाहाबाद में आकर पता नहीं क्या बात है मुझसे गीत नहीं लिखे जाते। ऐसा लगता है जैसे यहाँ आने पर मेरे अन्दर का गीतकार मर सा जाता है। आप मुझे अपने प्रत्येक पत्र में अपना अमित स्नेह देखकर उकसाते रहते हैं, पर कुछ होगा नहीं। मेरे प्राणों का संगीत मर सा गया है। संगीत ही नहीं, कभी-कभी लगता है मैं भी मर गया हूँ। केवल कंकाल मात्र शेष है।

मैं लिखना क्या चाहता था और लिख क्या गया। हाँ, अभी कनवोकेशन डिनर से लौटा हूँ। वहाँ श्री बच्चन जी भी आये थे। मैंने उनसे कहा, "आपने पत्र नहीं लिखा?" बोले: हाँ, मैं भूल गया। फिर ज़रा रुक बात को बढ़ाते हुये बोले, "ज़रा संकोच सा होता है। जब कोई मुझ पर लिखना चाहता है, जहाँ तक होता है मैं Discourage ही करता हूँ।" उनकी यह बात सुन कर मैं चुप रह गया। वास्तविक अर्थ में यह बात हिन्दी साहित्य में महादेवी को छोड़कर दूसरे के मुँह से अच्छी नहीं लगती। बच्चन जी यह बात कह तो रहे थे, पर लोगों के मुँह मैंने यही सुना है कि साहित्यिकों में वे नाम और दाम दोनों के सब से अधिक दीवाने हैं। कदाचित् वे आज पत्र लिखें, क्योंकि जब मैंने उनसे कहा, "यदि आप न लिख सकें तो आप मुझे बतला दें, मैं लिख दूंगा।" तो वे बोले, "नहीं मैं स्वयं ही लिखूंगा।"

लल्ली प्रसाद जी पांडेय का पत्र आया था। मैं उन्हें कुछ ज़रूर भेज दूंगा। किसी दिन अवसर मिल गया तो मिलूंगा भी।

परसों सोहन लाल द्विवेदी जी से मनमुटाव हो गया। बात यह थी कि जब मैंने 'गांधी अभिनन्दन ग्रन्थ' के गुजराती विभाग का और उसके अनुवाद का पूरा संशोधन कार्य किया था तो एक तो मैंने उसमें गांधी जी पर गुजराती की कविता दी थी, उसको उन्होंने छापने के लिये कह दिया था और एक वायदा उन्होंने यह किया था कि अपनी भूमिका में मेरा नाम देंगे। दो महीने बाद मैंने उनको पत्र लिखा। उत्तर आया, "कविता तो मैं नहीं दे सका क्योंकि मैं गुजराती से अनभिज्ञ हूँ।" यह बात मुझे तनिक भी बुरी नहीं लगी। पर अब वे यहाँ आये हुए थे। उनकी भूमिका जा रही थी। मैं उनसे मिला। मैंने कहा, "नाम तो आप दे रहे होंगे?" बोले, "मैंने नाम दिये तो थे पर इस प्रकार दिए थे कि इन सज्जनों ने प्रूफ़ ठीक करने में मेरी मदद की। इस पर निर्मल जी बिगड़ गये और बोले कि यह लिखो कि परामर्श दिया। यह मैंने लिखने से मना कर दिया, क्योंकि लिखता तो तब, जब वास्तव में परामर्श दिया

होता।" मैंने कहा, "निर्मल जी की बात छोड़िये। मैंने प्रूफ़ नहीं पढ़े हैं। मैं तो प्रूफ़ पढ़ना जानता तक नहीं।" बोले, "क्यों नाम के पीछे इतनी पर्वाह करते हो? अब तो सब की राय यही है कि इस तरह आठ-दस नाम देने ठीक नहीं।" मैंने कहा, "जब आपने कहा था तो आपको नाम देना चाहिये" बोले, "नागर। अभी तुम में बचपना है। जरा-जरा सी बातों को इतना महत्त्व देते हो।" इस प्रकार उन्होंने बात ही उड़ा दी। यह दशा है आजकल के साहित्यिकों की। पर द्विवेदी जी की बात यहीं छोड़े देता हूँ। यह चर्चा दम घोटने वाली लग रही है।

'ऊर्मि' और 'शलभ' पढ़कर उसमें संशोधन का आपको पूरा अधिकार है। उर्मि १९४४-४५ में लिखी गई थी। मन की जो बात ऊर्मि में नहीं कह पाया वह 'अवशेष' में कहने का प्रयत्न करूँगा। अवशेष समाप्तप्राय ही है। इसमें १०१ गीत रखने का विचार है। अवशेष में १९४५-४६ और १९४६-४७ दो वर्ष का जीवन होगा। परीक्षा के बाद 'विराम' गीत-संग्रह आरम्भ करूंगा जिसका पहला गीत होगा—

थक गये चरण, रुक गये चरण।

शिवचन्द्र नागर

९

३० ए० बेली रोड,
प्रयाग
२६।१२।४६

आदरणीय 'मानव' जी,

कल प्रभात में आपका २५।१२।४६ के प्रभात का लिखा हुआ पत्र मिला।

'प्रभात' की पुस्तकों के लिये तो 'प्रभात' की प्रसन्नता ही बहुत थी। माता जी का आशीर्वाद तो सदैव वांछनीय है ही। पर भाभी जी के धन्यवाद का मैं बहुत-बहुत आभार मानता हूँ। मुझे दुःख तो इस

बात का है कि आर्थिक अभाव के कारण हम अपने बच्चों की शिक्षा इस प्रकार आरम्भ नहीं कर सकते जिस प्रकार करना चाहते हैं।

कल संध्या को मैं श्री लल्ली प्रसाद पांडेय जी से मिला। बड़े ही सज्जन व्यक्ति हैं। मैंने उनके विशेषांक के लिये एक कहानी दे दी है।

कल मैंने प्रमोद पुस्तक माला से प्रकाशित "महादेवी" पुस्तक को देखा। इसके लेखक गंगा प्रसाद पांडेय हैं। उन्होंने उसमें महादेवी जी की शिक्षा, उनके माता पिता के नाम और विवाह आदि की बातें लिखी हैं। सबसे बड़ी बात तो यह है कि पांडेय जी पुस्तक में भी 'देवी जी' 'देवी जी' लिखते हैं, जो अच्छा नहीं लगता। ऐसा लगता है पांडेय जी ने महादेवी जी पर लिखा तो अवश्य है, पर अन्तर की प्रेरणा से नहीं लिखा।

आप शांति की बात करते हैं, पर मैं समझता हूँ, साहित्य की सृष्टि मानसिक संघर्ष से होती है। मानसिक संघर्ष से अशांति मिलती है और इससे यह सिद्ध हुआ कि काव्य सृजन और अशांति co-existent हैं। जो professional writer हैं उनकी बात तो छोड़िये, उनके लिये तो काव्य सृजन mentnl prostitution हुआ, पर जो कलाकार है उसके जीवन में अशांति ही उसकी कला को बल देती है, प्रेरणा देती है। मेरे विचार से कला का अंकुर टूटे हुए हृदय की दरार में उगता है और अगर दरार गहरी है तो एक दिन वह अंकुर एक विशाल वट-वृक्ष हो सकता है। उसकी शीतल छाया में अभितप्त विश्व शांति पा सकता है, आया कि उसका जन्म अशांति से हुआ है। 'अवसाद' के गीत पढ़कर मुझे ऐसी ही शांति मिलती है।

२३ ता० की सन्ध्या को ··· का तार आया था। पढ़ कर मैंने आज एक बिल्कुल नवीन अन्तर्द्वन्द्व का अनुभव किया। कदाचित् ··· का यह अन्तिम समय हो। तार को पढ़कर मेरे अन्तर के मानव ने कहा, "तुम्हें जरूर जाना चाहिये, क्या पता ··· की यह अंतिम आकांक्षा हो

कि उसके अन्तिम समय पर मैं उसके पास रहूँ।" पर दूसरे क्षण मेरे अन्तर का कलाकार आ खड़ा हुआ बोला, "उसका तुम्हारे जीवन में आना तो तुम्हारी मृत्यु है। अपने जीवन के हिमानी शिखर पर अपने प्राणों का स्नेह ढाल कर जो साधना-दीप तुमने जलाया है वह व्यक्ति तुम्हारे जीवन में आकर अपने आँचल से उसे बुझा सकता है, क्या वह तुम्हारी मृत्यु नहीं होगी?" मैं वहाँ गया नहीं। मेरे अन्तर के कलाकार ने मेरे हाथों और पैरों में बेड़ियाँ डाल दीं। दुनियाँ तो इस बात को समझ नहीं सकती, केवल कठोर और क्रूर कह कर रह जायगी।

शिवचन्द्र नागर

१०

३० ए० बेली रोड
प्रयाग
१।१।४७

आदरणीय 'मानव' जी,

पत्र बीच में टकरा ही गये।

यह नव वर्ष का प्रभात है। आज मेरे जीवन के बीस वर्ष बीत गये। कदाचित् प्रथम चरण समाप्त हो गया। नव जीवन में हर्ष लायेगा, चिन्ह ऐसे दिखाई नहीं देते बल्कि सोचता हूँ यह वर्ष सब वर्षों से अधिक दुःख भरा होगा क्योंकि आज का प्रभात ऐसा ही लग रहा है।

'ऊर्मि' के सभी गीतों में कोई व्यवस्थित कथा नहीं, केवल प्रणय के सरोवर में समय-समय पर उठी हुई लहरें हैं। इसका कारण मैं यही समझता हूँ कि यह उस अवस्था का प्रेम है, जब किशोरावस्था की सीमा युवावस्था से मिलती है। इसीलिये मैं यह भी सोचता हूँ कि मेरे हृदय में ऐसी आग नहीं जैसी होनी चाहिये थी। इस दृष्टि से मैं अभागा ही हूँ।

'मूर्ति' की क्या स्थापना करूं ? जिस प्रणय-मूर्ति की आराधना की थी, वह तो मर चुकी अब तो केवल संसार में उस मूर्ति की मूर्ति रह गई है।

'मूर्ति' पत्थर की ही है, पर मैं उसमें प्राण डालना चाहता हूँ। यही मेरे जीवन की साधना है।

नव वर्ष के उपलक्ष में प्रभात को अपना 'अमित दुलार' भेज रहा हूँ। आशा है इस वर्ष में वह अपनी मातृ भाषा का पढ़ना सीख लेगा। इसका भय नहीं, चाहे रुक-रुक कर ही अटक-अटक कर पढ़ना सीखे। ज़रा तुतला कर बोलना और गल्ती-सल्ती अटक-अटक कर पढ़ना शिशु का सौंदर्य ही है।

लिखियेगा कि आप बनारस जायेंगे या नहीं। यदि आप बनारस न जाँय तो मैं दो दिन के लिये मुरादाबाद आऊंगा। २८ जनवरी को मेरे भानजे की शादी है। बारात मुरादाबाद ही आयेगी। पता नहीं मन कुछ ऐसा हो गया है कि किसी की भी शादी अच्छी नहीं लगती। कल मैं हार्डी का 'टेस' पढ़ रहा था। उसमें टेस अपने प्रेमी से कहती है, "प्रियतम हम जीवन भर ऐसे ही रहेंगे, विवाह नहीं करेंगे।" कितनी अच्छी बात थी।

मेरे लिये तो 'निराला की जयन्ती' और विवाह दोनों ही बराबर हैं। यह आप पर निर्भर है। पता नहीं आप बनारस आना पसन्द करेंगे या मुरादाबाद रहना।

कल..............का पत्र आया था। उसमें लिखा था कि ....मृत्यु के मुख से बच गई है। इसको पढ़ कर सुख भी हुआ और दुःख भी। अन्तर की ऐसी दशा जिसमें सुख-दुख दोनों हों, बड़ी ही दुखदायिनी होती है। इसमें घंटों तक सुख दुख की मिली हुई लहरें अन्तर के पुलिनों को घिसती रहती हैं। यह मुझे नहीं भाता। या तो केवल सुख हो या फिर केवल दुःख।

पत्र में आप अपने उमड़ते हुए अन्तर को रोक गये। पर मैं नहीं रोक पाता। बस मुझमें और आप में इतना ही अन्तर है। कदाचित् यह अन्तर अवस्था तथा अनुभव का है। पर उन आँसुओं से जो आँखों से बह जायें, वे आँसू अधिक भयंकर होते हैं, जो आकर लौट गये हों, उस आग से जिससे जलने को मिल रहा है वह आग अधिक प्रलयंकारी है जो जली नहीं पर सुलग रही है।

'अवसाद' पर चित्रित कवि की आँखों का चित्र देख कर मेरी आँखों के सामने वास्तविक कवि की आँखें तैर जाती हैं। सोचता हूँ इन आँखों में अगणित बार अगणित आँसू आये हैं, उन्हें किसी के कोमल करों ने नहीं पोछा। कवि के बँधे हुये हाथ भी उन्हें पोछने को नहीं उठे। वे आँसू धरा पर भी नहीं गिरे।
कैसे आँसू हैं वे!

सश्रद्धा
शिवचन्द्र नागर

११

३० ए० बेली रोड,
नव वर्ष की संध्या.
१।१।४७.

आदरणीय मानव जी,

आज नव वर्ष की संध्या थी। आकाश मेघाच्छादित था। कुछ ठंडी और मीठी-मीठी पवन चल रही थी। ऐसे समय में मैं अपने पैर घर में बँधे न रख सका। अपने एक मित्र के साथ सिविल लाइन्स की ओर चल पड़ा। इधर-उधर घूमकर लौटना चाहा, क्योंकि ६ बजे से कर्फ्यू लगने वाला था। इन सांप्रदायिक दंगों ने जीवन को ऐसा बना दिया है कि हम अपने ही पैरों की आहट पर विश्वास नहीं कर सकते।

लौटती बार जब हम सुश्री महादेवी जी के बंगले के सामने से निकले तो देखा महादेवी जी अपने ड्राइंग रूम में बरामदे में खड़ी हुई

किसी व्यक्ति को विदा दे रही थीं। उनके दर्शन दूर से ही कर मैं उनके पास जाने और उनसे बातचीत करने के प्रलोभन का संवरण नहीं कर सका। हम दोनों उनके पास चले गये। तीसरे व्यक्ति ने विदा ले ली।

ड्राइङ्ग रूम में हम बैठ गये—महादेवी जी एक कोनेवाले सोफे पर उस दरवाजे के पास जो ड्राइंग रूम को अन्दर घर से मिलता है, मेरे मित्र कुर्सी पर और दूसरे सोफे के एक कोने पर मैं बैठ गया।

मैंने उनके स्वास्थ्य के सम्बन्ध में पूछा। बोलीं, "अब तो प्रति दिन ज्वर आ जाता है। डाक्टर ने यह भी बताया है कि जौंडिस Jaundice हो गई है। मैं सोचती तो थी कि मेरा शरीर पीला पीला हो गया है, पर समझती थी, खून की कमी है, पूरी हो जायगी।"

'डाक्टर......का ही इलाज है न" मैंने पूछा।

"नहीं, उनकी दवाई से कोई आराम नहीं हुआ। अब तो दूसरे डाक्टर का इलाज है," वे बोलीं।

फिर मैं अपने मित्र की ओर संकेत कर बोला, "ये मेरे मित्र...... हैं। बहुत दिनों से आपके दर्शनाभिलाषी थे।" मेरे मित्र की ओर मुड़ कर वे बोलीं, "यह छोटी सी अभिलाषा तो कभी की पूरी हो सकती थी, भाई।" "ये तो जीवन की महान् अभिलाषायें होती हैं किसी कलाकार से मिलने की," मेरे मित्र बोले।

"जीवित और साकार व्यक्ति को तो कभी भी देखा जा सकता है।" महादेवी जी ने हँस कर कहा।

फिर मैं बोला, "श्री सोहन लाल द्विवेदी मुझे मिले थे। मैंने उनसे आपका गांधी जी वाला चित्र लौटा देने को कहा था और यह भी कहा था कि यदि वे न लौटा सकें तो मुझे दे दें, मैं पहुँचा दूँगा। इस पर वे बोले हाँ, आप लेते जाइयेगा, मेरा तो जाना नहीं होता। महादेवी जी बोलीं, "जब वह चित्र लेने के लिये आये थे तो लौटाने आने में क्या बात थी? इंडियन प्रेस में ही ठहरे होंगे?" "अभी तो वे कहीं गये

हैं।" मैंने कहा। बोलीं, "काँची गये होंगे?" "हाँ काँची ही गये हैं। मुझसे कह रहे थे कि भाई कवि सम्मेलन में प्रेसाइड pre ide करने के लिये एक्सप्रेस टेलिग्राम आया है। उसके जवाब में मैंने यह लिखा है।

send double first class fare आजकल तो द्विवेदी जी ख्याति बटोरने में लगे हुये हैं," मैंने कहा।

"इतना प्रयत्न करने पर यदि इतनी छोटी सी चीज़ मिल जाये तो अच्छा है।" महादेवी जी बोलीं।

मैंने कहा, "यह बात तो ठीक है, पर बातें तो वह उल्टी करते हैं। 'गाँधी अभिनन्दन ग्रन्थ'की भूमिका में गुजराती विभाग के संशोधन कार्य के उपलक्ष्य में उन्होंने मेरा नाम देने के लिये कहा था। अब दो महीने बाद मेरी उनसे भेंट हुई। भूमिका छपने जा रही है। मुझे तो पूरा विश्वास था ही कि नाम अवश्य दिया होगा, पर फिर भी मैंने वैसे ही पूछ लिया कि आपने भूमिका में नाम दे दिया क्या? बोले, 'ऐसे नाम कितने ही थे, सोचा इतने नाम देना ठीक नहीं रहेगा। इसलिये अब तो यह विचार छोड़ दिया है।' इस पर मैंने कहा, "बात तो कुछ नहीं थी, पर मैंने अपने कुछ मित्रों से यह कह दिया था कि 'गांधी अभिनन्दन ग्रन्थ' के दूसरे संस्करण में गुजराती विभाग में मेरा भी नाम आयेगा। अब वे देखेंगे और मुझसे कहेंगे तो मेरी बात झूठी पड़ेगी। इस पर बोले, "अरे नागर, तुम भी क्या छोटी सी बात के पीछे पड़े?' यह सुनकर महादेवी जी खूब जोर से हँसी। बोलीं, "कैसी अजीब बात है जिस चीज़ को स्वयं पकड़ना चाहते हैं उसे दूसरे को पकड़ने के लिये मना करते हैं।"

फिर मैं बोला, "मानव जी का पत्र आया था। उसमें लिखा था कि आपका पत्र नहीं मिला।" बोलीं, "अभी मैं लिख नहीं सकी।" मैंने कहा, "मैं इसी लिये पूछ रहा था कि कभी आपने लिख दिया हो।" बोलीं, "नहीं अभी मैंने लिखा ही नहीं।" "तो सदस्यता के फार्म दे

दीजियेगा। मैं मुरादाबाद भेज दूंगा," मैंने कहा। "नहीं, मैं भेज दूँगी। अब मैं उन्हें एक दो दिन में पत्र लिखूँगी ही।" मैंने ज़रा मुस्करा कर कहा, 'अवसाद' वाले उस दिन के प्रसंग पर मानव जी ने लिखा है कि यह प्रसंग आपने वहाँ क्यों उठाया। महादेवी जी ने मेरे लौकिक गीतों को क्या पढ़ा होगा और पढ़े भी होंगे तो उन्हें क्या अच्छे लगे होंगे।"

बोलीं, "मैं तो जो भी पढ़ती हूँ तटस्थ पाठक की स्थिति में होकर पढ़ती हूँ और फिर लौकिक अलौकिक की क्या बात? यदि हमारे अलौकिक गीतों को कुछ लोग लौकिक समझ सकते हैं तो किसी के लौकिक गीतों को हम अलौकिक भी समझ सकते हैं। उन्होंने चाहे किसी व्यक्ति पर लिखें हों, पर किसी व्यक्ति पर भी तभी लिखा जाता है जब उसमें कवि ने किसी अलौकिकता के दर्शन किये हों। यदि उसने ऐसा नहीं किया और व्यक्ति की सीमा में ही बंध गया तो एक दिन वह थक जायगा।" मैंने कहा, "हां, उस व्यक्ति की मूर्ति आंखों के सामने से हट जानी चाहिये।" बोलीं, "हां, यदि व्यक्ति की सीमा में ही कवि उलझ गया, तो लिख नहीं सकेगा और यदि लिखा तो लिखेगा भी कब तक? हमें व्यक्ति का सीमित स्वरूप नहीं लेना चाहिये, उसका विराट स्वरूप लेना चाहिये, इससे कवि थकेगा नहीं और न समाप्त होगा, बढ़ता ही रहेगा।" फिर बात को आगे बढ़ाती हुई बोलीं, "और अलौकिक गीतों में भी रूपक तो इस लोक से ही लिये जाते हैं। एक व्यक्ति में जब हम अलौकिक तत्व के दर्शन करते हैं तो फिर हमें उस तत्व के दर्शन, फूल में, पत्तियों में, तारों में, गगन में सर्वत्र ही होने लगते हैं।"

उनकी बात समाप्त होते ही तुरन्त मेरे मित्र बोल पड़े, "यह बात उर्दू कवियों में बहुत पायी जाती है कि वे व्यक्ति के सीमित रूप के ही दर्शन करते हैं।" बोलीं, "हां, उर्दू कवियों की बात तो ऐसी ही है, उनकी दुनियां में तीर चलते हैं, बर्छियां घुसती हैं, गर्दन कटती हैं और महफ़िल तो ऐसी लगती है, जैसे बधशाला हो।" इस पर वे स्वयं भी

बहुत हँसीं और हम दोनों भी। कुछ क्षणों तक हम तीनों केवल हँसते ही रहे। फिर अपनी ही बात पर आती हुई महादेवी जी बोलीं, "प्रति दिन कितने आदमियों के जीवन बरबाद होते हैं। कोई आत्महत्या करता है तो कोई कुएं में डूबकर जान दे देता है। अगर उनमें शक्ति है तो वे क्यों नहीं उस 'व्यक्ति' को प्राप्त कर लेते? पर ये सब 'व्यक्ति' की सीमा में बँधे हुए होते हैं। 'व्यक्ति' की सीमा में बंधा हुआ व्यक्ति बरबाद ही हो जाता है।"

मैंने कहा, "उर्दू की इस प्रणाली का हिन्दी पर भी प्रभाव पड़ा है। इस विषय में फ़िराक साहब ने कोई पुस्तक भी लिखी है। 'तरुण' में लेख माला भी निकल रही है। एक लेख में उन्होंने गुप्त जी के विषय में बहुत कुछ लिखा था।" महादेवी जी बोलीं, "हां, वे हिन्दी के तो विरोधियों में से हैं।" मैंने कहा, "एक बार फ़िराक साहब मेरे एक मित्र से बोले कि हिन्दी में कोई करुण रस की कविता सुनाओ। उन मित्र महोदय ने गुप्त जी की ये पंक्तियां सुना दीं 'अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी। आँचल में है दूध और आंखों में पानी।' इस पर फ़िराक साहब बोले, "राम राम इस 'हाय' शब्द ने सारी रेड मार दी। करुण रस की कविता तो वह है कि सुन कर हाय निकल पड़े।" यह सुनकर महादेवी जी बोलीं, "यह बात तो उनकी ठीक है। गुप्त जी 'अहा' 'हा' 'ओ हो हो' 'हाय' ऐसे शब्द बहुत प्रयोग में लाते हैं।"

फिर मैंने बात बदली और कहा, "कल मैंने पत्र में पढ़ा था कि दस हजार रुपया निराला जी की स्वर्ण जयन्ती के लिये कलकत्ते की business community से मिल गया है। अब तो इन लोगों को निराला जी के लिये कुछ करना ही चाहिये।" वे बोलीं, "पर ये करेंगे नहीं। सब इधर-उधर लगा देंगे। कवि लोग कवि सम्मेलन में आयेंगे, कदाचित् उन्हें देंगे और आने वाले लोगों के ऊपर भी खर्च करना पड़ेगा।"

"फिर तो आप असहयोग कर रही होंगी?"

"यह कैसे हो सकता है। निराला जी को सम्मान मिले इसमें तो हमारी प्रसन्नता ही है।"

"पर जब वे बीमार हैं और उनका उपचार कुछ हो नहीं रहा तो वे अपनी जयन्ती में जायेंगे कैसे ?" मैंने कहा। बोलीं "ये लोग उन्हें ले जायेंगे तो वे चले तो जायेंगे; पर वहाँ सब आदमियों के बीच में इधर-उधर की बात कहेंगे, यह होगा। मैं इन लोगों से कहूँगी कि उनके उपचार के लिये कुछ किया जाय। थोड़े दिनों बाद तो फिर मैं उन्हें बुला ही लूंगी, क्योंकि संसद् की जमीन का काम हो गया है।" मैंने बड़ी प्रसन्नता से कहा "हो गया ?" बोलीं, "हां हो तो गया। अब कोर्ट खुले तो फिर सब काम हो जाये।"

"तो फिर आप २७ जनवरी को बनारस जा रही होंगी ? वैसे तो उस दिन यहाँ भी दीक्षान्त समारोह रहेगा।" बोलीं, "देखो क्या होता है, पर हमें जाना अवश्य चाहिये।" "मैंने मानव जी को भी यहां आने के लिये लिखा है। वे आयें तो कदाचित् बनारस मैं भी जाऊँगा।"

इसी बीच मेरे मित्र बोल पड़े, "name और fame ऐसी चीज हैं जिससे दुनिया का कोई भी आदमी बच नहीं पाता।" इस पर महादेवी जी बोलीं, "यह बात ठीक तो है पर कुछ व्यक्ति इससे बचने के लिये संघर्ष भी करते हैं।" ऐसा लग रहा था जैसे मेरे मित्र के कहे हुए नियम में महादेवी जी यह अपना अपवाद जोड़ रहीं हों। वे इतना कह ही पायी थीं कि गंगा प्रसाद जी पाण्डेय अपने दोस्त साथियों के साथ घुस आये। महादेवी जी प्रणाम का उत्तर देने के लिये उधर को मुड़ गईं। वे तीनों व्यक्ति बैठ गये। क्षण भर शान्ति रही। फिर मैं उठा, हाथ जोड़ कर महादेवी जी को प्रणाम किया, मेरे मित्र ने भी हाथ जोड़े और महादेवी जी के मुख से कमरे के निभृत वातावरण में एक दबे हुए शांत स्वर में 'जयहिन्द' शब्द गूँज उठा। तिरंगे

तकिये के सहारे खादी की धवल धोती में सुशोभित महादेवी जी की इस मूर्ति से कदाचित् भारत वासी अभी परिचित नहीं हैं।

हाँ, मैं यह कह रहा था कि २५ जनवरी की सुबह को आप यहाँ इलाहाबाद आ जाइयेगा। २६ की रात को यहाँ से बनारस चलेंगे और २७ की रात को मैं और आप दोनों मुरादाबाद लौट जायेंगे। फिर मुरादाबाद में मैं दो दिन रहूँगा। मैं तो यही प्रोग्राम ठीक समझता हूँ। आप अपनी सम्मति लिखियेगा। उत्तर जल्दी ही दीजियेगा।

सश्रद्धा
शिवचन्द्र नागर

१२

३० ए०, बेली रोड,
प्रयाग
१६।१।४७

आदरणीय 'मानव' जी,

१५।१।४७ का पत्र अभी मिला है। अब संध्या के अंतिम पल बीतने वाले हैं। कमरे की खिड़की के सीखचों से आनेवाली किरणें भी अब खिसकना ही चाहती हैं। सोचता हूँ संध्या की छाया में ही यह पत्र लिख कर समाप्त कर दूँ।

पत्रों के सम्बोधन अपने-अपने मन के अनुसार रख लिये थे। इस विषय में एक पारस्परिक समझौता अवश्य हो जाना चाहिये पर समझौता आपके सोचे हुये प्रस्ताव पर नहीं होगा, बल्कि मैं तो यह सोचता हूँ कि आप की प्रस्तावित बात का उल्टा कर दूँ। मेरे नाम के आगे से आपको 'जी' हटा देना चाहिये और मैं आदरणीय का स्थान किसी दूसरे शब्द को दूँगा, यदि मुझे कोश में मिल गया, जो इससे अधिक आदर सूचक हो, अधिक स्नेह-गर्भित हो, अधिक सुन्दर हो।

एक साहित्यिक दूसरे साहित्यक से मिलने पर सतर्कता से बात करता है और इस प्रकार स्वाभाविक व्यवहार पर कृत्रिमता का

आवरण पड़ जाता है। यह देखकर मैंने तो ऐसी धारणा बना ली है कि जब भी किसी साहित्यिक से मिलूँगा तो उसके व्यवहार को उसकी साहित्यिक धारणा से सम्बन्धित नहीं करूँगा। यह बात मैंने सोहनलाल द्विवेदी से सीखी है। हिन्दी के साहित्यिक कुछ ऐसे हैं कि उन्हें अपनी जाति के किसी व्यक्ति से मिलने पर प्रसन्नता नहीं होती। ईर्ष्या की भावना कदाचित् उनके अन्तर को कचोटने लगती है। महादेवी जी में यह बात नहीं। मुझे तो यह पूरा विश्वास है कि महादेवी जी का शत्रु भी यदि उनसे एक बार मिल ले, तो बाहर आने पर वह पानी हो ही जायगा, इसमें संदेह नहीं;

आप २४ ता० को मुरादाबाद से चल कर इलाहाबाद २५ को ११ या १२ बजे पहुँचेंगे। 'प्रयाग' स्टेशन पर ही उतरियेगा। यहाँ से बनारस २६ की सुबह ६ बजे चलेंगे। अपर इंडिया से बनारस ग्यारह बारह बजे के लगभग पहुँच जायेंगे।

सश्रद्धा
शिवचन्द्र नागर

१३

३० ए०, बेली रोड,
प्रयाग
२।२।४७

आदरणीय 'मानव' जी,

आज ऐसा लग रहा है जैसे हम और निकट आ गये हों। आज तो मन में यही आ रहा है कि ऊपर लिखे हुये आपके नाम के आगे से 'जी' हटा दूँ और जी की जगह 'भाई' लिख दूँ, पर श्रद्धा और सम्मान की भावना मेरा हाथ रोके ले रही है।

उस समय प्रयाग स्टेशन पर ट्रेन चल दी थी और मैं भी चल दिया था अपने घर की ओर भारी मन लिये।

जवाहर रेस्टूराँ में चाय पी, पर कुछ दिन पहले जो आपके साथ चाय पी जाती थी, आज की चाय उससे बिल्कुल दूसरी सी थी। आप के साथ पी जाने वाले चाय के प्यालों के साथ पता नहीं कितनी स्नेहाभिसिक्त भावनाओं का आदान-प्रदान होता था, पर आज की चा वह रस न था, अपने भारी मन को हलका करने के लिये ही मैं पी रहा था इसे।

२६ जनवरी की संध्या जीवन में कभी भी नहीं भुलाई जा सकती। सूर्यास्त होने ही वाला था कि हम चाय पीकर महादेवी जी के साधना-मंदिर की ओर चल दिये थे। रजनी के शुभागमन के साथ-साथ ही हमने उनके कमरे में प्रवेश किया था। कमरे में प्रवेश करने से पहले एक परिचारक के हाथ आपने एक चिट पर 'मानव' लिख कर भेज दिया था। हम कमरे में बिछे हुये फ़र्श पर बैठ गये थे। उस समय की कमरे में छायी हुई निस्तब्धता को देखकर आपने कहा था, "कमरे में मंदिर की सी शांति है।" कुछ क्षण हम बैठे रहे। फिर वह परिचारक आया और बोला, "आप बैठिये, गुरु जी आ रही हैं।" आप कदाचित् न जानते हों इस परिचारक का नाम दातादीन है और यह इलाहाबाद के पास ही किसी गाँव का रहने वाला है।

थोड़ी देर में महादेवी जी अन्दर से कमरे में आयीं। दोनों ओर से जुड़े हुये हाथ उठे। मुझे याद है महादेवी जी ने द्वार पर आते ही प्रणाम के लिये हाथ जोड़ लिये थे। अन्दर आकर वे अपने आसन पर बैठ गईं। एक बड़ा श्वेत उपधान उनको पीठ के पीछे था, एक-एक मख़मली बेल बूटों वाले गोलाकार उपधान उनके दायें-बायें और उन मख़मली गोलाकार उपधानों पर एक तिरंगा चौकोर उपधान शोभा दे रहा था और मैं तो यही कहूँगा कि अब मंदिर की देवी मंदिर में विराजमान थीं। सूना-सूना मंदिर अब भरा भरा सा लगने लगा था।

मैंने पूछा, "आपका दीक्षांत समारोह सकुशल समाप्त हो गया?"

"वह तो हो ही जाता" उन्होंने अटल विश्वास के साथ उत्तर दिया।

"माखन लाल जी आये थे ?" मैंने पूछा।

"हाँ, अभी तो वे यहीं हैं।" और फिर आपकी ओर मुड़ कर बोलीं, "आप तो उनसे परिचित होंगे !" और आपने कहा था "एक बार भेंट हुई थी।"

"आप बनारस नहीं आईं। कल तो आपकी बहुत प्रतीक्षा हो रही थी," मैंने पूछा।

"उन्होंने किसी को बुलाया ही नहीं। चतुर्वेदी जी को तो कोई खबर ही नहीं। मैं तो सोच रही थी कि दीक्षान्त समारोह समाप्त हो जाने के बाद बनारस चले चलेंगे, सुमन जी आये भी थे, पर चतुर्वेदी जी के लिये कोई निमन्त्रण न था। फिर यह कैसे हो सकता था कि मैं घर पर आये अतिथि को छोड़ कर चली जाती ? एक छपी हुई सूची भेज दी थी, उसमें मेरा भी नाम था इस संबंध में कि मुझे निराला जी का संस्मरण लिखना है, पर उसके बाद फिर उनका कोई पत्र नहीं आया। कवि सम्मेलन के सभापतित्व में मेरा नाम मुझसे बिना पूछे ही छाप दिया गया था।"

"निराला जी को आपका पत्र तो बिल्कुल ठीक समय पर मिल गया था," मैंने कहा।

"हाँ, पांडे जा रहा था। उसे मैंने पत्र दे दिया था। उस वेचारे को भी कोई निमन्त्रण न था। पता नहीं इन्होंने क्या किया जो निराला जी को जितना अधिक पास से जानते थे, उनकी उतनी ही बात नहीं पूछी।"

"मुझे तो पांडे जी वहाँ दिखाई दिये नहीं, नहीं तो मैं उनसे आपका परिचय अवश्य कराता।" मैंने आपकी ओर मुड़ कर कहा था। उस समय आपने पूछा था, "कौन पांडे ?" मैंने कहा, "गंगा प्रसाद पांडेय।" "ओह !" आप बोले।

"बेचारा कहीं भीड़ में बैठा होगा, उसके खाने-पीने की कुछ भी

बात नहीं पूछी। कहीं किसी होटल में ठहरा था।" महादेवी जी ने कहा।

"जयंती कुछ जयंती सी हुई नहीं। कम से कम पंत जी को तो आना ही चाहिये था।" आपने कहा था।

"पंत जी को तार तो दिया था, पर उन्हें लेने कोई नहीं गया।" महादेवी जी बोलीं।

"खैर आप तो विवश थीं, पर दूसरे लोगों ने बाजपेयी जी की ओर देखा, निराला जी की ओर नहीं।" आपने कहा। मैंने कहा "हाँ।" पर महादेवी जी इस बात का कोई जवाब नही दे पाईं।

"पूरे समारोह में कोई उत्साह सा दिखाई नहीं देता था। न अधिक भीड़ हो थी। पंजाब के डा० हरदेव बाहरी ने तो अपने भाषण में यह बात कही थी कि यदि यह उत्सव आज लाहौर के लारेंस गार्डन में हुआ होता तो, वहाँ पैर रखने को तिल भर जगह न मिलती।" आपने कहा।

"वेद मंत्र इत्यादि तो खूब पढ़े गये होंगे?" महादेवी जी ने हँस कर कहा।

"पहले वेद मंत्र पढ़े गये। फिर एक मराठी महिला ने तिलक किया। जानकी वल्लभ शास्त्री ने निराला जी के गीतों का गान किया। फिर भाषण हुए। भाषणों में विष्णु पराडकर बहुत अच्छा बोले। जब वे बोल रहे थे तो निराला जी ने बीच में कुछ कहा, पर वे बोलते ही रहे। ग्यारह हजार की निधि का announcement किया गया। अभिनन्दन ग्रंथ की जगह जो दस-पन्द्रह लेख आये थे उनको फाइल में रख कर केशव प्रसाद जी मिश्र आये और बोले ऐसे अवसर पर मैं क्या कहूँ कुछ भी नहीं कह सकता क्यों कि मैं अस्वस्थ हूँ और वह फाइल निराला जी को देकर चले गये। निराला जी ने अपनी कविता भी सुनाई थी। निराला जी सब काम ठीक प्रकार से कर रहे थे। मुझे तो वे पागल लगते नहीं!" आपने कहा।

इस पर महादेवी जी हँसकर बोलीं, "लोगों ने उन्हें पागल बना रखा है। एक आदमी को जब सब पागल पागल कहने लगें, तो वह पागल न भी हो तो पागल हो जायगा।"

"जयन्ती के दिन मंच पर बैठे हुये निराला जी बड़े भव्य लग रहे थे।" मैंने कहा।

"भव्य वे कब नहीं लगते ?" महादेवी जी बोलीं।

"किसी भी साहित्यिक समारोह में कम से कम इतना तो होना चाहिये कि एक दूसरे का परिचय मिल जाये। पर पूरे प्रोग्राम में इस प्रकार की कोई गोष्ठी नहीं रक्खी गई थी ? अपने पास बैठे हुये आदमी को भी हम नहीं जानते थे कि कौन है ?" आपने कहा और फिर मैं बोल पड़ा,

"कोई साहब कह रहे थे कि उनका किसी से कई वर्षों से पत्र-व्यवहार चल रहा था। यहाँ वे दोनों आये थे और पास-पास बैठे थे पर कोई भी एक दूसरे को न जानता था। फिर अकस्मात् उनका नाम पता चलने पर स्वयं एक दूसरे से वे परिचित हुए।" इस पर महादेवी जी हँसती रहीं।

"रात में कवि सम्मेलन हुआ था, दिनकर जी ने नोआखाली पर एक अच्छी कविता सुनाई थी।" आपने कहा।

"निराला जी ने भी सुनाई थी ?" महादेवी जी ने पूछा।

"हाँ, सुनाई थी।"

"सुभद्रा कुमारी जी ने भी एक रचना सुनाई थी।" मैंने कहा।

"दूसरे दिन सुबह को साहित्य परिषद् हुई। आठ बजे का समय था। सम्पूर्णानन्द जी ठीक आठ बजे आये और मूक उद्घाटन करके चले गये।" आपने कहा। इस पर हमें हँसी आये बिना न रही। आपने बात को आगे बढ़ाया, "साढ़े आठ बजे के लगभग जब हम पहुँचे, तो कुल चार आदमी वहाँ थे। विश्वनाथ प्रसाद जी कहने लगे कि हम

में से एक सभापति का आसन ग्रहण करे, एक इस प्रस्ताव को पढ़ दे, एक इसका अनुमोदन कर दे और एक श्रोता रहे। उनकी इस बात पर मैंने कहा: चारों काम आप ही संपादित कर दीजियेगा।" इस पर बड़ी हँसी रही थी।

"नागरी प्रचारिणी के हॉल में साहित्य परिषद्, आरम्भ हुई। वाजपेयी जी ने प्रस्ताव पढ़ा। अन्त में उन्होंने कहा, "मुझे बड़ी प्रसन्नता है कि सब इस प्रस्ताव से सहमत हैं।" इस प्रकार एक अभिनय सा होता रहा जिसके सूत्रधार वाजपेयी जी थे।"

"शाम को चार बजे से समीक्षा-परिषद हुई। उसमें बोलने वालों को वाजपेयी जी एक पर्चे पर लिखे हुए कुछ पाइंट्स दे देते थे कि इनके बाहर न बोलना। इन लोगों में डा० देवराज बहुत अच्छा बोले उनसे परिचय भी हुआ।"

"देवराज को मैं भी जानती हूँ" महादेवी जी बोलीं।

"डा० राम विलास ने कोई गम्भीर बात नहीं कही। हाँ, उन्हें मैंने कभी देखा नहीं था सो देख लिया। पूरे समारोह में मेरे लिए तो इतना ही हुआ कि दो आदमियों से परिचय हो गया—डा० देवराज से और डा० रामविलास जी से।"

"तो वाजपेयी जी ने सब कामों में अपनी ही बात रक्खी?" महादेवी जी ने कहा।

"पता नहीं क्यों जहाँ कहीं भी कोई साहित्यिक gathering होती है वह कुछ समय बाद ही एक fighting arena बन जाती है। मैंने कहा।

"जहाँ एक दो आदमी बोले कि उनकी बातों का दूसरे विरोध करने लगे। समीक्षा-परिषद में एक pamphlet बाँटा गया था। उसमें भी ऐसी ही बातें थीं।" मैंने आपकी ओर मुड़ कर कहा। मेरे मुड़ने का आशय यही था कि आप उस pamphlet का आशय समझा दें। आप तुरन्त बोल पड़े, "वहाँ एक pamphlet बाँटा

गया था। बात यह थी कि कहीं यूनिवर्सिटी की पत्रिका में यह छाप दिया गया था कि रामचन्द्र शुक्ल के इतिहास-लेखन में हिन्दी-विभाग का हाथ था। चन्द्रबली पांडेय तो शुक्ल जी के शिष्यों में से हैं। उन्हें यह बात असह्य हो गई। उन्होंने उसके विरोध में एक pamphlet छपवा कर बँटवा दिया। वह बात जो निर्मूल होने के कारण बिल्कुल उठ भी न पाती और शायद वहीं की वहीं दब जाती, अब दस आदमियों में फैलेगी।" यह बात महादेवी जी सुनती रहीं। तुरन्त ही मैं बोल पड़ा, "निराला जी की जयन्ती में भी सहयोग के साथ काम नहीं हुआ। मुझे तो ऐसा लगता है कि बनारस के साहित्यिकों में ही आपस में विरोध है।"

ये बातें हो ही रही थीं कि इतने में महादेवी जी की भक्तिन दो प्लेट्स में फल, मिठाई और नमकीन लिये हुई आ पहुँची। मैंने उसके हाथों में से प्लेट्स ले लीं। भक्तिन ने आज ही अपना सिर घुटाया था और घुटा हुआ सिर बिजली की रोशनी में चमक रहा था और भक्तिन की हँसी उसके बूढ़े देह-पंजर से बाहर इस प्रकार बिखर पड़ती थी जैसे किसी युग-युग की प्राचीन कन्दरा में से जोर की ध्वनि करता हुआ झरना नीचे गिर रहा हो।

भक्तिन के हाथ से प्लेट्स लेकर अभी मैं नीचे रख भी न पाया था कि आपने महादेवी जी की ओर मुड़कर कहा, "आज तो नागर जी ने खाना खिलाने के लिये भी मना कर दिया है।" आपकी इस बात पर मुझे हँसी आ गई और कुछ थोड़ा आश्चर्य भी हुआ कि इतना मौन रहने वाला व्यक्ति एकदम कैसे इतना कह बैठा!

महादेवी जी ने इतना ही कहा, "चाय तो पी लीजिये। खाना भी मिल जायगा।" मैंने उनमें से एक प्लेट आपकी ओर रख दी, और एक अपने सामने। इतने में लीला एक सफेद कलई के टी-सेट में चाय ले आई! चाय महादेवी जी ने लेकर अपने सामने वाले डेस्क पर रख ली और दो प्यालों में बनाने लगीं। एक प्याला उन्होंने अपने लिये भी बनाया। बीच-बीच में उसमें से एक दो घूँट चाय वे

भी पी लिया करती थीं। वहाँ बिल्कुल भी ऐसा नहीं लग रहा था जैसे हम अतिथि हों और वे हमारा आतिथ्य कर रही हों। यही लगता था कि यह हमारा वर्षों से परिचित घर है और हम इसी घर में बसने वाले एक परिवार के सदस्य हैं।

इसी बीच बात करतीं-करतीं महादेवी जी पूछ बैठीं, "आप यहाँ किसी और से भी मिले ?"

इसके उत्तर में मैं बोल पड़ा, "इनको तो कहीं आना-जाना या किसी से मिलना-जुलना पसन्द ही नहीं।"

"साहित्यिकों से मिलने पर उनके सम्बन्ध में बनी हुई धारणा बिखर जाती है।" मेरी बात में योग देते हुये आपने कहा।

"फिर भी जो जीवित हैं उनसे मिलना ही चाहिये।"

"बिना मिले ही उनकी कृतियाँ से उनको जाना जा सकता है। कोई कितना भी छिपाये पर उसकी कृति में उसका व्यक्तित्व झलक ही उठता है।"

"व्यक्ति से मिल कर उसके सम्बन्ध में और भी कुछ जाना जा सकता है। यदि जीवन का एक भी पन्ना पलट जाता है तो यह महत्त्व-पूर्ण बात है।'

"अधिकतर व्यक्तियों से मिल कर दुःख ही होता है, आपने उदास हो कर धीमे स्वर में कहा, इसलिये जहाँ तक हो सके न मिलना ही ठीक है।" क्षण भर के लिये आप रुके। फिर आपने कहा, "वाज-पेयी जी के ही दो-तीन पत्र आये थे। बड़े सुन्दर पत्र थे वे, पर जब बनारस पहुँचे तो उन्होंने एक बार भी यह नहीं पूछा कि हमारे ठहरने का भी कोई प्रबन्ध है। दो मिनट बात तो कर लेते।"

इस पर महादेवी जी ने हँस कर कहा, "आप यह बात ही क्यों सोचते हैं। आप यही समझिये कि वे एक अच्छे पत्र-लेखक हैं।" यह बात सुन कर मुझे बड़ी हँसी आई। कितना मीठा व्यंग करती हैं महा-देवी जी ! फिर बोलीं, "आप तो अभी से इतने निराश हो गये हैं।

बूढ़ों की सी बातें करने लगे हैं। हसते-खेलते चले चलिये।" उनकी इस बात पर मैं तो हँसी रोक न सका, लेकिन आपको जरा भी हँसी नहीं आयी और आपने वैसे ही गम्भीरता से कहा, "खेल बेमन से तो नहीं खेला जाता।"

"फिर भी जिन साहित्यिकों से मिलने का अवसर मिल जाये उनसे मिल ही लेना चाहिये। एकबार हम 'प्रसाद' जी से मिलने बनारस गये। वहाँ आस-पास में प्रसाद जी के नाम से उन्हें कोई जानता ही न था। वहाँ के आदमी पूछने लगे सुँघनी साहू के यहाँ जाना है? हम तो भाई न तो तम्बाकू खाते और न तम्बाकू खरीदना चाहते हैं। हमें तो 'प्रसाद' जी के यहाँ जाना है जो कवि हैं। 'हाँ, वे ही सुँघनी साहू जो कवित्त लिखते हैं। मैंने सोचा कौन जाने ये कवित्त लिखने वाले सुँघनी साहू ही 'प्रसाद' जी हों! चलो चलें। प्रसाद जी हुये तो ठीक है और कोई तम्बाकू का व्यापारी हुआ तो लौट आयेंगे········" वे यह कहानी सुना ही रही थीं कि इतने में अन्दर से उन्हें किसी ने बुलाया। और, "आई" कहकर वह बात बीच में छोड़ कर ही चली गईं। अन्दर उन्हें कुछ देर लग गई। इसी बीच एक महाशय ढीला पाजामा पहने अचकन डाटे हुये और हाथ में एक बंडल सा लिये हुये आये और एकदम अन्दर घुसे हुये चले गये।

इधर अन्दर से दो थालियों में खाना भी आ गया। इतने में वे महाशय भी अन्दर से आकर बैठ गये। उनका रंग गोरा था, शरीर से पतले-दुबले थे, उनके बाल ऊपर की ओर थोड़े-थोड़े घुँघराले थे, देखने में सुन्दर लगते थे पर अभी चेहरे पर बचपना-सा था। महादेवी जी भी आकर अपनी जगह बैठ गईं। उनकी ओर जरा पास में बढ़ीं और बड़े स्नेहमय ढंग से बोलीं, "चलो तुम आ तो जाते हो। तुम्हारे बड़े भाई तो इलाहाबाद आते हैं, पर यहाँ नहीं आते?"

"कागज़ लेना है उसी के लिये आया था।" इसी बीच महादेवी जी ने उनसे हम लोगों का परिचय कराया। वे महाशय प्रेमचन्द जी

के सुपुत्र अमृतराय थे। नाम से तो उन्हें हम पहले से ही जानते थे। आपने कहा, "बनारस में आप तो मेरे पास ही खड़े थे। कमलापति मिश्र ने बताया था, पर उस समय बातचीत नहीं हो सकी।" हम खाना खाने लगे। उधर महादेवी जी उनसे बात करने लगीं। "काग़ज़ कहीं अच्छा सा मिल जाये तो हमें भी खरीदना है। हम अपने पत्र का पहला अंक 'निराला अंक' निकालेंगे। उसमें निराला संबंधी लेख ही होंगे। इधर जो पुस्तकालय रखेंगे उसका नाम भी 'निराला अध्ययन मन्दिर' ही रखेंगे और सोचते हैं कि जो विद्यार्थी निराला या पंत पर कुछ काम करना चाहें उसे निराला छात्रवृत्ति या पन्त छात्रवृति के नाम से छात्रवृत्ति भी दें। कागज का परमिट तो हमें मिल ही जायेगा, नहीं तो तुमसे लेंगे भाई।" महादेवी जी ने हँसकर कहा। "हाँ, हाँ, जरूर।" अमृतराय जी बोले और फिर तुरन्त ही जैसे कोई अपनी भूल सुधार रहा हो, "पर सब नहीं, थोड़ा सा।"

"पहले तुम अपना तो काम करो, अभी तो तुम्हारा ही काम ठीक नहीं, फिर बचेगा तो देखा जायगा। बढ़िया वाला कागज तो तुम लगाते ही नहीं होगे। वह हमारे काम आ जायगा।"

"बाजार में पेपर आया तो है।"

"हमें भी पत्र के लिये पेपर चाहिये। पर गवर्नमेंट के सब काम ऐसे ही होते हैं। सम्पूर्णानन्द जी ने कुछ रुपया साहित्यिकों के लिये भी रखा है। उसमें से कुछ पुरस्कार भी दिये जायेंगे और जो सहायता के योग्य समझे जायेंगे उन्हें सहायता भी दी जायगी। अब पहले लेखक एक प्रार्थना-पत्र दें फिर बहुत दिनों बाद उस पर निर्णय दिया जायगा।

"बंगाल गवर्नमेन्ट ने तो नजरुल इस्लाम को २०० रु० या २५० रु० देना स्वीकार किया है।" अमृतराय जी ने कहा। "पता नहीं हमारी गवर्नमेन्ट कितना देगी पर सबसे बड़ी बात तो यह है कि लेखक प्रार्थना-पत्र इत्यादि सब कुछ कैसे देगा?" महादेवी जी बोलीं।

"यह तो गवर्नमेन्ट को स्वयं पता लगाना चाहिये कि कौन सहायता के योग्य है। लेखक प्रार्थना-पत्र दे इससे तो उसके आत्मसम्मान को बड़ी चोट पहुँचेगी। कोई भी लेखक कदाचित् ऐसा न करे।" मैंने कहा।

"यह तो है ही। पर सहायता पाने पर भी जहाँ अन्याय की बात होगी वहाँ लेखक विरोध करेगा ही। चाहे वह गवर्नमेन्ट अपनी हो या पराई! अन्याय नहीं देखा जाता।" उन्होंने कहा।

"एक लेखक को किसी भी स्थिति में किसी के आश्रित नहीं रहना चाहिये चाहे वह आश्रय गवर्नमेन्ट का हो या किसी और का। उसे कुछ काम करना चाहिये।" आपने कहा।

"साहित्यिक के जैसे संस्कार बन गये हैं उन्हीं के अनुकूल वह काम कर सकता है? निराला जी ही साहित्यिक के अलावा और क्या काम कर सकते थे?"

"कुछ भी करते, पर किसी की दया पर आश्रित रहना तो अच्छा नहीं।"

"अच्छा आप ही बताइये निराला जी क्या करते? कहीं थानेदार हो जाते या मुनीम होकर कलम घिसते?"

"कुछ भी करते। अगर मुझे घास भी बेचनी पड़े तो मैं उसे अपमान-जनक नहीं समझता। काम करने में ही गौरव है, हाथ फैलाने में नहीं।" आपने कहा

"निराला जी और कुछ नहीं कर सकते थे। ऐसे ही संस्कारों में वे रहे और इन्हीं में वे रह सकते हैं। एक बार भगवती प्रसाद बाजपेयी आये थे। वे कह रहे थे कि पैसे के लिये हमको जब लिखना होता है तो कुछ भी जल्दी-जल्दी लिख देते हैं और जब अपने लिए लिखते हैं तो निश्चिन्त होकर लिखते हैं पर जीवन में इस प्रकार के खाने नहीं बनाये जा सकते।"

"यह तो ठीक है, पर जो ऐसा कहते हैं वे पहले कुछ और हैं बाद में साहित्यिक।"

महादेवी जी ने अमृत राय जी से भी खाने का अनुरोध किया और उन्होंने भी खाना खाया। भक्तिन से बोलीं, "भक्तिन मोटे मोटे परावठे कर रही हो जरा पतले बनाओ। ये शहर के आदमी हैं।"

"लीला कर रहीं हैं। मुझे तो करने नहीं देतीं।" भक्तिन ने अपनी भाषा में कहा। इतने में लीला कुछ गरम-गरम परावठे ले आईं। पहले आप से लेने का अनुरोध किया आपने तो अपने दोनों हाथों से थाली को ढक कर अपने को बचा लिया, पर उनकी उस कृपा से मैं नहीं बच सका। एक परावठा वह डाल ही गईं। मैंने उसमें से थोड़ा-थोड़ा खाना आरम्भ किया। अब अमृतराय जी का नम्बर आया। उन्होंने बहुत अनुरोध करने पर भी कुछ न लिया तो मेरी ओर संकेत कर बोलीं "तुमसे तो शिवचन्द्र ही अच्छा।" मुझे इस बात पर हँसी आई कि अधिक खिलाने के लिये किस सुन्दर ढंग से प्रोत्साहन दे रही थीं। आप सच समझिये यदि कहीं खिलाने-पिलाने का काम महादेवी जी के हाथ में दे दिया जाये तो खाने वालों को तो कुछ शिकायत न रहेगी पर निस्संदेह एक सप्ताह का सामान पाँच ही दिन में समाप्त हो जाया करेगा।

अब नौ बज गये थे। अमृतराय जी ने घड़ी की ओर देखा और बोले, "अब चलूँ।" और उठने का उपक्रम करने लगे। महादेवी जी ने तुरन्त पूछा, "सुधा कैसी है?"

"ठीक है।"

"और लड़का?"

"वह भी ठीक है।" उन्होंने जरा मुस्करा कर लजाते हुये कहा। तुरन्त महादेवी जी पूछ बैठीं।

"लड़के का क्या नाम रक्खा है?"

"आलोक।"

"कोई कह रहा था 'बादल।' मैं सोच रही थी पहले पहल ही यह क्या नाम रक्खा। अब ठीक है। अमृत सुधा और आलोक। महादेवी जी यह कह ही रही थीं कि इतने में अमृतराय जी चलने के लिये उठ खड़े हुए। महादेवी जी ने अपनी बात को बढ़ाते हुए कहा, "हाँ, सुभद्रा जी से यह कहना कि वे बहुत दिनों से नहीं मिलीं। आती हैं तो चुप-चुप निकल जाती हैं। अब की बार ज़रूर मिल कर जायें। अब तो उनका धेवता भी हो गया है।" इस समय तक अमृतराय जी बाहर निकल गये थे। महादेवी जी ने आपकी ओर मुड़कर कहा, "इस घर से हमारा बहुत पुराना सम्बन्ध रहा है, प्रेमचन्द जी के आगे से ही। इनके घर के सभी प्राणी बहुत अच्छे हैं। प्रेमचन्द जी तो बहुत ही अच्छे थे।" इतना कह कर वे हँसने लगीं और फिर बोलीं, "एक बार प्रेमचन्द जी यहाँ मुझसे मिलने आये। पुराने ढङ्ग की घुटनों तक की धोती पहन रक्खी थी और एक अंगोछे में कुछ कपड़े लपेट रक्खे थे। नौकरों ने यह समझ कर कि कोई गाँव का आदमी है, उनसे कह दिया, "गुरु जी अभी नहीं मिलेंगी।" पता नहीं बेचारे कितनी देर इस नीम के नीचे बैठे रहे।"

"कौन से नीम के नीचे?" मैंने पूछा। "यही है न बाहर। फिर मैं आयी तो उन्हें देखा। तब से मैंने सब नौकरों से ये कह रक्खा है कि कोई भी आये मुझे फौरन सूचना मिलनी चाहिये। एक बार चाहे किसी कार वाले की सूचना देने में देरी हो जाये, पर किसी गाँव वाले या और किसी ऐसे आदमी की सूचना तुरन्त मिलनी चाहिये।"

इसके बाद क्षण भर रुकीं फिर बोलीं, "खैर इन दोनों घरों का सम्बन्ध तो अब हुआ है पर मेरा इन दोनों घरों से बहुत पुराना परिचय है, सुभद्रा जी से भी बहुत पुराना परिचय है।"

"जब हम यहाँ इलाहाबाद आये तो सुभद्रा जी का यहाँ एकछत्र राज्य था। उस समय कवि-सम्मेलन मुझे बहुत अच्छे लगते थे। पहले

से जाकर पास में बैठ जाती थी और यही सोचती रहती थी कि कब मेरा नाम पुकारा जाये। पंडित जी समस्याओं की एक लम्बी सूची दे जाते थे, और मैं उन सब की पूर्ति किया करती थी। शायद ही कोई समस्या बची हो। जैसे ही हमारा नाम पुकारा गया कि हम पहुँच गये सुनाने। कवि-सम्मेलनों में भाग लेना बहुत अच्छा लगता था। पता नहीं यह उसी की तो प्रतिक्रिया नहीं कि अब मैं कहीं आती-जाती नहीं। छटी क्लास से ही मैं कवित्त-सवैये लिखने लगी थी।"

मैंने बातचीत में ही काटकर बड़े आश्चर्य से कहा, "आप कवित्त सवैये लिखती थीं? ब्रजभाषा में?" "हाँ, हाँ, ब्रजभाषा के कवित्त सवैये।"

"अगर अभी बचे पड़े हों तो एक बार आप उन्हें दिखाइये," आपने कहा।

"हाँ, कहीं बंडल बँधा हुआ पड़ा होगा।' यह कह कर फिर उन्होंने अपनी पुरानी बात पर आते हुये कहा।

"कवि सम्मेलनों में हमें हमेशा फर्स्ट प्राइज मिला करता था। एक दिन किसी ने सुभद्रा जी से कह दिया कि एक लड़की आयी है, वह कविता लिखती है। सुभद्रा जी बोलीं, "कौन है जी वह लड़की। हमसे मिलाना उसे।" खैर एक दिन हम सुभद्रा जी के पास गये। सुभद्रा, जी बोलीं, "हमने सुना है जी तुम कविता लिखती हो। सुनाओ तो कैसी कविता लिखती हो। हमने कई कवितायें सुनाईं। सुन कर बोलीं, "हाँ, अच्छी लिखती हो। तुम अपनी कविता लिखकर हमारे पास भेज दिया करो। मैं ठीक कर दिया करूँगी!"

"कहाँ भेज दिया करूँ" मैंने पूछा।

"जबलपुर"

"फिर आपने भेजीं?"

"मैंने सोचा क्या भेजूँगी। नहीं भेजी।" महादेवी जी ने कहा।

"पंत जी भी यहाँ म्योर सेन्ट्रल कालिज में पढ़ा करते थे। एक

बार यहाँ हिन्दू हॉस्टेल में कवि-सम्मेलन हुआ। वहाँ हम भी गये। पंत जी भी लड़कों में बैठे थे। इन्होंने बाल तो अपने बढ़ा ही रक्खे थे। तब हम नहीं जानते थे कि ये पंत जी हैं। खैर, उस कवि-सम्मेलन में फर्स्ट प्राइज तो मिल गया, पर बाद में मैं अपनी सहेलियों से यही पूछती रही थी कि वह लड़की लड़कों में क्यों बैठी थी?" इस पर बड़ी हँसी आई। फिर बोलीं, "उन दिनों पंत जी के भाई देवीदत्त जी भी उनके साथ ही पढ़ते थे। जब असहयोग आन्दोलन चला तो एक मीटिंग हुई। जब उसमें हाथ उठवाये गये कि कौन-कौन कालिज छोड़ेगा तो उनके बड़े भाई देवीदत्त जी ने अपने हाथ से पकड़ कर पंत जी का हाथ ऊपर उठा दिया। उसी सिलसिले में पंत जी की पढ़ाई छूट गई थी और देवीदत्त जी ने यहीं से बी० ए० एल एल० बी० किया।"

"पंत जी बड़े ही सौंदर्य प्रिय हैं। वे अपने चारों ओर की वस्तुयें सुन्दर ही चाहते हैं। कमरे में चीजें जिस प्रकार रक्खी हुई हैं उनमें से अगर एक भी इधर से उधर हो गई तो बस उन्हें अच्छा नहीं लगता। उनके चारों ओर उनके मन से सामंजस्य रखने वाला वातावरण होना चाहिये। विषमता न हो।"

"तब पंत जी अब किस प्रकार रह रहे हैं, क्योंकि यहाँ तो जीवन चारों ओर विषमताओं से ही भरा रहता है।"

"कदाचित पंत जी को अब विषमताओं में रहने की आदत भी हो गई हो। निराला जी को तो पहले से थी ही। उनका तो पूरा जीवन ही विषमताओं में बीता है। पर पंत जी एक काफी बड़े घराने में पैदा हुये थे। अल्मोड़े का एक बड़ा भाग इन्हीं का था। इनकी माता जी का तो देहान्त इनके जन्म के साथ ही हो गया था। इनके लिये इङ्गलिश नर्स रखी गई थी। प्रारम्भ से ही ये सुन्दर और कोमल वातावरण में पले और रहे।"

"निराला जी के लिये यह बहुत बड़ी बात है कि पूरा जीवन इतनी विषमताओं से भरा होने पर भी उन्होंने साहित्य को इतना दिया। कोई और होता तो ऐसी विषमताओं में उसकी साहित्यिकता समाप्त हो गई होती। ये तो निराला जी ही थे जो विषमताओं में भी बढ़ते ही रहे।" मैंने उदास होकर कहा।

"हाँ भाई, निराला जी ने बहुत किया।" महादेवी जी बात का समर्थन करती हुई बोलीं।

"अब तो साहित्य में कोई ऐसा आदमी दिखाई नहीं देता कि इस प्रकार उठे। उधर भी जो कुछ कर रहे हैं, पुराने लोग ही कर रहे हैं।" आपने कहा।

"राजनीति में, साहित्य में और सभी क्षेत्रों में एक ऐसा समय आता है। इधर तो अभी पंत और निराला जी के हाथ में ही पतवार है और प्रगतिवादियों में अभी कोई उठ नहीं सकता, क्योंकि जिनके विषय में वे लिखते हैं उनमें से आये तो वे हैं नहीं। वे भी हममें से ही हैं। गरीब मजदूरों में से किसी ऐसे आदमी का निकलना मुश्किल है, क्योंकि उनकी शिक्षा ही नहीं हो पाती। ऐसी स्थिति में यदि हम में से निराला या पंत इस ओर मुड़ जायें तो अच्छी चीज़ दे सकते हैं; पर हमने जो संस्कृति बना ली है उससे भी बड़ा भारी मोह है। उस पुरानी संस्कृति को कैसे छोड़ सकते हैं?" इस प्रकार इस विषय पर थोड़ी देर तक महादेवी जी धारा-प्रवाह बोलती रहीं। इसी बीच मुझे याद आया कि प्रसाद जी से मिलने को बात सुनाती-सुनाती वे उठ कर चली गई थीं और वह बात वहीं रह गई थो और दूसरो बातों में उसका बिल्कुल भी ध्यान छूट गया था। अपनी बात समाप्त कर जैसे ही महादेवी जी क्षण भर को रुकीं कि मैं बोल उठा, "हाँ, जब आप प्रसाद जी से मिलने गई थीं वह बात तो वहीं रह गई।"

इस पर वे हँस पड़ीं। हँस कर बोलीं, "लो! मैं तो भूल ही गई थी और फिर आपकी ओर मुड़ कर तथा मेरी ओर संकेत कर कहने लगीं,

"यह लड़का बड़ा ही दुष्ट है। पता नहीं चुप-चुप क्या करता रहता है?" यह बात उन्होंने बड़े ही स्नेहमय ढंग से कही थी। उनके दुष्ट शब्द में कितना स्नेह भरा था, मापा नहीं जा सकता। मैं हँस पड़ा मन ही मन। मुझे एक प्रकार की अपूर्व प्रसन्नता हुई। चाहता हूँ कि अब जब मैं उनसे मिलने जाया करूँ तो वे मुझे इसी प्रकार कभी-कभी दुष्ट कह दिया करें। वैसे ही हँसते हुए मैंने पूछा, "फिर क्या हुआ?"

"हम घर पर पहुँच गये। हमने प्रसाद जी का फोटो तो देखा ही था। प्रसाद जी बाहर आये हमने उन्हें पहचान लिया। परिचय पा जाने पर प्रसादजी बोले "अरे तुम ही हो महादेवी। तुम तो बिल्कुल भी नहीं जँचती।" "तुम्हीं कौन से जँचते हो!" मैंने कहा। इस पर बहुत ही हँसी आई। महादेवी जी भी खूब हँसी। फिर बात को समाप्त करती हुई बोलीं, "उन दिनों प्रसाद जी कामायनी लिख रहे थे। प्रसाद जी भी बहुत ही अच्छे थे।"

इतने में सुनयना चुपचाप अपने छोटे-छोटे पैर रखती हुई आई और आपने जो ओवरकोट पैरों पर डाल रक्खा था उस पर बैठ गई। महादेवी जी ने उसकी ओर देखा और बोलीं, "यह जान लेती है कि यहाँ इसे कोई भय नहीं है।" और जब वह निद्रा की मुद्रा में अवस्थित हो गई तो फिर बोलीं, "जब मैं काम करती-करती तख्त पर सो जाती हूँ तो यह भी वहीं सो जाती है। महादेवी जी तख्त पर सोती हैं यह जान कर पता नहीं क्यों अन्तर में एक पीड़ा सी हुई। उसके पहले दिन की सब बातें याद आने लगीं। उन्होंने बताया था न कि वे दिन में एक समय भोजन करतीं हैं, रात्रि में दो घंटे से अधिक सोती नहीं। आज यह पता लगा कि तख्त पर सोती हैं। ये हैं महादेवी जी। उस दिन आपने ठीक ही कहा था, "ऐसी आत्मा शताब्दियों में कहीं एक अवतरित होती है।"

अब रात्रि के साढ़े नौ का समय हो गया था। मेरे मन में घर

चलने को बात आई। मैंने महादेवी जी से पूछा, "साहित्य संसद का स्थान ठीक-ठीक किधर है? कल मैं इन्हें दिखा लाऊँगा। कल कदाचित् हम उधर नहाने के लिये जाँय।"

"उधर नहाना क्या रहेगा, इनको त्रिवेणी ले जाओ।"

"भीड़ इन्हें बिलकुल अच्छी नहीं लगती" मैंने कहा।

"अकेले रहना ही ठीक है। इधर-उधर घूमने से शक्ति का क्षय होता है" आपने कहा।

"जनता में तो घूमना ही चाहिये। जनता में बिना घूमे किसी भी क्षेत्र में कोई बड़ा काम नहीं हो सकता" महादेवी जी ने कहा।

"यह कोई आवश्यक नहीं है" आपने कहा।

"नहीं भाई, जनता का ज्ञान तो जनता में घूमने से ही होगा।"

"सड़क पर जाते हुये हम एक भिखारी को देखकर भी उससे प्रेरणा ले सकते हैं। इसकी क्या आवश्यकता है कि हम भिखारियों में घूमते ही फिरें?"

"बहुत सी बातें घर पर नहीं जानी जा सकतीं। महात्मा बुद्ध को भी जनता में घूमना पड़ा था।"

"महात्मा बुद्ध ने धर्म का प्रचार करने के लिये राज्य शक्ति का आश्रय लिया। जनता में भी घूमे। पर यदि वे चाहते तो एक जगह बैठे बैठे भी जनता को अपने पास खींच सकते थे।"

"मुझको तो गाँवों में घूमने में, गाँव वालों से मिलने-जुलने में बहुत अच्छा लगता है। जब हम पढ़ते थे तभी से बहुत अच्छा लगता था। जब मैं एम० ए० में थी तभी यहाँ आस-पास के गाँवों में पचासों पाठशालायें खोली थीं। उनमें से कुछ तो अब भी हैं।"

"एम० ए० में आपने पाली-प्राकृति ग्रूप लिया था न?" अब मैंने पूछा।

"हाँ, पाली में रिसर्च करने के लिये बाहर भी जाना चाहती थी, पर फिर इरादा छोड़ दिया। अब तो प्रयाग छूटता नहीं दीखता।"

फिर आपकी ओर संकेत करके बोलीं, "तो कल इनको त्रिवेणी स्नान कराओ। वहाँ से नाव पर झूँसी चले जाना। वहाँ हमारा भी बनाया हुआ घर है। मेरी तो कल छुट्टी नहीं है, नहीं तो मैं चलती, सब दिखाती। पहले तो मैं माघ के महीने में वहाँ जाकर रहती थी। गाँव वाले आकर-रात को दो-दो बजे तक अपने गीत सुनाते रहते थे। कितने अच्छे भाव होते हैं ग्राम गीतों में, कितना साहित्य भरा पड़ा है उनमें, ये उन लोगों के गीतों को सुनने से पता लगता है। हमारे बदलू कुम्हार का घर भी वहीं है। यह बदलू बिलकुल खराब घड़े बनाया करता था। मैं कभी-कभी इसे कह दिया करती थी, यह क्या बनाते हो, बदलू, अच्छे झझ्झर बनाया करो। फिर पता नहीं वह क्या करता रहा। छुट्टी के दिन वहाँ के बच्चों को पढ़ाने जाया करती थी, तो कभी-कभी उनको तस्वीर खिलौने भी ले जाती थी। एक दिन बदलू आया और बोला, 'गुरु जी एक तस्वीर मुझे भी दे दो।' मैंने एक सरस्वती की तस्वीर उसे दी। उसने उसे अपने टूटे-फूटे बाँस के किवाड़ों पर चिपका दिया। दिवाली के दिन उसने मुझे यह सरस्वती की मूर्ति बना कर दी"। एक ओर रक्खी हुई सरस्वती की श्वेत मूर्ति की ओर संकेत कर बोलीं और फिर कहा, "आपको आश्चर्य होगा यह गाँधी जी की मूर्ति भी उसी के हाथ की है" ऊपर रखी हुई गांधी जी की मूर्ति की ओर संकेत कर उन्होंने कहा। मैंने गांधी जी की मूर्ति को देखा। वह मूर्ति कितनी सुन्दर थी। पीला गेरुआ रंग था उसका। महात्मा जी ठोड़ी पर हाथ रखे गम्भीर विचार-मुद्रा में बैठे हैं।

"ऐसे ही मैं बहुत से खिलौने इकट्ठे करती रहती हूँ। पर जब कहीं जाना होता है तो सभी चीजें छोड़कर चली जाती हूँ" महादेवी जी ने कहा।

उनकी इस बात से यह बात बिल्कुल स्पष्ट थी कि वे इधर-उधर की वस्तुओं का संग्रह तो करती हैं, पर उस संग्रह से उन्हें मोह बिल्कुल नहीं।

"यहाँ कोई अड़ैल जगह है ? मेरी मामी कह रही थीं कि वहाँ एक मंदिर है।" मैंने पूछा।

"हाँ यहाँ से दो ढाई मील है। वहाँ भी हो आना। वहाँ भी हमारे हाथ का बनाया हुआ घर है। पता नहीं अब तो टूट-फूट गया होगा" उन्होंने कहा। फिर आपकी ओर मुड़ कर बोलीं "झूँसी जरूर हो आना, बहुत से साधु सन्यासी आये हुये होंगे।"

"त्रिवेणी नहाने में मुझे विशेष आनन्द आयेगा नहीं। मैं इन बातों में अब विश्वास नहीं करता। साधु संतों में भी अब कोई आकर्षण मेरे लिए नहीं रहा। मेरा तो लालन-पालन ही ऐसी जगह हुआ था, जहाँ सैकड़ों साधु संत अब भी रात-दिन रहते हैं।"

"तो फिर आप नास्तिक भी हैं" महादेवी जी ने हँस कर कहा। मुझे भी हँसी आ गई। मैं सोचता हूँ जैसे पहले महादेवी जी कवि सम्मेलन में बहुत जाती थीं और उसकी प्रतिक्रिया यह हुई कि वे अब बिल्कुल कहीं नहीं जातीं, ऐसे ही आपका लालन-पालन एक धर्म के केन्द्र में हुआ और कदाचित् यह उसी की प्रतिक्रिया है कि अब आप धर्म की इन बातों में विश्वास नहीं करते।

मैं उठ कर कमरे में एक ओर रक्खी हुई मूर्तियाँ देखने लगा। मुझे उधर जाता हुआ देखकर बोलीं, "क्यों शिवचन्द्र क्या है ?"

"कुछ नहीं, बदलू कुम्हार की मूर्तियाँ देख रहा था।"

मैं मूर्तियाँ देखने लगा। एक ओर बुद्ध की मूर्ति थी। पास ही सरस्वती की मूर्ति भी थी। दोनों मूर्तियों का चेहरा एक-सा था। शायद बदलू ने सरस्वती की मूर्ति के साथ ही वह मूर्ति भी बनाई होगी। दोनों के चेहरे एक-से बना दिये। बेचारा बदलू रेखाओं और रंगों की इन सूक्ष्म बातों को नहीं जानता।

उस समय वे कुछ बातें करती रहीं। इधर मैं चित्र देखता रहा। आज महादेवी जी ने दो बार मेरा नाम 'शिवचन्द्र' लिया था। उनके इस प्रकार पुकारने से एक अपूर्व आनन्द से मेरा मन सिहर उठा था।

इन कानों ने कई वर्षों से ऐसी पुकार नहीं सुनी थी। दो-तीन साल से, मुझे घर पर भी माँ, भाई आदि सब 'नागर' 'नागर' कहने लगे हैं। उनके इस प्रकार पुकारने से ऐसा लग रहा था जैसे अन्तर के किसी अभाव की पूर्ति हुई हो या प्राणों को एक ऐसी वस्तु मिल गई हो जिसके लिए वे मौन ही छटपटा रहे थे और मैं उससे बिल्कुल अनभिज्ञ था।

चित्र देख कर मैं आपके पास आया। साढ़े दस का समय हो गया था। मैंने आप से चलने को कहा। आप उठकर चले। कमरे के द्वार पर आकर महादेवी जी ने कहा, "संसद् की बिल्डिंग का १७५ नम्बर है—रसूलाबाद। मेरी तो छुट्टी नहीं, नहीं तो मैं चलती। अभी तो आप हैं ही।"

"कल जाने को कह रहे हैं।" मैंने कहा।

"कौन सी ट्रेन से?" उन्होंने प्रश्न किया।

"मैं तो ट्रेनों का समय जानता नहीं। 'नागर' जी को ही पता है, यहाँ से कौन ट्रेन कब जाती है। टाइम टेबिल भी मुझे ठीक से देखना नहीं आता।" इस पर बड़ी हसी रही। हँसते हुए ही मैंने कहा, "कल चार बजे की ट्रेन से जाने को कह रहे हैं।"

"एक ट्रेन रात को भी तो जाती है।"

"हाँ, जाती तो है।"

"तो फिर उससे चले जायेंगे। चार बजे मैं पढ़ाकर आ जाऊँगी। आप अपना सामान लेकर यहीं आ जाइयेगा। यहीं से फिर स्टेशन चले जाइयेगा।" आपने उनकी इस बात का पता नहीं क्यों कुछ उत्तर नहीं दिया था और मैंने भी कुछ नहीं कहा। हम चुपचाप बरामदे से उतर कुन्जों के बीच से बँगले के द्वार तक आ गये। महादेवी जी भी साथ-साथ आ रही थीं। द्वार बन्द थे। आपने उन्हें खोला। बाहर निकले। महादेवी जी भी बाहर तक आ गईं। हमने हाथ जोड़ कर प्रणाम किया, उन्होंने भी। बाहर बिल्कुल नीरवता थी। सड़क पर किसी भी आने-जाने वाले की पदचाप नहीं सुनाई देती थी। उस समय

उन्होंने कहा, "कोई भी आने-जाने वाला दिखाई नहीं देता। सवारी मँगाऊँ।"

"नहीं, नहीं, हम चले जायेंगे।" मैंने कहा।

"अच्छा देखती हूँ, तुम्हारे पैर कितने जल्दी-जल्दी पड़ते हैं?" उस समय पता नहीं क्यों एक उदासी सी छा गई थी। महादेवी जी बाहर शीत में द्वार पर ही खड़ी थीं और वे तब तक खड़ी ही रहीं जब तक हम उनकी आँखों से ओझल नहीं हो गये।

महादेवी जी से यह भेंट जीवन में कभी भी भुलाई न जा सकेगी। मार्ग में हम कुछ भी बात नहीं कर सके थे। उस समय आप क्या सोच रहे थे, मेरे लिये जानना कठिन था। पर मेरे मन में तो बैठा-बैठा कोई यही दुहरा रहा था, "अच्छा देखती हूँ, तुम्हारे पैर कितने जल्दी जल्दी पड़ते हैं।"

इस समय रात्रि का एक बजने वाला है। अच्छा, विदा!

सश्रद्धा
शिवचन्द्र नागर

१४

३० ए, बेली रोड, प्रयाग
७।२।४७.

आदरणीय श्री 'मानव' जी,

अभी अभी आपका पत्र मिला है। संध्या काल है। पता नहीं क्यों संध्या के साथ एक विषाद की रेखा सी मन में खिंच जाती है।

सम्बोधन की बात मैं लिख ही गया। मैंने एक बार पहले भी आपको पत्र में लिखा था कि उमड़ते हुये अन्तर पर मुझसे बाँध नहीं बाँधा जाता, पर कहीं-कहीं बाँधना ही पड़ता है। आज मैं यह सोच रहा हूँ कि अनुभूतियों का मूल्य तभी तक है जब तक ये अन्तर में छिपी रहें। पर मैं नहीं छिपा पाता। यह मेरी कमजोरी ही है। पर इतना

विश्वास है कि जहाँ बहुत सी बातें मैंने आप से सीखी हैं, वहाँ यह भी आप ही आप आ जायेगी।

उस दिन रेस्ट्राँ चला ही गया। रेस्ट्राँ इसीलिये गया था कदाचित् मन की हलचल शांत हो जाये, पर पता नहीं क्यों उसके बाद भी मैं कुछ नहीं कर सका। केवल कमरे में आकर पड़ गया था।

मैं अभी तक महादेवी जी के यहाँ नहीं जा पाया। रविवार को जाऊँगा।

इलाहाबाद आप रहने के लिये क्यों नहीं आ सकेंगे। मैंने तो कमरे वाले से भी कह दिया है और ठीक-ठाक भी कर लिया है। आप यह न समझियेगा कि आपकी उपस्थिति से मेरे अध्ययन-कार्य में विघ्न पड़ेगा। मैं तो समझता हूँ आप मुझे और अधिक प्रेरणा दे सकेंगे। आप ऐसी बात न लिखा कीजिए।

कल शिवरानी जी (श्रीमती प्रेमचन्द्र) अपने भाई के यहाँ यानी वकील साहब के यहाँ आई थीं। इसी मकान में तो मैं रहता हूँ।

सश्रद्धा
शिवचन्द्र नागर

१५

३०ए, बेली रोड,
प्रयाग
१३।२।४७.

आदरणीय 'मानव' जी,

आपका ८।२ का लिफाफा मिला।

'महादेवी जी प्रत्येक व्यक्ति को अपने व्यक्तित्व की छाया में खड़ा करके क्यों देखना चाहती हैं?' इसका मैं क्या उत्तर दूँ! हाँ, मुझे ऐसा लगा है कि यह उन्हें कुछ अच्छा लगता है कि मिलने वाले उनके सामने बालक की तरह बातें करें। पता नहीं यह वृद्धत्व की भावना

उनमें कहाँ से आ गई है ? कभी-कभी मुझे हँसी आती है कि अभी तो उन्होंने चालीस की रजत-रेखा भी पार नहीं की।

'मैं तो महादेवी को व्यक्ति न मानकर एक भावना का प्रतीक मात्र मानता हूँ' अपने इस कथन पर कुछ प्रकाश डालियेगा। मैं तो इसका आशय कुछ भी न समझ सका।

कवि सम्मेलनों में आपकी तरह कविता सुनाने का उत्साह अब मुझमें भी नहीं रहा। प्रयाग में रहते मुझे दो साल हो जायेंगे, पर यहाँ मैंने आज तक भी किसी सम्मेलन में भाग नहीं लिया। अब मेरे स्वर में भी मधुरता नहीं रही, स्वर में ही क्या जीवन में ही मधुरता नहीं रही। कभी कभी ऐसा लगता है जैसे यह जीवन अतीत का कंकाल मात्र हो। भविष्य में क्या होगा, पता नहीं।

'बच्चन' जी ने अपने पत्र में यदि 'अवसाद' के विषय में कुछ लिखा हो तो उससे मुझे अवगत कर दीजियेगा। अवसाद की सम्मतियों की फाइल देखने की इच्छा है। यदि आप ठीक समझें तो कभी दिखा दीजियेगा। जिनको यह पुस्तक समर्पित की गई है, क्या उस फाइल में इस पुस्तक पर उनकी भी कोई सम्मति है ? यदि आपने उसे फाइल में नहीं रखा तो भी मैं जानना चाहता हूँ, इस गीति ग्रन्थ के सम्बन्ध में उनकी क्या धारणा है ? जानता हूँ यह मेरा अनधिकार है, पर मन नहीं मानता। 'देशदूत' के लिये जिस समय मैं 'अवसाद' की आलोचना लिख रहा था, तब गीतों में चित्रित की हुई मूर्ति ने मस्तिष्क को ढक लिया था, इसलिये सब कुछ बात कवि की प्रेरणा के विषय में ही कह गया, कवि के विषय में कुछ भी नहीं कह पाया।

यदि कोई भी व्यक्ति निश्चय पूर्वक किसी के जीवन को अपनी रुचि के अनुसार मोड़ना चाहे तो कदाचित् ही मोड़ सके, क्योंकि जीवन के प्रवाह पर बाँध नहीं बाँधा जा सकता। किन्तु हम जिन व्यक्तियों के सम्पर्क में आते हैं उनका हमारे जीवन के दिशा निर्धारण में अवश्य कुछ न कुछ योग रहता है। जीवन में बहुत से व्यक्ति मिलते हैं, बहुत से

छूट जाते हैं, पर उन सब व्यक्तियों में से कुछ के चरण-चिन्ह हमारे जीवन-पुलिनों पर रह ही जाते हैं और जब जीवन की पूरी इमारत का निर्माण हो जाता है तो कभी-कभी देखा गया है कि उसकी नींव उन्हीं चिन्हों पर रखी गई थी। यदि वास्तव में देखा जाये तो उस समय न तो आदर्श व्यक्ति ने ही यह सोचा होगा कि अमुक व्यक्ति मेरे चरण चिन्हों पर चले और न चलने वाले व्यक्ति ने यह सोचा होगा कि मैं उस व्यक्ति के चरण चिन्हों पर चलूँ। यह सब कुछ अपने आप ही हो जाता है और जब हम पीछे की ओर मुड़कर देखते हैं तो पता चलता है हम इस व्यक्ति के साथ कहाँ से कहाँ आ गये।

'लेकिन जो देख लिया, वैसा देखने को अब न मिलेगा।' आपकी यह बात भी है तो कठोर सत्य, पर इसे पढ़ कर मन को बड़ी ही पीड़ा होती है। मन करता है जीवन के कुछ बीते हुए पल, परिस्थितियों ने जिन पर अमरता की छाप लगा दी है, फिर वापस आ जायें; पर आयेंगे नहीं, यही कठोर सत्य है और यही जीवन है। वास्तविक जीवन में भावना को, कल्पना को, स्वप्नों को और आशा को कोई स्थान नहीं।

व्यक्तित्व एक बहुत बड़ी चीज है। बच्चों के घरौंदे की तरह पल-पल में बनाया बिगाड़ा नहीं जाता। व्यक्ति के जीवन के सम्पूर्ण संघर्षों का सार उसका व्यक्तित्व है। व्यक्तित्व की महानता किसी विशेष वर्ग में ही होगी, यह भी बात नहीं। महान् व्यक्तित्व एक दीन हीन अकिंचन का भी हो सकता है। आप ठीक कहते हैं कि 'यदि किसी ने अपने व्यक्तित्व को किसी के भी सामने खो दिया तो वह मर गया।' सचमुच वह मर गया क्योंकि उसने तो अपनी सारी जीवन संचित पूँजी ही गँवा दी। अपने व्यक्तित्व का निर्माण करना जितना कठिन है, उससे अधिक कठिन है उसकी रक्षा करना। पर संसार में ऐसे व्यक्ति बहुत कम हैं जो रक्षा कर पाते हैं। जो रक्षा कर पाते हैं वे महान् हैं और विश्व ने यदि उनका आदर सम्मान आज नहीं किया तो कल वह

अवश्य करेगा। जिस व्यक्ति का कोई व्यक्तित्व नहीं उसका कोई अस्तित्व नहीं, मेरी तो ऐसी धारणा है।

लो, मैं लिखता-लिखता कहाँ आ गया!

सश्रद्धा
शिवचन्द्र नागर

१६

३० ए, बेली रोड
प्रयाग
१६।२।४७

आदरणीय 'मानव' जी,

१६।२ का पत्र कल सुबह मिल गया था।

मैं ८ फरवरी की संध्या को महादेवी जी से मिलने गया था। नौकर स्लिप ले गया। आकर कहा 'वे बीमार हैं, पर आपकी कुशल-क्षेम पूछी है।" मैंने कहा, "क्या बहुत अधिक बीमार हैं?" बोला हाँ आठ दिन से बुखार है। विद्यापीठ भी नहीं जातीं।" मैं चला आया भारी मन लिये।

१६ की संध्या को भी मैं गया। उस दिन नौकर ने कहा "अभी ठीक नहीं हुईं। किसी दिन सुबह को आइयेगा।"

मुझे जब उनके यहाँ से निराश लौटना पड़ता है तो मुझे दुःख नहीं होता, क्योंकि जब मैं उनके यहाँ जाता हूँ तो यह आशा लेकर नहीं जाता कि वे मिलेंगी ही। अब मैं होली के दिन संध्या को ही जाऊँगा। उस दिन उनका जन्म-दिवस है। कदाचित् उनके दर्शन हो सकें।

अप्रैल, मई, जून, ढाई महीने आप इलाहाबाद रहें। जून के अंतिम सप्ताह में बम्बई की बात सोची जा सकती है। उस समय कदाचित् मैं भी आपके साथ चल सकूँ। मन यही सोच कर उदास हो जाता है कि प्रयाग में वैसे सब ठीक है, पर पैसे का उद्गम दिखाई

नहीं देता। बम्बई के लिये आप ने तीन कहानियाँ तो लिख ली थीं। इस बीच में आप एक कहानी और लिख लीजियेगा। बम्बई से जहाँ आप का कुछ हिसाब रह गया था, वहाँ का कोई उत्तर भी आया है या नहीं ?

दुःख होता है कि साधन उन व्यक्तियों के पास हैं जो उनका उपयोग नहीं कर सकते; किन्तु जो उपयोग कर सकते हैं, उनके पास साधन नहीं।

सश्रद्धा
शिवचन्द्र नागर

१७

३० ए, बेली रोड,
प्रयाग
२२। २। ४७

आदरणीय 'मानव' जी,

सूर्य की किरणें अभी डूबी नहीं थीं कि आप का पत्र मिला। मैं महादेवी जी के यहाँ जाने ही वाला था। आपके पत्र को दो बार पढ़ा। पता नहीं क्यों इस पत्र ने मन को एक अज्ञात आह्लाद से भर दिया।

महादेवी जी के यहाँ जाने पर आज परिचारक ने बताया, "गुरु जी की तबियत अब दो-तीन दिन से ठीक है।" यह दूसरी प्रसन्नता की बात थी। पर जब चिट के उत्तर में परिचारक ने आकर महादेवी जी के आने की सूचना दी, तब तो आह्लाद की सीमा न रही और वहाँ एकाकीपन में ही अन्तर का आह्लाद मुसकान की रेखाओं में अधरों पर अंकित हो गया।

कुछ ही क्षणों बाद महादेवी जी आईं। अपने आसन पर बैठ गईं। स्वच्छ और मन्द हँसी हँस कर कहने लगीं, "उस दिन तो तुम लोग नहीं आये। भक्तिन ने बहुत चीजें बनाई थीं। बेचारी नौ बजे तक बैठी रही। जब नौ बज गये तो मैंने कहा, अब वे नहीं आयेंगे।"

"मानव जी उस दिन चार बजे ही चले गये, पर यह कह रहे थे कि हमने दो दिन बराबर कितना कष्ट दिया" मैंने कहा।

"फिर कुछ पता भी तो नहीं लगा" वे बोलीं?

"हाँ, इसके लिये तो मैं दोषी हूँ। मैंने आपको सूचना नहीं दी। उन्होंने तो पत्र में लिखा भी था, "उस साम्प्रदायिक तनातनी में भी मुझे कोई जान से मारता नहीं, क्योंकि मुझे प्राण प्यारे नहीं, पर फिर भी महादेवी जी चिंतित अवश्य रही होंगी।"

"कुछ पता ही नहीं लगा। अखबार में तो दिखवा लिया था कि कोई घटना तो नहीं हो गई।"

"नहीं, यहाँ से थोड़ी दूर चलने पर ही एक ताँगा मिल गया था।"

"बाद में मिल गया होगा, पर जब तक मैं देखती रही थी, तब तक तो कोई आने-जाने वाला भी दिखाई नहीं दे रहा था।"

"क्या बतलाऊँ उस दिन वे चार बजे चले ही गये, मैंने तो रुकने को बहुत कहा।"

"वे आठ बजे की ट्रेन से यहीं से जाने को कह तो गये थे। मैं तो जैसे मेरे प्रोग्राम इधर से उधर नहीं हो पाते, ऐसे ही दूसरों के भी समझती हूँ। उस दिन तो उन्हें अच्छा खाना भी नहीं मिल सका था।"

"हम तो सकुशल पहुँच गये, पर उसके एक-दो दिन बाद से ही आप की तबियत बहुत खराब हो गई। अब स्वास्थ्य कैसा है?" मैंने पूछा।

"ऐसे ही चलता रहता है। पहले डाक्टर की दवा बदली, दूसरे ने सेवेजोल खिलाना शुरू कर दिया। दस दिन में ही ४० टेबलेट खिला दी। उससे मेरा शरीर बिल्कुल गिर गया। तीन दिन तक मैं बिल्कुल उठ भी नहीं सकी। फिर मैंने वह दवा बन्द कर दी। एक व्यक्ति का नाम लेकर कहने लगीं डाक्टर ने उसे सैवेजोल की १२०

टेबलेट खिला दी थी। उसका इतना प्रभाव हुआ कि बेचारा एक दिन संतरा छीलता हुआ ही रह गया। हार्ट फेल हो गया।"

"अच्छा किया आपने खानी बन्द कर दीं।"

"अब तीसरे डाक्टर को दिखाया है। उसने आँखों की परीक्षा की है और बताया है कि सैवेजोल के खाने से आपकी आँखों के ऊपर पलकों के नीचे छोटे-छोटे दाने हो गये हैं जिनसे आँखें तो आपकी पहले से भी कमजोर हो गई हैं और यह भी हो सकता है इन दानों से आपकी पुतली छिल जाये।"

वे यह बात कह रही थीं और मैं अन्दर ही अन्दर एक पीड़ा का अनुभव कर रहा था। मेरा अन्तर उन्हीं के वाक्यों को दोहरा रहा था जो उन्होंने कभी किसी को पत्र में लिखे थे, "ईश्वर ने मुझे सूर की सी प्रतिभा तो नहीं दी पर वह आँखों से मुझे ऐसा ही करना चाहता है।" इस समय मैं उनकी आँखों की ओर देख रहा था। मैं यही सोच रहा हूँ कि क्या उन्होंने अपनी आँखों की ज्योति इस विश्व को दे डाली है और क्या वे रही सही भी दे डालेंगी?

उन्होंने अपनी बात को आगे बढ़ाते हुये कहा, "कहीं मेरा भी हार्ट फेल हो जाये, यह सोचकर मैंने तो वह जहर खाना बन्द ही कर दिया।"

"नहीं ऐसा कभी नहीं हो सकता।" मेरे मन का विश्वास बोल उठा।

"मैं हार्ट फेल से नहीं मरना चाहती" हँस कर बोलीं।

"हार्ट फेल की मृत्यु और मृत्युओं से तो बहुत अच्छी होती होगी?" मैंने बच्चे की तरह यह बात उनसे पूछी। सचमुच उस समय मैं ऐसा हो गया था जैसे शिशु अपनी जीजी से पूछ रहा हो, एक कौतूहल और उत्सुकता से और साथ-साथ उसे यह विश्वास भी हो कि जीजी मृत्यु की सब प्रकार की अनुभूतियों से परिचित हैं, जीजी मृत्यु का रहस्य जानती हैं। कहने लगीं:

"हार्टफेल की मृत्यु तो बहुत अच्छी है, पर मैं अभी इससे नहीं मरना चाहती। मेरे बहुत से अधूरे काम हैं। मैं जानती हूँ वे पूरे नहीं होंगे, यों ही अस्त-व्यस्त रह जायेंगे।"

उनकी बात सुनकर मैं यही सोच रहा था कि महादेवी जी के इतने भक्त हैं और उनमें से कुछ में यह क्षमता भी हो सकती है कि वे महादेवी जी के बाद उनके अधूरे काम को पूरा कर सकें, पर यह बहुत बड़ी बात है। महादेवी जी किसी से इस बात की आशा नहीं रखतीं। वे अपना अधूरा काम किसी के कन्धों पर छोड़ना नहीं चाहतीं। वे नहीं चाहतीं उनके बनाये हुये अधूरे चित्र में कोई बाद में अपनी तूलिका के स्ट्रोक्स लगा कर उसे पूरा करे। उनकी यह बात ठीक ही है। क्या पता महादेवी जी अपने चित्र में जिस बात को लेकर चली हैं, दूसरे की तूलिका से अनजाने में उसकी हत्या हो जाये। वे अपना चित्र पूरा करना चाहती हैं और इसलिये जीना चाहती हैं। आज मुझे आपकी वह बात याद आ रही है। "आज मेरा मन ऐसा हो गया है कि अधिक से अधिक समय अपने लिये बचाना चाहता हूँ जिसमें अपने अपूर्ण काम को मैं इस संसार को छोड़ने से पहले पूर्ण कर सकूँ।" आपकी इस बात ने मुझे उदास कर दिया था। पर आज ऐसी ही बात महादेवी जी के मुख से सुन कर यह उदासी और भी गहरी हो गई, गोया कि मेरा विश्वास मुझसे यही कह रहा है कि मृत्यु दोनों से बहुत दूर है, पर यदि किसी दिन वह पास भी आ गई तो शरीर को चाहे हमारे बीच से उठा कर ले जाये; पर उन्हें मार नहीं सकती। दोनों सदैव जीवित रहेंगे।

महादेवी जी बात कर रही थीं। मैंने देखा, सामने वाली टेबिल पर एक तश्तरी में रंग-बिरंगे पक्षी रखे हैं। ये खिलौने छोटे-छोटे बड़े ही सुन्दर हैं। वे तश्तरी में इधर-उधर लुढ़क-पुढ़क गये थे। मुख से वे बात कर रहीं थीं और उधर उनकी चपल अंगुलियाँ अपने काम में

व्यस्त थीं सब को अपने-अपने स्थान पर बिठा दिया था। सचमुच उन्हें अस्त-व्यस्त चीजें अच्छी नहीं लगतीं। थोड़ी देर बाद उन्होंने कमरे में पर्दे वाली एक खूँटी उखड़ी हुई देखकर कहा, "दाता, देख भाई, यह खूँटी उखड़ गई है। पर्दा किसी के सिर पर गिर जायगा।" उन्होंने उसी समय उठ कर बाहर की बिजली भी जला दी थी। वे कैसी ही बात क्यों न कर रही हों; पर उन्हें दूसरी बातों का भी ध्यान रहता है।

मैंने बात बदलते हुए कहा, "छः मार्च को तो आपका जन्म-दिवस है।"

"हाँ, होली है न उस दिन ?"

"जी, हाँ।"

"उस दिन सुबह से जन्म-दिवस ही रहेगा। खूब खुशी का दिन है। तभी तो हम इतने खुश रहते हैं।" ऐसा लगता था जैसे यह बात वह व्यंग्य में कह रही हों। इस पर मैंने कहा, "बहुत अच्छा दिन है। जिस प्रकार होली के दिन यह आशा की जाती है कि सब व्यक्ति अपने मन की विषमताओं को भुला दें और अपने शत्रुओं से भी अच्छा सम्बन्ध स्थापित कर लें, उसी प्रकार आपने तो जीवन की और मन की सभी विषमताओं को भुला कर विश्व से ही अपनत्व स्थापित कर लिया है।"

यह बात यहीं समाप्त हो गई। बोलीं, "यह सोचती हूँ कुछ ठीक हो जाऊँ, तो फिर बापू जी के पास चलूँ।"

"तो आप कब जा रही हैं ?"

"अभी कोई तारीख तो नहीं सोची, पर हाल में ही जाऊँगी।"

फिर गम्भीर होकर कहने लगीं "यही सौभाग्य की बात है कि गांधी जी इस युग में पैदा हुए हैं। इस युग ने उन्हें कुछ तो समझा, कुछ तो सम्मान दिया। किसी दूसरे युग में हुए होते तो उन्हें रहने ही न दिया जाता।"

"हाँ, क्राइस्ट की तरह फाँसी दे दी जाती।"

"अरिस्टोटिल की सी ही दशा होती।" उन्होंने कहा। यह बात यहीं समाप्त हो गई। अब महादेवी जी ने नई बात का सूत्रपात किया। निराला के विषय में कहने लगीं, "निराला जी को बहुत कुछ मिला था, पर उन्होंने तो सब का हिसाब कर दिया, अब फिर वैसे के वैसे ही हो गये।"

"देशदूत में 'मानव' जी का एक लेख निकला था। उसमें उन्होंने जयन्ती का वास्तविक चित्रण किया था। सुना है किसी ने उसका उत्तर लिख कर भेजा है। वह इस बार के 'देशदूत' में छपेगा।" यह बात मैं कह ही रहा था कि एक महाशय आ गये। महादेवी जी उनकी ओर मुड़ गईं। वे महोदय बोले, "वैसा खिलौना तो कहीं मिला नहीं!"

"तो फिर कैसे खिलौने मिल रहे हैं?" उन्होंने कहा।

"ये ही हैं हाथी, ऊँट और इसी प्रकार के दूसरे मिट्टी के। ले आऊँ?" इसी बीच में मैं बोल पड़ा, "कैसे खिलौने मँगा रही हैं?" बोलीं—

"यही बच्चों को भेजने होते हैं, ऐसे ही होता रहता है किसी का मुंडन, किसी का कर्ण-छेदन।" यह कह कर हँस दीं। फिर उनकी ओर मुड़ कर बोलीं—

"मिट्टी का खिलौना तो ठीक नहीं रहेगा। बच्चा तोड़-फोड़ देगा। काठ का ले आओ।"

"तो काठ का ले आयें। एक डिब्बे में पूरा सेट मिलता है। उसमें दस या बारह खिलौने होते हैं।"

"कितने को मिल रहा है?"

"बारह आने या एक रुपये में मिलेगा।" इस पर उन्होंने ताली का गुच्छा उन्हें दिया और कहा, "बक्स में से रुपया ले लो। ताला

बन्द कर देना। आज विद्यापीठ का रुपया रखा है। कहीं भक्तिन ने देख लिया तो मेरा रुपया समझ कर कहीं गाड़ गूड़ देगी।" यह कह कर हँसती रहीं। इस बीच मैं यही सोच रहा था कि महादेवी जी की एक शिशुओं की भी सृष्टि है और उसे भी वे अपने आसन पर बैठी-बैठी ब्रह्मा की तरह देखती रहती हैं। केवल देखती ही नहीं, जो उन्हें करना होता है करती भी हैं। आज मैं यही सोचता हूँ महादेवी का कैसा व्यक्तित्व है पता नहीं। एक के ऊपर एक कितने पटल चढ़े हुये हैं। जब भी कोई पटल खुलता है तो एक नये रंग के ही दर्शन होते हैं।

वे तालों का गुच्छा लेकर अन्दर चले गये। बातें हो ही रही थीं कि इलाचन्द्र जी जोशी तथा पांडेय जी आ पहुँचे। मैं महादेवी जी के पास अपने पुराने वाले स्थान पर ही बैठा था। वे आकर सामने वाली कालीन पर बैठ गये। आध घंटे तक उनकी बीमारी की बात चलती रही। जोशी जी ने किसी होमियोपैथ का नाम बताया। बड़ी प्रशंसा की और यह तय हुआ कि कल मैं और पांडेय जी उन्हें बुला लायेंगे और उनका इलाज आरम्भ हो जायगा।

राहुल जी पर बात आ गई। मैंने कहा यह बड़े आश्चर्य की बात है कि राहुल जी उपन्यास के उपन्यास डिक्टेट (dictate) करा देते हैं। इस पर महादेवी जी बोलीं, "मुझसे मिले थे तो कह रहे थे मैं तीन चीजें साथ-साथ डिक्टेट करा लेता हूँ—एक को उपन्यास, एक को कहानी और एक को निबन्ध।" इस पर मैं जोर से हँस पड़ा, क्योंकि बड़ी ही अद्भुत बात थी। क्षण भर रुक कर महादेवी जी बोलीं, "कोई भी इस प्रकार सृजन का कार्य नहीं कर सकता। हम जब कभी एक भी कविता लिख पाते हैं तो उससे एक संतोष तो मिलता है पर थक से जाते हैं। पर राहुल जी तीन तीन डिक्टेट कराने पर भी नहीं थकते।"

"कदाचित् ऐसा होता हो कि जो भी वह लिखते होंगे वह उनके मस्तिष्क में भरा रहता होगा," मैंने कहा। तुरन्त जोशी जी बोल पड़े, "ऐसी दशा में अन्तर की प्रेरणा कुछ नहीं होती।"

फिर हम लोगों ने चाय पी। छायावाद की बात चल पड़ी। पांडे जी बोल पड़े, "जब यह धारा आयी तब छायावाद का कोई भी आलोचक नहीं था। रामचन्द्र शुक्ल ने इसके विरुद्ध लिखा; पर इसने ऐसी जड़ जमा ली थी कि इसका निरन्तर विकास ही होता गया।"

"रामचन्द्र शुक्ल अपनी दिशा में एक महान् समालोचक थे जिन्होंने युग की धारा के विरुद्ध लिखा। छायावाद का पक्ष लेने वाला तो कोई समालोचक था ही नहीं। अन्त में प्रसाद जी को ही इस पर कलम उठानी पड़ी और उन्होंने 'रहस्यवाद' 'छायावाद' आदि पर निबन्ध लिखे" महादेवी जी बोलीं।

"सबसे पहले शांतिप्रिय द्विवेदी ने छायावाद पर लिखा," पांडे जी ने कहा।

"उसने भी तभी लिखा था जब पहले 'नीरव' लिख चुका था। वह हमीं लोगों के साथ का था। जब लिखते-लिखते वह इस धारा को समझ गया, तब उसने कलम उठायी" महादेवी जी ने कहा।

"हमें तो बड़ा दुःख होता है। पन्त जी ने कैसा लिखा था। पर अब तो वे समाप्त से प्रतीत होते हैं। अब तो यह धारा ही समाप्त सी लगती है" जोशी जी बोले।

"धारा तो अभी क्या समाप्त हो गई, पर छायावाद का पन्त समाप्त हो गया।"

"पन्त की सबसे बड़ी पराजय तो यह है कि उन्हें अपना प्रान्त छोड़ कर पांडेचेरी में जाकर शरण लेनी पड़ी है" पांडे जी ने कहा। इस पर महादेवी जी जरा गम्भीर होकर बोलीं;

"यह पन्त की नहीं हम सब की पराजय है। यदि पन्त को उदय-शङ्कर काम दे सकता है, तो क्या हमारी गवर्नमेन्ट कुछ नहीं कर सकती थी।"

"पन्त इतना बड़ा कलाकार है। कोई एक ऐसी संस्था स्थापित

की जा सकती थी जहाँ कला की उन्नति के लिये कुछ न कुछ हुआ करता" जोशी जी बोले।

"यह एक महान् भयंकर युग है। इसमें लेखक का जीवित रहना भी कठिन है। जैनेन्द्र कुमार को ही देखिये बेचारे अब कुछ नहीं लिख रहे। पहले तो प्रवचन दे रहे थे, अब पता नहीं। जब एक लेखक को खाने को नहीं मिलता, तो वह क्या लिख सकता है?" महादेवी जी बोलीं।

इसी प्रकार और भी इधर-उधर की बातें होती रहीं। अब नौ बजने का समय हो गया था। मैंने महादेवी जी से घर के लिए आज्ञा ली। उन्होंने बड़े ही स्नेह से कहा, "अच्छा अब तुम जाओ।"

जब मैं महादेवी जी के कमरे में गया था और थोड़ी देर उनसे बात हुई थी, तब ऐसा लग रहा था जैसे मैं किसी विशाल गिरिमाला के चरणों में उसमें से झरते किसी मन्द मुखर सोते से एकान्त में अपने मन की गाँठें खोल रहा हूँ, पर अब कमरे से बाहर निकल आने पर ऐसा लगा जैसे मैं उस पेड़ के नीचे से उठकर चला आया हूँ, जिस पर सांध्य-विहगों ने च्याँव-च्याँव मचा रखी हो और उनके विभिन्न स्वरों से मिश्रित संगीत में न तो ताल का सामंजस्य हो और न लय का।

महादेवी जी यदि पचास बार भी मुझे लौटा दें, तब भी कुछ क्षणों के लिये इस मन में चाहे कुछ क्षोभ उत्पन्न हो जाये; पर आप सच मानिए इन हाथों ने जिस महादेवी के चरण छुए हैं, इन प्राणों ने जिस महादेवी की उपासना की है, उस महादेवी की मूर्ति कभी विकृत न होगी। उनसे मिलने पर जब मैं लौटता हूँ तो ऐसा लगता है जैसे आज एक साहित्यिक तपस्विनी के मैंने दर्शन किये हैं और अपनी वाणी से जो उन्होंने मुझ पर पीयूष-वर्षा की है, उससे मेरा आध्यात्मिक स्नान हो गया है।

सश्रद्धा

शिवचन्द्र नागर

१८

३० ए० बेली रोड

प्रयाग

२४ । २ । ४७

आदरणीय 'मानव' जी,

नौकरी तो मुझे भी अच्छी नहीं लगती, पर जीने के लिए पैसा तो चाहिये ही। स्वतन्त्र पत्रकार रह कर इतना पैसा मिल जाये कि कल की चिन्ता न रहे तो ठीक ही है। हम पूँजीपति तो हो नहीं सकते, और लेखक के भाग्य में कदाचित् वैभव तो क्या, उसके स्वप्न भी नहीं। एक दिन आपने मेरे लिए कहा था, "तुम और कुछ नहीं चाहते घोर सुख चाहते हो।" यह बात आपकी ठीक ही थी, पर संघर्ष और विषमताओं से भरे संसार में सुख कहाँ !

मैं घबराता तो नहीं; क्योंकि एक अकेले प्राणी के पेट भरने लायक पैसा मिल ही सकता है; पर कभी-कभी दूसरों के वैभवशाली सुखी जीवन को देखकर मन में विकार पैदा होने लगता है कि क्यों हम भी आँख मींच कर पैसा पैदा न करें। पर साहित्य तो एक साधना है, तपस्या है, आराधना है। अपना तिलतिल जलाकर भी यदि हम सृजन कर सकें तो बहुत कुछ हो गया। ऐसे मनोविकारों के उद्गम पर सचमुच पत्थर रखना होगा, यदि साहित्य-साधना करनी है।

साड़ी के लिए पत्र लिख दिया है। आशा है वे जल्दी ही भेज देंगे।

सश्रद्धा

शिवचन्द्र नागर

१६

३० ए. बेली रोड
प्रयाग
२८ । २ । ४७

आदरणीय 'मानव' जी,

रात के एक बजे ही पत्र लिखने बैठ गये। कैसी मानसिक परिस्थिति में लौटे थे। उस समय तो सो ही जाते।

आकस्मिक मृत्यु वैसे तो अच्छी है, क्योंकि इसमें प्राणों को अधिक पीड़ा नहीं होती होगी, पर इसमें व्यक्ति को किसी से कुछ कहने-सुनने का समय नहीं मिलता।

विदा-बेला बड़ी ही कोमल करुण होती है। कभी-कभी हमें अपने आँसू रोकने ही पड़ते हैं, क्योंकि आँसू का मूल्य भी तभी तक है जब तक वे दिखाये न जायें या फिर वहाँ आँसुओं का निकलना ठीक है, जहाँ उनके उचित मूल्यांकन का विश्वास हो। इस विश्व ने तो आँसू जैसी अमूल्य निधि को व्यंग्य के कांटों से ही तोला है। फिर भी आँसू यदि अन्तर से उमड़ ही आयें तो आँखों में उनका छलछलाना मनुष्य की कमजोरी का ही द्योतक है। कल्पना कीजिये उस दृश्य की जहाँ एक की प्रेयसी दूसरे की नववधू होकर विदा हो रही हो। सभी जानते हैं उस समय उसके अन्तर की क्या दशा होती होगी, पर यदि वह उस दृश्य में, उपस्थित हो तो मानसिक विकृति का चेहरे पर उतर आना उसकी कमजोरी ही है। कोई कह रहा था कि हिन्दी के एक प्रसिद्ध कवि की प्रेयसी का जब किसी दूसरे से विवाह हो गया तो वे मूर्च्छित हो गये थे। इस प्रकार के आँसू और इस प्रकार की मूर्च्छा कितनी ही (Sincere) क्यों न हो, पर साथ ही वह अपने प्रेम का प्रकाशन और विज्ञापन भी है जो प्रेम में कभी भी वांछित नहीं।

दो-तीन दिन से एक भी पैसा पास नहीं रहा था, लिफाफा खरीदने के लिये भी नहीं। आज सुबह आपकी पुस्तकें लेकर एक दूकान पर

गया। दूकानदार ने खरीद लीं। इतना पैसा मिल गया कि सप्ताह भर का ऊपर का खर्च चलता रहेगा। फिर तब तक रुपया भी आ जायेगा। कई बार ऐसे दिन जीवन में आये हैं; पर संतोष इतना ही है कि कोई भी काम नहीं रुका।

यह बात अच्छी नहीं लगती कि आप लिखते-लिखते अपनी लेखनी रोक जाते हैं—नास्तिकता की बात पर आपने बुरा क्यों माना? आप तो माने हुये नास्तिक हैं और यह उपाधि मैं नहीं, महादेवी जी आप को दे चुकी हैं।

श्रद्धा, प्रेम और स्नेह सचमुच इतने सूक्ष्म और व्यापक हैं कि उन्हें शब्दों की परिधि में नहीं बाँधा जा सकता।

सश्रद्धा
शिवचन्द्र नागर

२०

३० ए. बेली रोड
प्रयाग
६।३।४७

आदरणीय 'मानव' जी

रात के साढ़े दस बजे होंगे। इस समय तक प्रतिदिन तो निस्तब्धता छा जाती थी, पर आज तो सड़क पर ज्यों-ज्यों रात बढ़ती जा रही है, बच्चों का कोलाहल त्यों-त्यों और अधिक बढ़ता जा रहा है। यह होली की रात है।

सुबह आँख खोलते ही मन में एक बात जगी थी कि आज महादेवी जी का जन्म-दिवस है। आज मेरे लिये यह निश्चय करना कठिन हो रहा है कि इस त्यौहार ने मेरे लिये महादेवी जी के जन्म-दिवस की महत्ता बढ़ा दी है या महादेवी जी ने जन्म लेकर इस त्यौहार की महत्ता को बढ़ा दिया है।

आज संध्या को मैं उनके दर्शन के लिए गया था। मैं तो आज का दिन एक साहित्यिक महोत्सव का दिन समझता हूँ। इस महोत्सव पर उस महोत्सव के देवता के दर्शन एक परम सौभाग्य की बात ही हैं-सचमुच परम सौभाग्य की।

आज उनके चेहरे पर और दिन से अधिक स्वस्थता थी। पहले से ही आज वे अपने आसन पर अधिष्ठित थीं। धवल खादी की धोती पहने हुए वे ऐसी लग रही थीं जैसे हिमालय की सबसे ऊँची हिमाच्छादित श्रेणी का ऊपरी भाग काटकर किसी ने पृथ्वी पर लाकर रख दिया हो।

एक महोदय उनसे बातचीत कर रहे थे। वे महादेवी जी को बात बात में 'जीजी' सम्बोधन से पुकारते थे। महादेवी जी ने उनसे परिचय कराया। ये डा० ब्रजमोहन गुप्त हैं।

मैंने उनसे उनके स्वास्थ्य की बात पूछी, "होमियोपैथी के इलाज से अब कैसा है?"

"अब कुछ ठीक है।" फिर हँस कर कहने लगीं, "आँखों में अब दो नये सींग से निकल आए हैं। क्या कहूँ पर्वत कहना चाहिये; क्योंकि हम तो आँखों में ही समस्त विश्व को बसाते आये हैं। पता नहीं इनमें क्या क्या है, समुद्र, बादल, बिजली, पहाड़!" इस पर मैंने हँस कर यह कह दिया आँखों में ये सब चीजें हैं तो, पर-इनकी साकारता तो बड़ी दुःखदायी है। मैंने उनको आँखों के लिए त्रिफले के पानी वाली बात कही, और दूसरी दवाई उन्हें (Lotus Honey) बताई। इस पर कहने लगीं, "Lotus Honey तो मैंने बहुत लगाया है, पर उससे कुछ आराम नहीं हुआ।" यह बात यहीं समाप्त हो गई। ब्रजमोहन जी ने साहित्य चर्चा छेड़ दी। उन्होंने आलोचना का अपना दृष्टिकोण रखा। उनका दृष्टिकोण कुछ-कुछ 'कला जीवन के लिये', ऐसा था। वे कहने लगे: साहित्यिक को कोई ऐसा संदेश देना चाहिये जो Humanity को Elevating हो। वह हमारे लिए कम से कम एक पोल-स्टार की ओर संकेत अवश्य करता हो। मेरा उनसे कई बातों पर मतभेद था।

एक घन्टे तक उनसे चर्चा चलती रही ।इस बीच महादेवी जी ने एक संतोषी श्रोता का ही पार्ट किया । एक तश्तरी में गुप्त जी के लिये फल, दूसरी में थोड़ा नमकीन मेवा तथा चीवड़ा इत्यादि भक्तिन दे गई। फिर उन्होंने और मँगाया और बोलीं, "भक्तिन गुँजिया लाओ। भक्तिन कहने लगी, "होली जलने पर गुँजिया खाई जाती है ।"

"नहीं ऐसी बात नहीं, आज होली जलने से पहले ही सही ।"

थोड़ी देर में गुँजिया और चाय इत्यादि आ गईं। हम खाते-पीते रहे और ब्रजमोहन जी से चर्चा भी चलती रही।

इसी बीच ब्रजमोहन जी ने मुझसे पूछा, "आप मुरादाबाद बहुत साल से रहते हैं या अभी गुजरात से आकर बसे हैं ।" मैंने कहा, "गुजरात से तो दो सौ तीन सौ साल पहले आये थे।" इस पर महादेवी जी बहुत हँसी और बोलीं "देखो कैसे कह रहा है जैसे दो सौ तीन सौ साल पहले यह एक छोटा सा बच्चा रहा हो और दो सौ तीन सौ साल बीत गये हों।" इस पर मैंने हँस कर यह कह दिया. "पता नहीं तब मैं तो कहाँ हूँगा और हूँगा भी या नहीं, क्योंकि मैं तो जन्म जन्मांतर में विश्वास करता नहीं" इस पर गम्भीर होकर कहने लगीं, "भाई मैं तो विश्वास करती हूँ। जो चेतना है वह बिल्कुल ही विलीन तो नहीं हो जाती होगी ? पर मेरा विश्वास ऐसा भी नहीं जैसा भक्तिन का है।" यह बात यहीं समाप्त हो गई। सहसा महादेवी जी उठ कर अन्दर गईं। एक मोटी सी अँग्रेजी की पुस्तक लायीं। आकर उसे सामने वाली टेबिल पर रख भी नहीं पायी थीं कि बोली हँस कर, "अब मैं मानव जी को बहुत डाटूँगी। उन्होंने जन्म-दिवस पर उपहार में यह पुस्तक भेजी है। अपने से बड़ों को उपहार नहीं भेजा जाता।" मैं भी हँस दिया। पुस्तक उन्होंने हाथ से टेबिल पर रख दी। मैं केवल उस पर मोटे अक्षरों में लिखा पुस्तक का नाम HIMVAT ही पढ़ पाया था कि ब्रजमोहन जी ने उसे उठा लिया। पन्ने पलटे। उस पर आप

का लिखा हुआ भी पढ़ा। फिर मैंने वह पुस्तक उनके हाथ से ले ली। इसी बीच महादेवी जी बोलीं, "पुस्तक बहुत अच्छी है।"

"मानव जी की Choice अवसर के अनुकूल ही है।"

"नहीं, रोरिक के तो हम बहुत पहले से भक्त रहे हैं। इधर जब मैंने अपना 'सांध्य-गीत' भेजा था, तो उन्होंने कार्ड size पर अपनी कुछ पेन्टिंग भेजी थीं। मेरे चित्रों पर एक बहुत बड़ी सम्मति भी थी।"

"आज सुबह ही यह पुस्तक मिली। आज सुबह आठ बजे से ही हमारा जन्म-दिवस है। इस समय तक तो हम कितने ही घंटों के हो चुके थे। हमारे और बहुत से परिचित तो २४ मार्च को ही मेरा जन्म-दिवस मानते हैं।" इस पर गुप्त जी बोले, "होली का जब अपना इतना अच्छा दिन है तो हमें तो यही रखना चाहिये, अँग्रेजी तारीख नहीं।"

"यहाँ के लोगों में कुछ ऐसी ही बात है। टैगोर की मृत्यु रक्षा-बन्धन के दिन हुई थी; पर वह दिन नहीं माना जाता। अँग्रेजी तारीख लेते हैं" महादेवी जी बोलीं।

"यह कुछ ठीक नहीं लगता। 'बा' की मृत्यु शिव-चतुर्दशी को हुई थी, पर हमने वह दिन भुला दिया है" मैंने कहा। फिर बात क आगे बढ़ाते हुये बोला, "हम तो अपनी हिन्दुस्तानी तिथि ही मानते हैं। आज आपका जन्म-दिवस है। परसों को उसी हिसाब से मेरा जन्म-दिवस है" मैंने हँसकर कहा। हँस कर बोलीं, "हाँ, दूज का"

"तो हमारी वैसी प्रसन्नता का थोड़ा-सा भाग तुम्हें भी मिलेगा" वे बोलीं।

आज अपने जन्म-दिवस पर उन्होंने मेरे लिये यह बात कही। सचमुच में तो इसे उनका आशीर्वाद ही समझता हूँ। एक महान् कलाकार के मुँह से निकली हुई बात व्यर्थ नहीं जायेगी, यही विश्वास मन में आज जम सा गया है।

इसी बीच एक महाशय और आ गये थे। वे भी महादेवी जी को 'दीदी' कहते हैं। चारों व्यक्तियों में बहुत देर तक बिल्कुल घरेलू सी बातें होती रहीं। आध घन्टे बाद वे महोदय उठ कर चल दिये। आध घन्टे तक फिर गुप्त जी से बात हुईं। फिर वे चल दिये।

डा० ब्रजमोहन गुप्त अच्छे व्यक्ति लगे। उनका कैसा भी दृष्टिकोण हो, पर उसमें थोड़ी सी उदारता और व्यापकता भी है।

बरामदे तक उनको पहुँचा कर मैं महादेवी जी के साथ वापस लौट आया। चुपचाप शांत अपने-अपने स्थान पर आकर हम बैठ गये। वातावरण बिल्कुल बदल गया और बात-चीत का ढंग भी।

मैंने कहा, "आज आप के चालीस वर्ष पूरे हुए। आज आपकी रजत-जयन्ती मनाई जाती, पर हमारे साहित्यिकों में अभी इतनी जागरुकता नहीं है।"

"शायद ४० साल तो हो गये होंगे। सन् १९०७ का जन्म है।"

"जो बात इस मन ने स्वीकार नहीं की उसके प्रति सदा से यह विद्रोह ही करता आया है।" यह कह कर क्षण भर के लिए चुप हो गईं। बोलीं—

"जब मैं नौ वर्ष की थी तभी मेरा विवाह कर दिया था। एक नौ वर्ष का बालक क्या जानता है। मुझे भी कुछ याद नहीं विवाह कब हुआ था! क्या हुआ! बस इतना याद है कि जब बाजे-गाजे बजे, हाथी घोड़े वर के सामने आ गये तो मैं उन्हें देखने के लिए दौड़ी—जैसे बच्चे तमाशा देखने चले जाते हैं। सब बच्चों में जा कर खड़ी हो गई। फिर कोई मुझे पकड़ कर ले गया। नींद तो हमें बहुत आती ही थी। फिर कहीं सो गई हूँगी। फिर विवाह कब हुआ यह मुझे याद नहीं।"

"आप को सुन्दर-सुन्दर कपड़े पहनाये गये होंगे, यह तो आपको याद होगा?"

"हाँ पहनाये गये होंगे। पर विवाह जैसी बात की कोई चेतना ही नहीं थी, क्योंकि अपने घर में भी मैंने इससे पहले किसी का विवाह नहीं देखा था। नींद में सोते हुए उठा कर गोदी-वोदी में बिठाकर किसी ने विवाह करा दिया होगा। पर अगले दिन जब मैं बैठी तो कपड़े में गाँठ सी बँधी हुई थी। बड़ी बुरी लगी। इसी बीच दिन में कुछ देवताओं की पूजा होने लगी। उधर पूजा हो रही थी और इधर मैं गाँठ खोलने में लगी हुई थी। जब गाँठ खुल गई तो मैं वहाँ से एकदम भाग आयी?"

"तो आप को फिर पकड़ कर ले गये होंगे; क्योंकि पूजा तो गठबन्धन से होनी ही चाहिये।"

"शायद किसी ने खोजा हो, पर हम घर में ऐसी जगह जा छिपे थे कि किसी को भी मिले नहीं। पूजा भी हो गई होगी।"

"आपके पिता जी तो नारी-स्वातन्त्र्य और विवाह इत्यादि के विषय में नवीन विचार रखते थे। उन्होंने क्या किया कि नौ वर्ष की उम्र में ही विवाह कर दिया?"

"तब हमारे बाबा जीवित थे। घर में कोई लड़की नहीं थी। कितने पूजा पाठ और कितनी मानताओं के बाद तो मेरा जन्म हुआ था और बाबा कोबड़ी प्रसन्नता हुई थी। वैसे तो कायस्थों में लड़की की जन्म कभी भी नहीं चाहते, क्योंकि लड़की के बिवाह में उन्हें बड़ा भारी दहेज देना पड़ता है, पर फिर भी बाबा यही चाहते थे कि घर में, एक लड़की अवश्य होनी चाहिये। अब धर्म की बात थी। कन्यादान का पुण्य भी उन्हें लेना ही था, इसीलिए नौ वर्ष की उम्र में ही विवाह कर दिया गया।"

"फिर आप की शिक्षा कैसे हुई?"

"डाक्टर भी उन दिनों पढ़ते थे। ससुराल वालों ने भी यही कहा कि लड़की बहुत छोटी है। लड़का पढ़ता है। छः-सात साल बाद

गौना हो जायगा। इसलिये विवाह के बाद मैं अपने घर पर ही रही। डा० के घर नहीं गई थी।"

"तो डाक्टर उन दिनों कहाँ पढ़ते थे?"

"पहले आगरे पढ़ते थे और फिर लखनऊ। इधर मैं भी पढ़ती रही। फिर यहाँ इलाहाबाद आ गये थे। छटी क्लास से ही मैं यहाँ क्रौस्थवेट गर्ल्स कालिज में पढ़ी हूँ। पढ़ने का मन में कुछ पहले से ही चाव रहा। मिडिल में हजारों लड़कियों में सर्व प्रथम रही, स्कॉलरशिप मिला। हाई स्कूल में पोजीशन आई, स्कॉलरशिप मिला और इस तरह इन्टरमीडियेट, बी० ए०, एम० ए० सभी हो गये।"

"तब तो आप नौ वर्ष की थीं। अबोध थीं। पर बाद में तो आप को विवाह जैसी बात से परिचय हो गया होगा। तब कैसा लगा?"

"हाई स्कूल कर लिया, इंटरमीडियेट भी हो गया, तब तक तो कोई बात ऐसी थी ही नहीं कि मैं यह अनुभव करती कि मेरा विवाह हो गया है। इंटरमीडियेट के बाद, डाक्टर भी एम० बी० बी० एस० हो गये थे। अब भेजने की बात उठी। अब तक मन में उदात्त भावना आ गई थी। भिक्षुणी हो जाने की बात मन में उठी। मैंने जाने से मना कर दिया। किसी भी काम में मन का झुकना तो जरूरी था। पर मन तो झुका ही नहीं था। विवाह हो गया होगा; पर मैं नहीं जानती। मन तो पत्नीत्व रूप में नहीं झुका इंटरमीडियेट के बाद तो बात शांत हो गई। बी० ए० भी कर लिया। अब किसी तरह छुटकारा न था। घर पर सब ने कहा; पर मैंने तो भिक्षुणी होने की बात सोच ली थी। डाक्टर यहाँ आये। उनसे मैंने यही कह दी कि आप से मेरा विवाह हुआ होगा, पर मैं नहीं जानती और न मैं मानती ही हूँ कि मेरा विवाह हुआ है, क्योंकि मन नहीं मानता। हमारी माता जी तो बहुत रोयीं और कहा तुम भिक्षुणी न हो। डाक्टर भी यही

बोले : अच्छा भाई भिक्षुणी न होओ, भिक्षुणी होकर माँगती फिरोगी, यह अच्छा न लगेगा। जैसे तुम्हारा मान करे वैसे रहो।

"डाक्टर साहब कहाँ रहते हैं?"

"गोरखपुर में रहते हैं। खूब डाक्टरी चलती है।" फिर जोर से हँस कर बोलीं, "बहुत अच्छे आदमी हैं। दो कार खरीद रक्खी हैं। बन्दूक लेकर रोज चार पाँच चिड़ियाँ मार लाते हैं। उनके पैर बाँध कर टाँग कर घर ले आये। उनके पंख-वंख नोचे जाते हैं। फिर वे बनती हैं।"

"तो उन्होंने दूसरा विवाह कर लिया होगा?"

"नहीं, मैंने तो कह दिया था, पर उन्होंने दूसरा विवाह नहीं किया। उनका भी एक बड़ा परिवार है। एक उनकी विधवा बहिन है। दो भानजे हैं। वहीं सब रहते हैं। एक बार उनकी बहिन ने लिखा था; "तुम तो सन्यासी वैरागी हो गई। अब भाई का तो कहीं घर बसा दो। अलीगढ़ में एक लड़की है। उससे विवाह की सिफारिश कर दो। मैं अलीगढ़ गई। बातचीत की। उनकी और शंकायें भी दूर कर दीं कि भाई मुझसे कोई डर की बात नहीं। कहा मैं कागज पर लिख दूँ कि मेरा कोई अधिकार नहीं। डाक्टर से आकर मैंने कहा, भाई तुम्हारे विवाह की बात पक्की है विवाह कर लो। पर यह सुनकर वे बहुत नाराज हुए।"

"तो अब डाक्टर साहब से आपके कैसे सम्बन्ध हैं?"

"बहुत अच्छे सम्बन्ध हैं। इस मन में सम्बन्धों की कटुता कहीं नहीं। कभी-कभी पत्र भी आता-जाता रहता है। जब इलाहाबाद आते हैं तो मिल कर अवश्य जाते हैं। उन्होंने तो यह भी कहा था कि मैं अपनी एक कार यहाँ छोड़े देता हूँ, तुम चाहे जहाँ रहो और चाहे जैसे रहो, पर किसी भी तरह की असुविधा न उठाओ, पर मैंने मना कर दिया। उनके यहाँ के गहने कपड़े भी मैंने नहीं रखे। सभी लौटा दिये थे।"

"उनसे आप के अच्छे सम्बन्ध तो हैं, पर क्या आप का उनसे ऐसा ही सम्बन्ध है जैसा और दूसरे आदमियों से ?"

"हाँ, इससे अधिक और कुछ नहीं। वैसे सम्बन्धों में कोई कटुता नहीं आयी न उन्होंने ही कोई ऐसी बात की जिससे कष्ट होता। हमारे पिता जी को तो अन्त तक इस बात का पछतावा रहा कि हमने लड़की का व्यर्थ ही विवाह किया। मरते समय वे कुछ रुपया भी मेरे लिये छोड़ गये थे कि कहीं यह विदेश रिसर्च करने जाय या यहीं रहे तो कष्ट से न रहे।" यह बात कहते-कहते वह कुछ अधिक उदास हो गई थीं। मेरे मन में भी कुछ उदासी छा गई। मैंने कहा—

"उन्होंने ठीक ही किया। वैसे तो और कहीं से कष्ट की सम्भावना नहीं थी, ससुराल से ही कुछ कष्ट मिल सकता था। वे मुकदमा वगैरह कुछ चलाते पर डाक्टर साहब अच्छे ही आदमी हैं। यह उनकी थोड़ी उदारता ही है कि उन्होंने आपको अपने साथ रहने पर विवश नहीं किया।"

"मन के विरुद्ध चलने के लिये कैसे विवश किया जा सकता था ? यह वह जान गये थे कि यह अपने प्राण दे देगी, पर आत्म-समपर्ण नहीं करेगी।"

"डाक्टर साहब का नाम क्या है ?"

"स्वरूप नारायण।"

मैं एक क्षण के लिये चुप हो गया। मन ने एक क्षण में ही पता नहीं क्या-क्या सोच डाला। आज महादेवी जी ने ऐसी बात छेड़ दी थी जिसके विषय में मन में सैकड़ों प्रश्न थे। पूछने के लिये मैं तैयार तो हो गया, पर डर यही लग रहा था कि कहीं पूछने के ढङ्ग में ऐसी बात न आ जाय जिससे वे अप्रसन्न हो जायँ या उत्तर देना बन्द कर दें। साहस बटोर कर मैंने पूछा :

"प्रश्न यह उठता है कि किसके सामने आपने आत्म-समर्पण किया ?"

"विरक्ति की भावना के साथ-साथ ही उस विराट् के प्रति आत्म-समर्पण हो चुका था जो सदैव ही अखंड है।"

"यह बात तो ठीक है, पर प्रश्न यह उठता है कि आपके मन में इस संसार के किसी व्यक्ति के साथ जीवन बिताने की बात नहीं उठी क्या?"

"आत्म-समर्पण पूर्ण ही था। उसमें किसी व्यक्ति के लिये जगह रह ही नहीं गयी थी, तो फिर कैसे होता? साथी चुनने की बात दो प्रकार से मन में उठती है–एक तो ऐसा साथी जो शारीरिक वासना में साथ दे सके और दूसरा ऐसा जो मानसिक स्तर पर साथ-साथ विचरण कर सके। शारीरिक वासना जैसी चीज का तो मैंने अनुभव ही नहीं किया और गृहस्थ बनने की इच्छा नहीं थी। रहा मानसिक स्तर का प्रश्न, उस स्तर पर मेरे आत्म-निवेदन में साथ देने वाला वह विराट् व्यक्तित्व है ही। उसके जैसा संसार में छोड़ तीन हाथ का व्यक्ति और कौन मिल सकता था? संसार में किसी को भ वात्सल्य के अतिरिक्त और कुछ नहीं दे सकी। डा० कभी बीमार हो जाते हैं तो मैं उनकी सेवा सुश्रुषा कर सकती हूँ, पर उसमें संवेदना और वात्सल्य की ही भावना होगी।"

"किसी को श्रद्धा और सम्मान भी तो दिया होगा।"

"हाँ, श्रद्धा और सम्मान भी दिया है।"

"अच्छा आपने अपनी कविताओं में अभिसार शृंगार मिलन इत्यादि के जो वर्णन किये हैं उनकी अनुभूति कहाँ से हुई?"

"यह अनुभूति तो उसी विराट् के प्रति है, पर रूपक तो लौकिक ही होते हैं।"

"यह बात तो मैं मानता हूँ, पर पाठक आपको पढ़कर यही कह उठता है कि लेखिका की ये सब ऐसी तीव्र अनुभूतियाँ हैं जैसी उसके जीवन की ही अनुभूतियाँ हों।"

"रूपक तो ऐसे रहते ही हैं। मीरा ने भी अपनी बात ऐसे ही लौकिक रूपकों में कही है।"

"यह बात ठीक है,पर यहाँ मीरा में और आप में अन्तर आ जाता है। मीरा ने अपने पति के सामने पत्नी रूप में आत्म-समर्पण नहीं किया, पर अपने पति के साथ शारीरिक सम्बन्धों का अनुभव किया था; पर आपने यह भी नहीं किया।"

"यह तो पाठक की अपनी बात है। वह अपने मन में इस मान्यता को लेकर चलता है कि इस युग में कोई भी ऐसी स्त्री नहीं हो सकती जिसमें वासना और विलास की भावना न हो। बस वह यही निर्णय कर लेता है कि किसी व्यक्ति के सम्बन्ध से यह निराशा हुई है। पर बात ऐसी नहीं। किसी व्यक्ति के प्रति यह मन झुका ही नहीं, नहीं तो कोई बात थोड़े ही थी। मैं सम्बन्धों के प्रति अनुदार नहीं हूँ। यदि किसी से ऐसे सम्बन्ध की भावना जगी होती तो मैं उसे अपना साथी बना ही लेती। समाज से या किसी से डर की बात नहीं थी। मेरे सम्बन्ध जिससे जैसे हो गये फिर उनमें परिवर्तन नहीं होता। डाक्टर से तो मेरे सब, प्रकार के सम्बन्धों की अनुमति वेद-मंत्रों ने, माता पिता ने, समाज ने और कानून ने दे दी थी, पर वे भी इस शरीर की छाया तक का स्पर्श नहीं कर पाते। दूसरे की तो बात ही क्या ?"

"पर डाक्टर साहब ने दूसरा विवाह क्यों नहीं किया, यह बात कुछ समझ में नहीं आती ?"

"कदाचित् उन्हें हम जैसा कोई न मिला हो ?"

इस पर मैंने हँस कर कहा, "ठीक ही है। आप ने तो इसलिये विवाह नहीं किया कि आपको ऐसा महान व्यक्तित्व मिल गया था जिसके सामने इस संसार के प्राणियों के व्यक्तित्व तो छोटे-छोटे परमाणु मात्र हैं और इधर डाक्टर ने इसलिये विवाह नहीं किया कि उन्हें ऐसा व्यक्तित्व मिल गया था जिसके टक्कर का व्यक्तित्व उन्हें दूसरा नहीं मिल सका।" बात को आगे बढ़ाते हुये मैं बोला,

"आप का और उनका प्रेम सम्बन्ध नहीं है ठीक है; पर आपकी कीर्ति जब उनके कानों में पहुँचती होगी तब उन्हें यह बात याद कर कि यह स्त्री मेरी धर्म-पत्नी थी मन में कैसा लगता होगा। पीड़ा होती होगी न ?"

"वे ये सब बात नहीं जानते। पुराने कायस्थ्य जमींदारों जैसा उनका जीवन है। न तो वे हिन्दी ही जानते हैं और न मेरा दर्शन ही समझते हैं। हिंसा में विश्वास रखते हैं, शिकार से उन्हें प्रेम है और मेरा सब कुछ अहिंसा पर आश्रित है। उन्हें इस प्रकार की मेरी कीर्ति से कुछ संबंध नहीं। पर इतना अवश्य है कि यदि उनसे मेरी कोई निन्दा करे तो अवश्य बिगड़ जाते हैं।"

"कहीं ऐसा तो नहीं है कि आप को गृहस्थ जीवन से इसीलिये विराग हो गया कि आप का विवाह एक ऐसे व्यक्ति से हो गया था जो हर प्रकार से आपके स्वभाव के प्रतिकूल था ?"

"अब यह तो नहीं कहा जा सकता कि यदि विवाह न होता तो क्या होता। पता नहीं जीवन किस ओर मुड़ जाता। पर मैं भिक्षुणी हो जाती तो अच्छा था। तब कदाचित् संसार ऐसे व्यक्तियों को ढूँढने का प्रयास न करता जिन्हें उन्हें मेरे प्रेम करने का भ्रम है।"

"वास्तव में यह स्थिति आपके लिये बहुत ही कठिन है। वैसे तो अब भी आप भिक्षु ही हैं। मैं यह नहीं सोचता कि यह आपका ड्राइङ्ग रूम है, ये आपके नौकर हैं; यह आप का बँगला है। जिस चीज को मैं देखता हूँ वह अब भी भिक्षुणी की ही है।"

"हमें बाहर से बहुत सी बातें मन के प्रतिकूल करनी पड़ती हैं। कहीं जाना होता है, यह करो-वह करो। ताँगे पर चलो, रिक्शा करो। पर यदि भिक्षुणी होते, जहाँ मन चाहा कमंडल उठा कर चल दिये। अब मुझ में स्त्री का संकोच नहीं है। जब मैं बात करती रहती हूँ तो मेरे मन में स्त्री या पुरुष होने की बात नहीं उठती। पर यदि मैं भिक्षुणी हो गई होती तो संसार अँगुली न उठाता।"

"हाँ, भगुए कपड़ों का इतना तो लाभ होता है" मैंने हँस कर कहा।
"अब तो हमें बहुत सी बातें करनी पड़ती हैं। एम० ए० के ठीक बाद ही में विद्यापीठ आ गई थी। मेरी कुछ उम्र नहीं थी, पर फिर भी मुझे उम्र में बहुत आगे बढ़ जाना पड़ा।"

"संसार की बातों पर क्या ध्यान देना। यह तो इतना गंदा है कि गन्दगी की ही कल्पना कर सकता है। पता नहीं आपके विषय में कितनी बातें हवा में उड़ी हुई हैं।"

"यह तो मैं जानती हूँ और मैं ऐसी बातों से डरती भी नहीं। ऐसी बातों से मेरे व्यक्तित्व को कोई हानि नहीं पहुँचा सकता, पर कभी कभी यही सोचती हूँ कि कहीं इन बातों से मेरे कामों में बाधा न पहुँचे, क्योंकि सुनने वाले यही सोच सकते हैं कि यदि ये ऐसी हैं तो इनकी संस्थाओं में क्या होता होगा?

और ये बातें तो उड़ती ही रहती हैं, पर चल नहीं पातीं; क्योंकि उनका कोई आधार नहीं होता। एक बार जब पंत यहाँ रहते थे तो उन्होंने मेरे ऊपर एक कविता लिखी और सरस्वती में उसे निकलवा दिया। बस फिर क्या था तूफ़ान मच गया, लोग कहने लगे पंत महादेवी को प्रेम करते हैं।"

"कवि सम्मेलनों में आप कब से भाग नहीं लेतीं?"

"कवि सम्मेलनों में तो मैं बहुत समय से भाग नहीं लेती। जब विद्यार्थिनी थी, तभी कहीं कविता पढ़ दिया करती थी।"

"आप कविता गा कर पढ़ती थीं या वैसे ही?"

"वैसे ही पढ़ती थी। गाना सीखा था। पर मन चित्रकला की ओर बढ़ गया। संगीत ऐसी कला है कि उसमें स्थायित्व नहीं है। आपने स्वर निकाला, सुनने वालों ने सुना और वह खो गया।"

"पर सुननेवालों के हृदय में तो वह संगीत बैठ ही जाता है, अपना स्थायी स्थान बना ही लेता है।"

"यह बात तो ठीक है, पर संगीत की अभिव्यक्ति में तो स्थायित्व नहीं है।"

"आपने वाद्य-यन्त्र कौन सा सीखा था।"

"सितार ही जानती हूँ। कुछ दिनों तक इसराज भी सीखा।"

"तो आप सितार बजाती होंगी ?"

"नहीं, अब नहीं ! अब तो चित्रकला की ओर ही मन झुक गया है।

आपकी पुस्तक सामने रखी थी। उस समय दूसरे दो व्यक्तियों के सामने मैं कुछ नहीं कह पाया था। अब महादेवी जी ने पन्ने पलटे और फिर अपनी पुरानी बात दोहरायी। इस पर मैंने कहा—

"आपका उनका सम्बन्ध तो ऐसा है कि उसमें बड़े छोटे की बात नहीं उठती। भाई बहिन में अवस्था का चाहे कितना ही अन्तर हो, पर व्यवहार बराबर का ही रहता है।"

"फिर भी छोटे बड़े भाई बहिन का सम्बन्ध तो रहता ही है। छोटे बड़ों को उपहार नहीं देते। हाँ, बड़े छोटों के जन्म-दिवस पर देते हैं। छोटे तो बड़ों को केवल नमस्कार भेजते हैं," यह बात उन्होंने हँस कर कही। इस पर मैं बोला, "यह उपहार नहीं है। मन की भावना का प्रतीक है सम्भवतः।"

इस पर मुस्काकर उन्होंने एक बार मेरी ओर देखा पर कुछ बोलीं नहीं। वह पन्ना पलट कर देखने लगीं जिस पर लिखा था, "बहिन महादेवी को—उनके जन्म दिवस पर।" फिर कुछ पलों के बीत जाने पर बोलीं—

"जन्म-दिवस तो तभी तक मनाया जाता है जब तक माँ रहती हैं। अब तो आप लोगों का जन्म-दिवस ही मुझे मनाना चाहिए, क्यों-कि मेरा परिवार तो आपलोगों का ही परिवार है। ब्रजमोहन गुप्त हैं, आत्माराम हैं, पांडेय हैं। कोई मुझे 'जीजी' कहता है कोई 'दीदी'।"

"पर मैं तो आप को कुछ नहीं कहता" मैंने कहा।

"जो तुम्हें अच्छा लगे, वह तुम कह दिया करो।"

"मुझे 'जीजी' अच्छा लगता है पर मैं आपको आज से.....
'बा' कहा करूँगा। आज से मेरा आपका 'बा' का सम्बन्ध रहा।"
सचमुच 'बा' शब्द की परिधि में भी मेरे मन की बात नहीं आती।
मेरे उनके सम्बन्ध में अनायास ही इतने सम्बन्ध मिले हुए हैं कि उन
सब को व्यक्त करने के लिये कोश में कोई-शब्द नहीं मिल सकता।

रात के दस बजने वाले थे। अपनी 'बा' का आशीर्वाद लेकर मैं
घर की ओर चल दिया।

आज बातचीत में उन्होंने अपने जीवन के वे गहन पटल खोल
दिये थे जिन पर चर्चा करने की बात तो बहुत पहले से मन में आई
थी, पर यही सोचता था जीवन भर ऐसी चर्चा का अवसर नहीं
मिलेगा। आज मैंने उनसे बिल्कुल वैसी बातचीत की और वैसे ही
प्रश्न भी किये जैसे कभी-कभी अपने पागलपन में आप से किया करता
हूँ। पर आप हैं कि रहस्य बने हुए हैं, इतना भी भेद नहीं खोलते!

सश्रद्धा
शिवचन्द्र नागर

२१

३० ए. बेलीरोड, प्रयाग
६ । ३ । ४७

आदरणीय 'मानव' जी,

कई दिन से आपके पत्र की प्रतीक्षा थी। आप स्वस्थ तो हैं?
होली बीत गई है। वैसे मैं त्योहारों से उदासीन नहीं, पर इस बार न
तो मैंने रंग ही उड़ाया और न मैं कहीं आया गया ही। ७ ता० को
आपका पत्र भी नहीं आया, इसलिये उस दिन और भी उदासी रही।
कहीं आप बाहर तो नहीं चले गये थे?

उस दिन आपकी पुस्तक डा० ब्रजमोहन ने देखी थी और भी कुछ
व्यक्तियों ने देखी होगी, क्योंकि वह टेबिल पर ही रक्खी रही थी। ब्रज-
मोहन गुप्त को आपका लिखा "बहिन महादेवी को.....आदि" दिखा

कर कह रही थीं, "पुस्तक भेजना ठीक नहीं था, पर पुस्तक के अन्दर उन्होंने बात तो बहुत अच्छी लिखी है और पुस्तक तो अच्छी है ही।"

उस दिन महादेवी जी में बात करने का मूड (Mood) आया था। प्रवाह में जल्दी-जल्दी अपने धुँधले अतीत पर एक दृष्टि डाल गईं। उस दिन उनका मन उदास हो गया था। आप अपनी जन्म-तिथि तो लिखियेगा। आपके इतना निकट होने पर भी मैं आपकी जन्म-तिथि तक नहीं जानता। सचमुच मेरी दशा है बड़ी दयनीय।

मेरे एक मित्र हैं—रमेश चन्द्र वर्मा डी० फिल। उन्हें आपकी कलकत्ते की 'रानी' पत्रिका में प्रकाशित 'याद है वह बात' कविता बहुत पसन्द आयी। उसकी एक पंक्ति है, 'बीच में है किन्तु प्रिय! सिंदूर की दीवाल!' उसी के आधार पर उन्होंने एक कहानी लिखी है--'सिंदूर की मर्यादा।'

आपने आने की बात नहीं लिखी, यह बात अच्छी नहीं लगी। ६ अप्रैल को आपको यहाँ आ ही जाना है। किराया मैं मकान मालिक को पहली अप्रैल को ही दे दूँगा। आइये अवश्य।

सश्रद्धा
शिवचन्द्र नागर

२२

३०. ए. बेली रोड
इलाहाबाद
१५।३।४७.

आदरणीय 'मानव' जी,

१२।३ का पत्र मिला। पत्र पढ़ने पर ऐसा लगा जैसे बहुत छोटा हो।

आप 'आप' और 'तुम' का इतना विचार रखते हैं! मेरे और आपके सम्बन्ध में 'आप' और 'तुम' की बात उठती ही नहीं; फिर उसके लिये सोचना ही क्या?

'बा' शब्द गुजराती का ही है। जब बच्चे अपनी माँ को स्नेहमय ढंग से पुकारते हैं तो 'बा' कहते हैं। मेरे मस्तिष्क में 'माँ' उतने स्नेह का वाहक नहीं जितना 'बा' है। बात यह है कि घर पर माँ को हम जीजी या बा ही कहते हैं। अतः उसी के प्रति मन का झुकाव हो गया है।

मेरा मन कुछ कुछ आलोचना की ओर झुक रहा है। अपने आप ही मन में प्रसाद के 'आँसू' और महादेवी की 'नीरजा' पर कुछ लिखने की बात जगी है। कुछ ऐसा लगता है मन का यह झुकाव मुझपर आपके स्नेह का ही प्रभाव है।

सश्रद्धा
शिवचन्द्र नागर

२३

३०, ए. बेली रोड,
इलाहाबाद
१७। ३। ४७

आदरणीय 'मानव' जी

कल ज्वर आ गया था। खाना भी नहीं खाया। कभी-कभी हाथ काँप उठता है।

हाँ, महादेवी जी की उस दिन की बात पर मन में बहुत से प्रश्न उठते हैं। पर कोई नहीं कह सकता इस सब का रहस्य है क्या ?

मैंने पिछले एक पत्र में आपसे आप का जन्म-दिवस पूछा था। पर आपने लिखा नहीं। क्या आपके लिये भी हमें इधर-उधर खोज करनी पड़ेगी ? हम तो किसी ऐसे व्यक्ति को जानते भी नहीं जिससे आशा रखें कि वह आपको इतना अधिक जानता है।

'अवसाद' की आलोचना में एक बात आलोचक ने बहुत अच्छी कही है, 'सच पूछिये तो इन गीतों में चुनाव करने की ज्यादा गुंजायश

नहीं।' मेरे मन में भी यह बात कई बार उठी है कि 'अवसाद' के गीतों में यह नहीं बता सकते कि कौन सा गीत अच्छा है कौन सा नहीं।

सश्रद्धा
शिवचन्द्र नागर

२४

३०. ए. बेली रोड
इलाहाबाद
२४।३।४७

आदरणीय 'मानव' जी,

ज्वर तो नहीं है, पर मन बहुत उदास है। सुबह से पढ़ते-पढ़ते मस्तिष्क बिल्कुल थक गया है। अब पत्र लिख रहा हूँ और इसमें इतना ही आनन्द का अनुभव कर रहा हूँ जैसे थके हारे मुसाफिर को कुछ आराम मिल गया हो।

उस दिन के आपके प्रश्न बहुत ही स्वाभाविक थे। उनमें से कुछ मेरे मन में भी उठे थे, पर उनका निराकरण मन ने स्वयं कर लिया। यह बात मैं मानता हूँ कि बहुत सी बातें तर्क से सिद्ध की जा सकती हैं, पर मन को संतोष नहीं होता। ऐसी ही बात महादेवी जी के सम्बन्ध में भी है।

मेरा आना बहुत कठिन है। मैं यह चाहता हूँ कि मुझे यहाँ कुछ काम मिल जाये। यदि मुझे ४०० रु० का काम मिल जाय तो मैं उसे १५ जून तक समाप्त कर दूँ। फिर एक महिना मुझे विश्राम लेना है। इस जीवन में सुख नहीं। यहाँ आप आकर रहते तो दिन हलके होकर कट जाते। आप का काम भी होता रहता। यहाँ गर्मी तो बहुत पड़ती है, पर मैं जानता हूँ आप उसे सह लेंगे।

सश्रद्धा
शिवचन्द्र नागर

२५

३०, ए. बेली रोड
७ । ४ । ४७

आदरणीय 'मानव' जी,

पत्र तो तीन दिन पहले मिल गया था, उत्तर में कुछ विलम्ब हो गया।

कल्पना के जीवन से वास्तविक जीवन बिल्कुल भिन्न है। मन का व्यक्ति, मन की एक मीठी कल्पना है। कल्पना की उन सभी रेखाओं से पूर्ण, व्यक्ति मिलना कठिन ही है। खोजने पर पाया जा सकता है, पर वह अपनाया जा सके, ऐसे भाग्यवान व्यक्ति एक दो ही होंगे, कदाचित् एक भी नहीं। अधिकतर ऐसा देखा गया है कि जब किसी को अपने मन का व्यक्ति नहीं मिलता, तो उसकी भावना का, कल्पना का स्तर क्रमशः नीचे को उतरता रहता है और फिर जो भी व्यक्ति उसके स्तर पर आ गया, उसी को मन दे बैठता है। किन्तु महादेवी जी के साथ यह बात नहीं हुई, उनका स्तर जहाँ था, वहीं रहा और उस स्तर का उन्हें कोई व्यक्ति नहीं मिला। उन्होंने अपनी खोज बन्द कर दी, वे विरक्त हो गईं।

पंत में भावों की अतल गहराई तो नहीं, किन्तु कोमलता अवश्य है, पंत land-scape बनाने वाले चित्रकार की तरह हैं, पर उनमें मानव की अन्तर्निहित अनुभूतियों की रेखायें नहीं मिलतीं। यदि मिलती हैं तो बहुत कम।

सचमुच, मन-मन में बस जाने वाला कवि इस युग में पैदा नहीं हुआ, इस युग की सबसे बड़ी ट्रैजेडी यही रही है कि पाठक और लेखक के स्तर में एक बड़ा भारी gap रहा है। वही कवि आने वाले युग में मन-मन का कवि होगा जो ऐसी वस्तु साहित्य को देगा कि यह gap विलीन हो जाये। इसके लिये दो ही बात हैं या तो लेखक को पाठक के पास आना होगा और या पाठक को लेखक के पास।

अपना प्रेस होना तो बहुत ही आवश्यक है और जल्दी ही होना चाहिए। अपना एक प्रेस हो, अपना एक पत्र हो, मैंने तो यही स्वप्न देखा है। यही सोचता हूँ कि यदि दो व्यक्ति एक सा ही स्वप्न लेकर चले हैं तो वे मिल कर क्या नहीं कर सकते। समस्या सबसे बड़ी Capital की है। मैं नौकरी नहीं करना चाहता, पर इसके लिये अपना अध्ययन समाप्त करने पर कुछ वर्ष नौकरी करनी ही पड़ेगी।

प्रयाग आप आइयेगा अवश्य। यदि आप बम्बई गये तो कब तक जाने का विचार है?

सश्रद्धा

शिवचन्द्र नागर

२६

३०, ए, बेली रोड, प्रयाग

आदरणीय 'मानव' जी, १६।४।४७

आपकी बहुत प्रतीक्षा रही पर आप आये नहीं।

अपने पहले पत्र में आप ने कुछ बातों का बड़ा सुन्दर विश्लेषण किया था। सचमुच भाव की स्थिति पर रोक नहीं। पर यदि किसी व्यक्ति को दूसरी ओर से भाव का Responsive आधार नहीं मिला, तो भाव की स्थिति भी ठहर नहीं सकती। जीवन के चारों ओर एक नहीं, अनेक व्यक्ति आते हैं। हो सकता है उनमें से कुछ किसी रूप में जीवन को स्पर्श कर जाएँ, पर ऐसा व्यक्ति एक ही होता है जो जीवन में प्रवेश कर पाता है। प्रेम में शरीर आता ही नहीं। और जहाँ वासना है, वहाँ प्रेम नहीं। शारीरिक सम्बन्ध तो एक व्यवहार मात्र है। मेरी तो इस सम्बन्ध में इतनी extreme धारणा है कि शारीरिक सम्बन्ध में हम बिल्कुल यन्त्रवत् रह सकते हैं। हो सकता है हमारा किसी से वर्षों शारीरिक संबंध रहे, किन्तु हृदय पर उस व्यक्ति की एक भी रेखा न खिंचे। शारीरिक सम्बन्ध में अभाव की पूर्ति हो सकती है, पर प्रेम-सम्बन्ध में नहीं। प्रेम में प्राण प्राण का, भाव भाव का, हृदय हृदय का, जीवन जीवन का एक होना है, शरीर

शरीर का नहीं। यदि गहराई से देखें तो प्रेम में विरह जैसी कोई वस्तु है ही नहीं। फिर आघात कैसा ? विरह में Physical absence की भावना निहित है। प्रेम में जिस व्यक्ति को हमने कभी अँगुली तक भी नहीं छुई; जिसकी आँखों में अपनी आँखें डालकर भी नहीं देखा, उसके लिए हम जीवन भर आकुल रह सकते हैं। केवल बात इतनी है कि प्रेम में दो व्यक्ति भाव की स्थिति के समतल पर सहर्ष विचरण करते हैं। भाव आत्मा का गुण है, यही कारण है कि प्रेम Sublime है।

व्यक्ति समझता सब कुछ है, पर कार्य में उस बात को ही अभिव्यक्ति मिलती है जो जीवन पर गहरा प्रभाव डाल गई हो। महादेवी जी भी समझती सब कुछ हैं; किन्तु उनके मन का लौकिकता की ओर झुकाव नहीं।

अपने यहाँ के नवीन समाचार लिखियेगा।

सश्रद्धा
शिवचन्द्र नागर

२७

३०, ए. बेली रोड,
प्रयाग
२४।५ ४७

आदरणीय 'मानव' जी,

आज शकुन्तला जी की परीक्षा समाप्त थी, संध्या को उनसे मिलने गया था। कल वे चली जायेंगी।

वहाँ से फिर महादेवी जी के यहाँ गया। परसों भी उनके यहाँ गया था। दोनों दिन उनके यहाँ भीड़ ही थी। भीड़ में कुछ बातचीत हो नहीं पातीं। वे भी या तो शांत रहती हैं या चलती-फिरती बातें होती रहती हैं। आज एक बात हुई। हम कई व्यक्ति बैठे थे कि एक लड़का अन्दर

आया। महादेवी जी से बोला "महादेवी जी कहाँ हैं?" सब चुप रहे। महादेवी जी बोलीं हँस कर, "क्यों भाई क्या काम है! मैं ही हूँ।" लड़का जैसे बड़ी झुँझलाहट में हो, इस प्रकार बोला, साहब, आपकी एक कविता है हमारी किताब में उसका अर्थ समझ में नहीं आया। हमारे यहाँ के पंडित जी भी नहीं समझा सके।"

"भाई कौन सी क्लास में पढ़ते हो? क्या कविता है?" महादेवी जी बोलीं। सब को बड़ी हँसी आ रही थी।

"मैं नवीं क्लास में हूँ। परसों को हमारा इम्तहान है। आपकी कविता 'टूट गया वह निर्मम दर्पण' है। कुछ समझ में हीं नहीं आता," लड़के ने कहा। लड़के को उन्होंने कल बुलाया है। बाद में वे संकलन करने वालों पर विचार करती रहीं। बोलीं, "ये लोग ठीक चीज छाँटना नहीं जानते। नवीं क्लास के लिये उन्होंने क्या कविता रखी है जिसमें घोर अद्वैतवाद है। पहले तो मैंने बच्चों के लिये कुछ लिखा ही नहीं, यदि है भी तो कुछ और रखना चाहिये था।" अब तक इस कविता का अर्थ मैं भी उलटा ही लगाया करता था। आज स्पष्ट हुआ, "कि जैसे दर्पण टूट जाने पर वस्तु और उसका प्रतिबिंब दो वस्तु नहीं रहते ऐसे ही द्वैत की माया का भ्रम समाप्त हो गया।"

उनकी आँख का आपरेशन होगा। आजकल वैसे देखने में महादेवी जी पहले से स्वस्थ हैं। वे कलकत्ते जाना चाहती हैं; पर वहाँ की स्थिति अभी ठीक नहीं। यदि वे कलकत्ते न जा सकीं तो आँख का आपरेशन करायेंगी। आठ दस मई तक तो यहीं रहेंगी।

साहित्यकार संसद् की जमीन खरीद ली गई है। building की मरम्मत भी शुरू हो गई है। अब महादेवी जी उसके चारों ओर एक सुन्दर सुव्यवस्थित बाग की आयोजन में लगी हुई हैं। डिजाइन के लिये वे विभिन्न पुस्तकें (Books on architectures) देखती हैं। वे साहित्यकार संसद् का भवन कुछ ऐसा कलापूर्ण चाहती हैं जो अद्वितीय हो। वहाँ कुयें में सिंचाई के लिये सब से पहले

१½ Horse power का मोटर लगवा रही हैं। कल जब मैं बैठा था तो इंजीनियर का १७०० रु० का Estimate आया था। प्रान्तीय गवर्नमेंट ने ५००० रु० की सहायता दी है। उसके बाद भी कोई संसद् की मीटिंग नहीं हुई, इसलिए अभी सदस्यता का निर्णय भी नहीं हो सका। डा० ब्रजमोहन गुप्त की एक कविता-पुस्तक 'प्रकाश की पुकार' संसद् से निकल रही है। डा० ब्रजमोहन गुप्त के मुख से ही मैंने उनकी कविताओं के कुछ अंश सुने। मुझे तो ऐसा लगा कि उन कविताओं में विशेष कुछ नहीं। बाकी निकलने पर पता चलेगा।

धीरेन्द्र जी को पुस्तकें दे आया था। वे तो आपको बहुत अच्छी तरह जानते हैं।

मैंने महादेवी जी से "मीरा जयन्ती" की बात Suggest की थी। उन्हें विचार बहुत ही पसन्द आया। सचमुच यह बड़े दुःख की बात है कि हम मीरा जयन्ती नहीं मानते।

पत्र आपका कल रात ही मिल गया था। यह अनुवाद की बात अकस्मात् ही आयी थी। इससे पहले मुझे यह भी पता नहीं था कि मैं गुजराती का अनुवाद कर भी सकता हूँ। यह तो मेरा भी विश्वास है कि यह किसी बड़े विधान की पूर्ति के लिए ही है। अगले वर्ष कदाचित् मेरी अपनी कहानियों का संग्रह निकले। पर अभी उपन्यास का समय नहीं आया।

प्रेम का क्षेत्र सीमा रहित है। अनुभव के साथ एक के बाद दूसरे नवीन पटल खुलते जाते हैं। पर कभी भी उनका अन्त नहीं होता। प्रेम के सम्बन्ध में किसी अवस्था में कोई भी यह नहीं कह सकता कि मैंने सब कुछ अनुभव कर लिया। अनुभव के साथ ही विचार बदलते रहते हैं और विचारों के साथ जीवन।

प्रेम में प्रतिदान की अपेक्षा नहीं; किन्तु एक दीपक बिना स्नेह कब तक जलेगा, यह बात मेरी समझ में नहीं आती। जिस व्यक्ति को

प्रेम में प्रतिदान नहीं मिला, उसका प्रेम मर जायगा। बहुत सम्भव है एक दिन वह किसी दूसरे व्यक्ति को प्रेम करने लगे। कुछ भी हो मनुष्य यह चाहता है कि कोई उसे प्रेम करे। यदि उसके अनुकूल कोई ऐसा व्यक्ति उसे मिल गया तो फिर उसके जीवन में अपार शान्ति है, सुख है। जिस व्यक्ति को प्रेम का प्रतिदान नहीं मिलता, उसकी दो अवस्थाएँ अवश्यम्भावी हैं—या तो उस व्यक्ति के प्रति उसका प्रेम एक दिन मर जायगा और यदि प्रेम की इतनी अनन्यता है कि उसमें तनिक भी कमी नहीं होती तो फिर वह व्यक्ति तिल-तिल घुल-घुल कर मर जायेगा। ऐसे में, उसे मृत्यु में ही अपार शान्ति और सुख है। आपकी पुस्तक निराधार में 'महामाया' इसका उदाहरण है। यदि वह अपने को परिस्थितियों से Adjust कर लेती तो उसका प्रेम मर जाता, पर वह नहीं कर सकी और इसका मूल्य उसे मृत्यु में देना पड़ा। प्रेम का प्रतिदान न मिलने पर हताश प्रेमी की ये ही दो अवस्थाएँ हैं। पर बात यह है कि जो अपने को परिस्थितियों के साथ Adjust कर ले, वह आदर्श प्रेमी नहीं और न उसका प्रेम प्रेम है। वह तो अवसरवादी है। अपने प्राण देकर भी प्रेम की अनन्यता यदि रह गई, तो वह हताश व्यक्ति भी प्रेमी है और उसका विफल प्रेम भी प्रेम है। 'महामाया' ऐसी ही आदर्श प्रेमिका है। कभी-कभी मन में ऐसी भावना उठती है कि विश्व में ऐसे आदर्श प्रेमियों की पूजा होनी चाहिये। पर उन्हें कौन जानता है? कितने बेचारे चुप-चाप एक भी 'उफ' 'आह' किये बिना मर जाते हैं।

शरीर पर मन का अधिकार है, पर मन पर मैं शरीर का अधिकार नहीं मानता। यही कारण है कि मैं मानता हूँ, मन के साथ शरीर जाता है, पर शरीर के साथ मन नहीं। तर्क से यह बात ठीक है। पर यह बात मैं अनुमान के आधार पर कह रहा हूँ। जिस व्यक्ति से मनुष्य का लौकिक सम्बन्ध रहता है, उसकी स्मृति प्रायः मन को उतना आकुल नहीं कर पाती जितनी प्राण-प्राण को एकरस कर देने वाली प्रेम-भावना। लौकिक संबंधों

की स्थूलता से मन-मन, बुद्धि-बुद्धि और प्राण-प्राण को बाँध देने वाली प्रेम की सूक्ष्मता अधिक स्थाई और अधिक व्यापक होती है। किन्तु जिसे हम प्रेम करते हैं, मन करता है उसकी बातों का सदैव चिन्तन करते रहें। अपने आप ही कुछ पल प्रतिदिन ही ऐसे आते हैं जिनमें हम अपने प्राणों में एक पीड़ा का, वेदना का, कसक का अनुभव करते हैं। अपने प्रेमी का ऐसा चिन्तन प्रतिदिन की पुरानी चीज है, पर फिर भी उसमें चिर नवीनता का आभास होता है।

प्रेम की पहली सीढ़ी वासना ही है, पर वासना पहली सीढ़ी ही है। ज्यों-ज्यों सम्बन्धों में गहराई और परिपक्वता आई कि प्रेम सम्बन्ध की एक वह स्थिति पहुँच जायगी कि उस विन्दु पर यदि वासना प्रबल हो गई तो प्रेम मर जायगा और प्रेम प्रबल हो गया तो वासना मर जायगी।

'विरह' का प्रचलित अर्थ यही है कि किसी व्यक्ति के शरीर की साकारता का सामने न होना और प्रेम में शरीर नहीं आता; अत: शरीर की अनुपस्थिति (विरह) जैसी कोई वस्तु प्रेम में नहीं आती अर्थात् प्रेम में विरह नहीं होता। पर यदि विरह का अर्थ दो विभिन्न अस्तित्वों की पृथकता से है तो आपकी बात ठीक है। 'मिलन में भी विरह है। प्रेमास्पद के पास होने पर भी एक प्रकार की आकुलता का अनुभव भीतर ही भीतर होता है।' मानता हूँ। पर मेरी परिभाषा के अनुसार यह आकुलता विरह की नहीं। यह आकुलता तो दो विभिन्न अस्तित्वों के ज्ञान से पैदा होती है। प्रेमी यह चाहता है कि मैं प्रेमी को अपने में समा लूँ और हम दोनों का भिन्न अस्तित्व न रहे।

सश्रद्धा
शिवचन्द्र नागर।

३०-ए, बेली रोड,
प्रयाग।
३।५।४७

आदरणीय 'मानव' जी,

२६।४। का पत्र १।५ के मध्याह्न में मिला। कम से कम मुझे आपकी कोई भी बात बुरी नहीं लगती। मेरे लिए संसार में ऐसे दो ही व्यक्ति हैं जिनकी बात का बुरा मैं नहीं मानता। हो सकता है मेरे पत्र की किसी पंक्ति में इस ध्वनि का आभास हुआ हो, पर अनुभूति और कल्पना वाली बात पर मन में कोई ऐसा विकार उत्पन्न नहीं हुआ। मेरे शब्दों का प्रयोग अभी बिल्कुल exact नहीं होता।

माना प्रेम मणि है—स्वयं प्रकाश, पर इस मणि में प्रकाश आया कहाँ से ? यह प्रकाश मैं समझता हूँ स्वयं भू नहीं। प्रेम में दो पक्षों का होना नितान्त आवश्यक है और यह प्रकाश उन पक्षों के पारस्परिक सम्बन्धों से जनित प्रकाश है। अब प्रेम को मणि कहा जाय या दीपक ? मैं तो कहूँगा प्रेम है दीपक ही, पर अक्षय स्नेह से युक्त। यदि एक बार जल गया तो फिर नहीं बुझता, पर मणि में प्रकाश जगाने की आवश्यकता नहीं, उसका प्रकाश स्वयं-भू है, अमर है। प्रेम अक्षय है, अमर है, पर स्वयं-भू नहीं।

साधारण मनुष्यों के साथ प्रतिदान न मिलने पर प्रेम का मुड़ जाना बहुत स्वाभाविक है और प्रेम का मर जाना भी। मैं तो ऐसे प्रेम को व्यवसाय-वृत्ति ही समझता हूँ; क्योंकि ऐसा प्रेम तो बाजार के क्रय-विक्रय के सिद्धान्त पर आधारित हो, ऐसा लगता है। यदि काव्यमय भाषा में कहूँ तो ऐसी भावना तो खद्योत है, और प्रेम है वास्तव में ध्रुव-तारा।

'महामाया, की मृत्यु को भी मैं तो सराहनीय समझता हूँ। वह

एक वास्तविक प्रेमिका की मौत मरी। उसने घुल-घुल कर अपने प्राण दिये। यदि उसने आत्म-हत्या कर ली होती, तो मैं समझता कि वह कमजोर थी। क्या आप उस पर 'हठ' का आरोप लगा कर यह कहना चाहते हैं कि परिस्थितियों के अनुसार उसे अपनी भावना बदल देनी चाहिये थी! आप उसकी अविचल प्रेम भावना को 'हठ' का नाम क्यों दे रहे हैं? प्रेमी प्रेम के बदले प्रेम चाहता है और कुछ नहीं।

यदि कुछ क्षणों या मिनटों के लिये मन के खो जाने को आप मन का चला जाना कहते हैं तो इस प्रकार तो प्रतिदिन ही मन खोता होगा; पर इस प्रकार की क्षणिक आत्म-विस्मृति को मन का खोना नहीं कहा जा सकता। ऐसे शारीरिक सम्बन्धों से जिस व्यक्ति को हम प्रेम करते हैं उसके प्रति प्रेम भावना में कमी नहीं आनी चाहिये। बस यही प्रेम की पूर्णता है। यदि किसी शारीरिक सम्बन्ध के परिणाम स्वरूप अपने प्रियतम के प्रति प्रेम-भावना में कमी आ गई तो वह शरीर के साथ मन का जाना हुआ। 'शरीर के साथ मन भी कुछ न कुछ जाता ही है', आपकी यह बात मैं पूर्ण रूप से मानने को तैयार नहीं।

जीवन तो एक महान् आकाश है। यदि उस पर दृष्टि डालें तो अगणित तारिकायें टिमटिमाती हुई दिखाई देंगी। क्षण क्षण भर के लिये हम उन्हें देखते रहेंगे पर दृष्टि उनमें से किसी पर भी नहीं रुकेगी, दृष्टि स्वयं ही परम तेजस्विनी 'चन्द्रकला' पर जाकर स्थिर हो जायेगी। उसे देखती हो रहेगी। न तो दृष्टि उससे उबेगी ही और न मरेगी ही। जिसके जीवन में यह प्रेम की 'चन्द्रकला' उदित हो गई, बस उसी का जीवन सुधासिक्त हो गया। उसके जीवन की तिक्तता समाप्त हो गई। मैं तो कहूँगा उसने सब कुछ पा लिया।

व्यक्ति का आँखों के सामने से हटना विरह है। पर जिसे हम प्रेम करते हैं वह हमारी आँखों के सामने से हटता कब है? वह तो सदैव

ही आँखों में रहता है, इसलिये मैं कहता हूँ कि प्रेम में विरह नहीं। अब प्रश्न यह उठता है कि अपने प्रेमी के दूर हो जाने पर जिस विकलता का हम अनुभव करते हैं वह कैसी है? इस प्रश्न पर विचार करने से पहले यह आवश्यक हो जाता है कि आपके पहले पत्र में आयी हुई बात 'प्रेम क्या है?' इस पर मैं अपने मन की भावना लिखूँ।

एक अपना ऐसा साथी जो मन और बुद्धि के स्तर पर साथ साथ विचरण कर सके, जो इतना सुन्दर हो कि उसे देख कर अपनी सौंदर्य वृत्ति को पूर्णतया तृप्त होती हो, अपना प्रियतम है। यदि ऐसा साथी मिल गया तो उन व्यक्तियों के बीच जो भावनाओं की धारा बहती है वही प्रेम है।

मन और बुद्धि के स्तर पर विचरण करने के लिये यह आवश्यक है कि हम उससे बात कर सकें। उसे देख कर हमारा मन खिल उठता है; क्योंकि उसके दर्शनों से हमारी सौंदर्य वृत्ति की तृप्ति होती है। प्रेमी के बिछुड़ जाने पर हम इन दोनों प्रकार के सुखों से वंचित हो जाते हैं और हमारे जीवन की वेदना, आकुलता तथा पीड़ा इसी अभाव से उत्पन्न होती है। मैं इस दशा को विरह नहीं समझता। मैं पति पत्नी के अलग हो जाने को विरह समझता हूँ या जिन दो व्यक्तियों में शारीरिक सम्बन्ध है और उनके सम्बन्धों की दुनियाँ इसी पर आधारित है, उनके बिछुड़ जाने को मैं विरह समझता हूँ। पता नहीं क्यों मुझे ऐसा लगता है कि विरह में शारीरिक सम्बन्ध के अभाव जनित पीड़ा की भावना है, जब कि प्रेमी से वियुक्त हो जाने वाली पीड़ा इससे भिन्न है।

किसी भी क्षेत्र में बढ़ने के लिये संघर्ष करना पड़ता है, पर पता नहीं क्यों आप इधर दो वर्षों कुछ उदासीन से हैं। आज से चार वर्ष पूर्व जिस उत्साह के दर्शन मैंने आप में किये, वह आज नहीं। ऐसा क्यों? अभी तो आपको बहुत कुछ करना है।

आजकल मैं लीलावती मुंशी की पुस्तक 'रेखाचित्र' का अनुवाद कर रहा हूँ। पुस्तक के पढ़ने से पता लगता है, लीलावती एक तीव्र प्रतिभा सम्पन्न रमणी हैं। उनका अध्ययन और अनुभव दोनों ही बड़े विस्तृत और गहरे हैं। विशेषतया संस्कृत और अँग्रेजी का अध्ययन बड़ा विस्तृत है। वे एक भावना प्रधान साहित्य समालोचिका हैं। कभी बम्बई गये तो इनसे मिलेंगे। श्री के० एम० मुंशी के पास भी मैंने "किसका अपराध" की प्रति अभी तक नहीं भेजी। मुरादाबाद आने पर ही भेजूँगा।

महादेवी जी ने एक बार कहा था, पुस्तकें संकलन करने का काम भोजन परोसने का सा काम है। 'किसका अपराध' पढ़ कर आप लिखिये कि इस अनुवाद द्वारा परोसने का काम मैं ठीक कर सका हूँ या नहीं।

साल के इन अन्तिम दिनों में मैं गरीब हो गया हूँ। शायद कुछ रुपयों की जरूरत पड़े। मैं दूसरे पत्र में लिखूँगा—यदि आवश्यकता हुई।

२६

३०, ए. बेली रोड,
प्रयाग
६।५।४७

आदरणीय 'मानव'

'सब अपने को ही प्रेम करते हैं' यह बात नहीं। मनुष्य तभी तक अपने से प्रेम करता है जब तक किसी को प्रेम नहीं करता। प्रेम के बाद उसका अपना व्यक्तित्व अपना नहीं रह जाता। हमने देखा है, बहुत व्यक्ति विशेषतः नारियाँ, जिसको प्रेम करती हैं उसी मूर्ति की उपासना जीवन भर करती रहती हैं। हमने बहुतों को अपने प्रेमियों के लिए प्राण देते देखा है। यह बात नारियों में अधिक

पायी जाती है। इसका कारण यही है कि नारी में Submission की भावना है और पुरुष में Domination की।

दाम्पत्य प्रेम को मैं दो प्रेमियों का सा प्रेम नहीं मानता। दशरथ कैकेयी का उदाहरण दाम्पत्य प्रेम का है। दाम्पत्य जीवन में ऐसे झगड़े रोज होते हैं। मेरा तो ऐसा विश्वास है कि जब दो प्रेमियों में शारीरिक सम्बन्ध स्थापित हो गया, तो दो-चार साल बाद या कुछ और अधिक समय बाद पहला सम्बन्ध विकृत या समाप्त हो जाता है। मैंने अपनी यूनिवर्सिटी के कुछ लेक्चरर ऐसे देखे हैं कि जिनके विवाह प्रेम विवाह (Love marriages) थे; पर दो वर्ष बाद या चार वर्ष बाद (Divorce) हो गया या जीवन सुखी नहीं रहा।

इसका क्या कारण है, यह बात मेरी भी कुछ समझ में नहीं आयी। आप इस पर प्रकाश डालिये कि ऐसा क्यों होता है।

मेरे विचार से तो प्रेम की सफलता मन और बुद्धि के साहचर्य में ही है और आदर्श विवाह वह है जहाँ शरीर, मन और बुद्धि तीनों का संतुलित साहचर्य हो।

आपको शायद हँसी आये पर मेरी तो धारणा ऐसी है कि कलाकार की एक पत्नी होनी चाहिये और एक प्रेमिका। प्रेमिका पत्नी नहीं हो सकती और पत्नी प्रेमिका नहीं हो सकती। बर्नार्डशा ने भी शायद कहीं यही लिखा है। इस समस्या को "रामायणी" पिक्चर में बहुत सुन्दर ढंग से सामने रक्खा गया है। आपने "रामायणी" देखा होगा?

'महामाया' का जीवन बचाने के लिए क्या आप अभिनय भी नहीं कर सकते थे? आप ने 'महामाया' के हृदय की भावना को नीति के मापदंड से मापा, हृदय के मापदंड से नहीं।

यह बात तो मैंने मान ली कि 'किसी स्त्री के चाहे सारे सम्बन्ध पूर्ण हो गये हों, पर आप उसके साथ फिर भी कहीं न कहीं सम्बन्ध-सूत्र जोड़ सकते हैं।' सचमुच यह एक बहुत बड़ा गुण है, एक कला है।

पर इसकी पूर्णता इतने में ही नहीं, बल्कि इसमें है कि यदि आपके सब सम्बन्ध पूर्ण हो गये हैं, तब भी आप दूसरा जो जितना चाहे उसे दे सकें। कम से कम वह निराश न लौटे, और साथ ही आप के सिद्धान्तों की भी हत्या न हो। हो सकता है इसमें आप को अभिनय करना पड़े। इस कला की पूर्णता तो इसी में थी कि 'महामाया' को आप अपने मन के अनुकूल मोड़ देते। मुझे विश्वास है कि यदि आप चाहते तो उसे मोड़ सकते थे, पर उसकी भावना को एक छोटी सी बात समझ कर आप उस पर पैर रख कर आगे बढ़ गये। आपने उसे सहानुभूति के साथ समझने का प्रयत्न नहीं किया। शायद आपने यह नहीं सोचा कि यह बात प्राणों के बलिदान तक पहुँच जायेगी। और नहीं तो आप उसके साथ ऐसा व्यवहार कर सकते थे कि वह कुछ समय में स्वयं ही आप का मार्ग छोड़ देती। बार-बार मैं 'महामाया' पर सोचता हूँ। सच, उसकी करुण मृत्यु पर मुझे बहुत दुःख होता है।

यहाँ का यांत्रिक कार्य समाप्त करने पर ही मुरादाबाद आऊँगा। और तभी वहाँ आपके साथ रह कर निश्चित भाव से कुछ सृजन का कार्य हो सकेगा।

आपने प्रयाग से जाने पर अब तक क्या क्या लिखा ?

सश्रद्धा

शिवचन्द्र नागर

३०

३०, ए. बेली रोड

प्रयाग,

१८। ५। ४७

आदरणीय 'मानव' जी,

रुपया १०। ५ को मिल गया था और आपका १३। ५ का पत्र कल संध्या समय मिला।

अपने इस पत्र में आपने प्रेम-विवाह के बाद सम्बन्ध विच्छेद के

मूल कारण की विवेचना की है। यह विवेचना मुझे सत्य, सूक्ष्म तथा अनुभवपूर्ण लगी। प्रेम के क्षेत्र का आपने खूब अवगाहन किया है। मनोवैज्ञानिक अध्ययन आपका मुझे तो अत्यन्त विस्तृत तथा सूक्ष्म लगता है इतने स्पष्ट और सुन्दर ढंग से कदाचित् ही कोई समझा सकता था।

आपकी एक बात मेरी समझ में नहीं आती। पहिले आपके इस पत्र की बातों का सार देता हूँ:

१. प्रेम में आप शारीरिकता नहीं मानते।

२. किसी दूसरे से शारीरिक सम्बन्ध रखने में आप मन का जाना या प्रेम की हत्या समझते हैं।

३. कलाकार को विवाह नहीं करना चाहिये, ऐसी आपकी धारणा है।

यदि तीनों बातों को कोई व्यक्ति मानता है तो फिर वह अपनी वासना की शान्ति कैसे करे? आखिर वासना भी तो मनुष्य के स्वभाव का एक गुण है?

दस तारीख को महादेवी जी से थोड़ी देर अकेले में बातचीत करने का अवसर मिला था। बात इस प्रकार हुई कि वे जैसे ही आकर बैठीं, उनकी सुनयना बिल्ली भी हमारे पास आकर बैठ गई। बिल्ली की कमर पर हाथ फेरती-फेरती बोलीं, "सुनयना दो तीन दिन से दुःखी है।" मैंने कहा, "क्यों?"

"अभी तीन चार दिन पहले की बात है कि एक दिन यह मेरे चारों तरफ म्याऊँ-म्याऊँ करती फिर रही थी। मैंने भक्तिन को बुलाकर पूछा। भक्तिन बोलीं, "यह बच्चे देगी।" मैं इसे अन्दर ले गई। यह मेरे पास बैठ गई और थोड़ी देर में एक बच्चा दे लिया और फिर दूसरा। थोड़ी देर बाद दोनों बच्चों को उठा कर मेरे कागजों के ढेर के पीछे छिपा आई। बारबार यह उनके पास जाती। इसे गर्मी में रहने की आदत नहीं है। ऐसी गर्मी में बच्चे भी कैसे रह पाते!

परिणाम यह हुआ एक बच्चा मर गया। सुबह को दूसरे बच्चे को कहीं उठा कर ले गई, फिर उसको या तो कोई उठा कर ले गया या यह भूल गई। ऐसी बिल्ली है यह। ऐसी बुद्धू माँ होगी तो उसके बच्चे मर ही जायँगे। बिल्ली पर हाथ फेरती हुई बोलीं, बुद्धू कहीं की! अपने बच्चे की भी खबर नहीं रखती। इसे ममता-मोह कुछ भी नहीं रहा।" इस पर मैंने हँस कर कहा, "यह भी आप की तरह विरक्त हो गई है।"

"नहीं भाई, मुझे तो सब लोगों का बड़ा मोह है।"

मैंने कहा, "नहीं, मैं तो यह सोचता हूँ कि आपके चारों ओर इतने व्यक्ति हैं और सब से आप के बहुत अच्छे सम्बन्ध हैं, पर मैं समझता हूँ कि यदि इनमें से कोई आपको छोड़ कर चला जाय तो आपको पीड़ा न होगी।"

"नहीं, यह बात नहीं। मुझे तो दूर रहने पर भी यदि कुछ सुन लेती हूँ कि कोई अपना परिचित कष्ट में है तो बड़ी पीड़ाहोती है। अभी पता लगा कि "हिमवत" का लेखक बीमार है, केवल मैंने उसकी पुस्तक ही पढ़ी है, पर फिर भी पता नहीं मन अन्दर ही अन्दर क्यों दुःखी होने लगा। यह भी पता लगा है कि उसकी आर्थिक दशा अच्छी नहीं। अब यही सोच रही हूँ कि संसद् से कुछ रुपया भेज दूँ।" इस पर मुझे हँसी आये बिना न रही और मैंने कहा, "यह तो एक का आपको पता लग गया। पता नहीं कितने ऐसे बेचारे चुपचाप कष्ट में मर जाते हैं।"

"हाँ, यह तो बात है ही।"

मैंने कहा, "हमारे मन में पता नहीं यह कैसी भावना है कि एक अपरिचित व्यक्ति को कष्ट में देख कर भी हमारा मन दुःखी हो जाता है। शायद हमारा साधारणीकरण हो जाता है उसकी कथा से।"

"ऐसे साधारणीकरण पता नहीं कब-कब और कहाँ-कहाँ अनजाने में होते रहते हैं।"

"अपरिचित व्यक्ति ही नहीं किसी उपन्यास के काल्पनिक चरित्र के साथ साधारणीकरण होने पर भी इतना ही दुःख होता है। हार्डी के टेस उपन्यास में टेस की मृत्यु पर इतना दुःख होता है कि कदाचित् किसी सम्बन्धी की मृत्यु पर भी उतना दुःख न हो।"

"हाँ, हार्डी के सभी उपन्यास ऐसे हैं। मेरा पहले से ही वह प्रिय उपन्यासकार रहा है। उसके उपन्यास मुझे अच्छे लगते हैं।"

फिर कुछ देर चुप रहे। इसके बाद उन्होंने अपनी जीवन-गाथा छेड़ दी और इसी प्रसंग में बोलीं, "हमारे नाना पक्के वैष्णव थे, अपनी माँ से हमें अहिंसा, करुणा, भक्ति आदि तत्व मिले, हमारे पिता जी का बुद्धि-पक्ष अधिक प्रबल था वे Throughout First Class रहे, गणित की कठिन से कठिन Problem अँगुलियों पर लगा देते हैं।"

"तो उन्होंने एम० ए० भी गणित में किया था?"

"नहीं, इसी यूनिवर्सिटी से अँग्रेजी में। उनका बुद्धि-पक्ष मुझे भी मिला, यही कारण है कहीं भी, गद्य हो या पद्य, चिन्तन मैं नहीं छोड़ पाती। वैसे वे न तो आस्तिक हैं और न नास्तिक। बुद्धि-पक्ष प्रबल होने से नास्तिकता की ओर ही उनका अधिक झुकाव है।"

"वे अब भी हैं?"

"हाँ, हैं तो, हैदराबाद में रहते हैं।" उन्होंने हँस कर कहा।

"मुझे पता न था। आपके नाना जबलपुर में रहते थे। कदाचित् दक्षिण में रहने के कारण ही उन पर वैष्णव धर्म का प्रभाव पड़ा।"

"हाँ, हो सकता है। मुझे तो कभी-कभी यही दुःख होता है कि मेरा जन्म ऐसी (कायस्थ) जाति में हुआ जो अधिकतर मांसाहारी है, इसी से अपनी जाति वालों से मेरा खान-पान का अधिक सम्बन्ध नहीं, जहाँ मेरा विवाह हुआ था वे भी मांसाहारी हैं। उन्हें तो शिकार का भी शौक है।"

"पर यह तो उनका एक शौक रहा। इससे यह नहीं कहा जा

सकता कि वे कठोर हैं। उन्होंने दूसरा विवाह नहीं किया। हो सकता है उनके हृदय में आपके लिये कोई कोमल कोना रहा हो।"

"हो सकता है। पर मुझे गृहस्थ जीवन नहीं बिताना था। जहाँ तक कठोरता या क्रूरता का प्रश्न है, हृदय में अलग-अलग वृत्त नहीं होते कि पशुओं के लिये अलग क्रूरता और मनुष्यों के लिये अलग। जो पशु को मार सकता है वह व्यक्ति को भी मार सकता है। पहले छोटे जीवों की हत्या से मनुष्य अहिंसा करना सीखता है। हमने देखा है कसाइयों के बच्चे चूहे या और दूसरे जानवरों की पूँछ में रस्सी बाँध कर खींचे फिरते हैं और उन्हें बुरी तरह मारते हैं।

दूसरे बच्चे तितलियों को दियासलाई के बक्से में भर कर आग लगा देते हैं। क्रूरता का पहला पाठ यहीं से सीखा जाता है।"

"यह बात तो ठीक है। वैसे मनुष्य के मन में अपना एक साथी चुनने की बात तो स्वाभाविक होती है।"

"भाई, कैसा साथी?" जरा हँस कर कहा।

"एक ऐसा साथी जिसके साथ शरीर मन और बुद्धि का साहचर्य हो सके।"

"बात शरीर के साहचर्य की है। मेरे मन या मस्तिष्क के कोने में कभी भी किसी ऐसे व्यक्ति-साथी की छाया नहीं आयी। शरीर का साहचर्य वासना है। यदि केवल वासना ही है तो वह पशु है। पर मनुष्य की वासना पर मन का नियन्त्रण रहता है और यदि मन व्यक्ति से ऊँची साधना-भूमि पर स्थिति है तो फिर व्यक्ति पशु के स्तर पर क्यों उतरने लगा?"

"यह तो ठीक है कि मनुष्य की वासना पर मन का नियन्त्रण है, पर वासना, भी तो मनुष्य का स्वभाव है, हर समय वासना पर मन का नियन्त्रण नहीं रहता।"

"यदि उस ऊँचे स्तर पर मन की स्थिरता की पूर्णता है तो कभी पाशविकता के स्तर पर उतरने की बात मन में नहीं आयेगी। मुझे

तो सबसे अधिक संतोष और शाँति इसी में है कि मैंने जो भी लिखा है उसमें धोखा नहीं।" हम ये बातें कर ही रहे थे कि पांडेय जी आ गये। सहसा गम्भीरता समाप्त हो गई और वैसी ही हलकी-हलकी घरेलू बातें हँस हँस कर वे करने लगीं। मैं चला आया।

मैंने देखा है कि प्रेम दो पूरक व्यक्तित्वों में होता है—उद्धत और चंचल लड़की शांत और गम्भीर व्यक्ति को प्रेम करती है और शांत तथा गम्भीर लड़की चंचल तथा उद्धत को। अच्छा ऐसा क्यों होता है?

सश्रद्धा

शिवचन्द्र नागर

३१

३० ए. बेली रोड

२६।५।४७

आदरणीय 'मानव' जी,

पत्र आपका आज प्रातःकाल मिल गया था।

महादेवी जी २२।५ को रामगढ़ चली गईं। चली गईं अचानक ही। २०।५ को मैं गया था। पता लगा था उनकी तबियत काफी खराब है। ठीक होने पर बाहर जायेंगी। २४ को मैं फिर गया पता लगा २२।५ को वे चली गईं। उनका पता रामगढ़, नैनीताल है। क्या आप कहीं बाहर चलने की सोच रहे हैं। तीन जगह हैं, हरिद्वार, मंसूरी और नैनीताल। इनमें से आप सुविधानुसार एक चुन लीजियेगा। एक सप्ताह भर आपके साथ यदि इनमें से कहीं मैं रहा, तो समझता हूँ मेरी सृजन-शक्ति तथा कल्पना सतेज हो जायगी। इस समय तो सब कुछ कुंठित सा पड़ा है। ऐसा शैथिल्य मैंने जीवन में कभी भी अनुभव नहीं किया था। देहली से आप बहुत जल्दी लौट आये।

'महामाया' के विषय में आपके मुँह से जो सुनना चाहता था, इस पत्र में आप अनायास ही उसे लिख गये। "महामाया तो दूसरी

पैदा नहीं हुई " इस वाक्य में मैं इतना अपनी ओर से और जोड़े दे रहा हूँ कि पैदा होने वाली भी नहीं।

आज आपने शरीर देने वाली बात को इतना महत्त्व देकर मन बहुत उदास कर दिया। मेरा भी विश्वास है कि 'जब धब्बा पड़ जाता है तो आँसुओं से भी नहीं धुल सकता।' पर वैवाहिक जीवन की स्वाभाविकता को आप क्यों नहीं मानते? शारीरिकता की ओर से आप में इतनी उदासीनता क्यों है? जो आदमी अपने सिद्धान्तों पर अटल है वही महान् है। मेरी तो महान् की इतनी ही व्याख्या है।

छोटे से पत्र में ही सब कुछ भर देने की आप में अद्भुत शक्ति है। कभी भी आपने बड़ा पत्र नहीं लिखा, पर फिर भी पढ़ कर असंतोष नहीं रहता।

सम्बन्धों के प्रति मेरा ऐसा दृष्टिकोण हो गया है कि हम अपने मन में एक सम्बन्ध भाई का, शिष्य का या बेटे का कुछ भी स्थापित करलें और अपने व्यवहार में जीवन भर उसी का निर्वाह करते रहें; पर दूसरे से कोई अपेक्षा न रक्खें। यदि अपेक्षा रखी गई और जितना सोचा था, उतना नहीं मिला, तो दुःख ही होता है, इसलिये अपेक्षा नहीं रखनी चाहिये, चाहे मिल जाये हमें बहुत कुछ। यदि हम ऐसी भावना रखेंगे तो मैं समझता हूँ इस अपेक्षारहित सम्बन्ध में कभी विकार पैदा नहीं हो सकता।

सश्रद्धा

शिवचन्द्र नागर

३२

३०, ए, बेली रोड

इलाहाबाद

२०। ७। ४७

आदरणीय 'मानव जी'

कल दिन भर की दौड़ धूप ने मन विक्षुब्ध और मस्तिष्क अशांत

चना दिया था। संध्या को ऐसा लगने लगा था जैसे इस दुर्बल शरीर की शिरायें टूटी जा रही हों। मुरादाबाद से यहाँ आने पर कितनी ही संध्यायें बीत चुकी हैं, पर सब ने प्रतिदिन उदासी के अतिरिक्त कुछ नहीं दिया।

अब मैं थोड़ा थोड़ा काम करने लगा हूँ। डेढ़ महीने के निष्क्रिय जीवन के बाद अब यहाँ ऐसा लगता है जैसे मैं एक घोर अन्धकार में से अगण्य बत्तियों से जाज्वल्यमान प्रकाश गृह में आ गया हूँ। कभी कभी एकान्त में बहुत देर तक रोने को मन करता है।

जिस कम्पार्टमेंट में मैं बैठा था, मेरे सामने वाली सीट के कोने में एक महिला बैठी थीं। प्रयाग स्टेशन पर हम सब लोग उतरे। वे भी उतरीं। उतरते समय उन्होंने केवल अपना वाद्य-यन्त्र उठा लिया था। अपने और दूसरे बहुमूल्य सामान की उन्हें पर्वाह तक भी नहीं थी। दूसरे विद्यार्थी उनका सामान नीचे उतार रहे थे और वे अपना वाद्य-यन्त्र हृदय से लगाये हुए खड़ी थीं। उन्हें इतना भी पता नहीं था कि कुछ और भी रह गया है या नहीं।

"सब आ गया?" एक परिचित विद्यार्थी ने पूछा।

"हाँ" उन्होंने उत्तर दिया।

'इसके दो ही क्षणों बाद......ने उनका छाता बढ़ाते हुए कहा "यह आपका है न?"

उन्होंने सकुचा कर उसे ले लिया। वह छाता उन्हीं का था।

मैं सोचता हूँ यह सब क्या था? वे कलाकार थीं और ऐसा लगता था कि जैसे उनकी चेतना अपनी कला तक ही सीमित हो। कला की साधना बड़ी ही कठोर तथा सुन्दर है। इसमें डूब जाने पर कलाकार के मन मस्तिष्क और प्राण बिल्कुल ऐसे भर से जाते हैं कि उसमें संसार की छोटी बातों को स्थान नहीं रहता। जीवन की भौतिक कामनायें दब सी जाती हैं। इसमें मुझे एक अज्ञात प्रेरणा मिली है। पर जब मैं अपने को टटोलता हूँ तो ऐसा लगता है कि अब मुझ में शक्ति नहीं

रही, अब स्वयं ही नहीं उठ सकता। बुझती हुई बत्ती को उकसाने वाली सींक जैसे किसी व्यक्ति की आवश्यकता होगी।

बरसात की अधिकतर संध्यायें मनमोहक होती हैं। कल की संध्या भी ऐसी ही थी। पूर्वाकाश मेघाच्छन्न था और प्रतीची में थे बादलों के गुलाबी टुकड़े। मैं महादेवी जी के यहाँ गया। उनके कमरे के द्वार पर पहुँच कर मैंने देखा कोई महोदय बैठे बात कर, रहे थे। मैं द्वार पर ठिठक गया और वहीं से हाथ जोड़ कर प्रणाम किया। तुरन्त महादेवी जी बोलीं, "आओ, भाई, इधर आ जाओ।" कमरे में अन्दर के दरवाजे के दोनों ओर दो सोफे थे जिनमें से एक पर महादेवी जी बैठीं थीं और दूसरे पर वे महोदय। मैं सामने वाले लम्बे सोफे के एक कोने पर बैठ गया।

मैं बैठा ही था कि तुरन्त महादेवी जी ने पूछ लिया, "कब आये भाई?"

"पन्द्रह तारीख को रात के दस बजे।"

"वहीं पुरानी जगह हो?"

"जी, हाँ।"

"यूनिवर्सिटी भी तो पन्द्रह को खुली।"

"नहीं, सोलह को खुली थी।"

"छुट्टियों में क्या किया?"

"कुछ थोड़ा अनुवाद किया और कुछ गीत लिखे।"

"भाई, तुमने तो बहुत काम किया!" कह कर वे हँस पड़ीं। इस पर वे महोदय बोले, "ठीक है जी, जो अच्छा लगा वह किया।"

"इसमें अच्छे लगने की बात नहीं, अनुवाद का काम तो मुझे अच्छा नहीं लगता, पर फिर भी करना पड़ा।"

"मानव जी कैसे हैं?" महादेवी जी बोल पड़ीं।

मैंने कहा, "ठीक हैं।" फिर क्षण भर चुप रहे।

"आप रामगढ़ से कब आयीं?" मैंने पूछा।

"दस जुलाई को।"

"अब आपकी आँखें कैसी हैं?"

"वैसी ही हैं जैसे पहले थीं।"

"पहाड़ पर कुछ अच्छा नहीं लगा?"

"मुझे तो बहुत अच्छा लगा नहीं।"

"अब आँखों के आपरेशन का क्या रहा?"

"यहाँ डाक्टर ने आपरेशन के लिए कहा तो था, पर जिन दो-तीन व्यक्तियों के आपरेशन उसने किये हैं वे कहते हैं कि घाव अच्छे नहीं हुए बल्कि और बढ़ गये।"

"तो अब आपने आपरेशन का इरादा छोड़ दिया?"

"नहीं, सीतापुर के एक डाक्टर को दिखाऊँगी।"

"हाँ, उन्हें आप जरूर दिखलाइयेगा। वह इस काम में बहुत होशियार हैं। मैं यह पता ले लूँ कि वे आजकल सीतापुर हैं या खैरनगर। फिर हम सब ठीक-ठाक कर देंगे। आप जल्दी ही चली जाइयेगा।" उन महाशय ने कहा।

"डाक्टर तो सैकड़ों इन्जेक्शन लगा डालते हैं। अब तो मेरे हाथ झनझनाने लगते हैं। हाथ से जो चीज पकड़ती हूँ, छूट कर गिर जाती है। इससे भय लगता है कि किसी दिन पैरैलैसिस का attack न हो जाये।" मैं चुप रहा। अपने आप ही ऐसा लगा जैसे किसी आशंका से दुःख हुआ हो। मैंने पूछा, "ऐसा कब से होने लगा है?" बोलीं, "अभी कुछ दिनों से। पहले भी मैं बीमार रहती थी, पर ऐसा लगता नहीं था। अब तो स्वयं मुझे भी ऐसा लगने लगता है कि अब मैं थक गई हूँ।" यह बात उन्होंने गंभीर होकर कही थी। इसे सुन कर मन अपने आप ही उदासी में डूब गया। इतने में ही वे सज्जन बोल उठे—

"मैं जैसा कहूँ आप वैसा कीजिये। वहाँ (साहित्य संसद् में) तो लगाइये ताला और यहाँ (महिला विद्यापीठ) का काम हम सम्भाल

लेंगे। अभी हम चौथे पाँचवें दिन आते थे, फिर दूसरे दिन आ जाया करेंगे। रहा आपका छटा period वह पांडे ले लिया करेगा। आप पहली अगस्त को काश्मीर चली जाइयेगा। यहाँ से देहली तक ट्रेन में और फिर वहाँ से हवाई जहाज में, और वहीं श्रीनगर से ऊपर मार्तंड वालों के यहाँ मैं सब ठीक इन्तज़ाम कर दूँगा। भले हैं। अब आप चली जाइयेगा।"

महादेवी जी 'हूँ हूँ' करती हुई गर्दन हिलाती रहीं। मुँह से कुछ नहीं बोलीं। मैं समझ गया था कि इसमें महादेवी जी की सम्मति नहीं, पर फिर भी इन महोदय की बात का वे विरोध नहीं कर सकीं। उनकी 'हूँ' 'हूँ' देख कर वह महोदय तुरन्त बोल उठे, "यह गर्दन हिला कर 'हूँ' 'हूँ' नहीं, अब आप चल दीजिये। ये सब काम तो होते ही रहते हैं। अब २१ होते हैं आपके चले जाने पर १६ हुआ करेंगे। संसार किसी की प्रतीक्षा नहीं करता।"

"मैं तो चाहती भी नहीं कि संसार मेरी प्रतीक्षा करे" महादेवी जी ने कहा।

"नहीं, बस अब आप चली जाइयेगा। तीन महीने वहाँ रहियेगा। नवम्बर में लौट आइयेगा। वहाँ आप रहेंगी, सब ठीक हो जायगा, आपका Digestion इत्यादि सब ठीक हो जायगा। पर वहाँ मूर्ति की तरह स्थापित न हो जाइयेगा, हाँ, कुछ घूमा कीजियेगा। जीवन से अधिक और कुछ नहीं और अभी आप हैं ह 'कितनी। हमारी लड़की की बराबर होंगी" उन महोदय ने कहा। महादेवी इस पर हलका-सा मुस्करा दीं।

"बस वहीं रहना और कविता लिखना" उन्होंने कहा। इस पर मैं मुस्कराया और महादेवी जी मेरी ओर देख कर हँस दीं। उस समय उनकी हँसी में कुछ ऐसी बात थी कि जैसे वे कह रही हों कि देखो ये क्या कह रहे हैं।"

"आप ये सब छोड़िये। आपको मोह किसका? आपका मैका

नहीं, ससुराल नहीं, लड़के लड़कों की शादी नहीं करनी" महादेवी जी हँसती रहीं। पर वे बोलते चले गये।

"ठीक ही कर रहा हूँ। मैं तो अब अपना सब काम लड़के पर छोड़ने लगा हूँ।"

इस बात पर गम्भीर होकर महादेवी जी बोलीं, "पर मेरे काम ऐसे नहीं हैं जो किसी पर छोड़े जा सकें।"

"काम सब होते रहेंगे। आप निश्चिन्त रहियेगा। जितने दिन आप यहाँ हैं वह क्रिया जरूर करती रहियेगा। हाँ, आँखों पर पानी डालना, आप भूल गईं?"

"नहीं, मुझे याद है।"

"फिर ठीक से समझ लीजियेगा।" इतना कह कर वह कुछ क्रिया समझाते रहे। इस बीच मुझे पता नहीं उन्होंने क्या कहा, क्या नहीं। मेरे मन में केवल एक बात घूम रही थी और वह यह कि आज महादेवी जी ने यह कहा था कि अब मुझे लगता है कि मैं थक गई हूँ। अब तक उन्हें घोर विश्वास था। पर आज उनमें यह अविश्वास की भावना कैसी थी? मनुष्य का विश्वास एक बार मृत्यु को भी लौटा सकता है; पर आज वह पराजित सी क्यों थीं? इस प्रश्न का इस समय भी मेरे पास कुछ उत्तर नहीं, पर विश्वास है कि वह भावना केवल एक mood थी। जीवन में कभी-कभी शिथिलता और पराजय के ऐसे क्षण आते हैं कि हम बच्चे भी जिन्हें उत्साह का पुतला होना चाहिये ऐसा अनुभव करने लगते हैं जैसे थक गये हैं। हमारी कमर टूट गई है।

मैं यही सोचता रहा। वे महोदय अपनी क्रिया समझा कर सोफे पर से उठ कर बोले "तीन महीने आप काश्मीर रह आइयेगा।" फिर उन्होंने एक पर्चा जेब से निकाला। उस पर कुछ लड़कियों के नाम थे, उनके admission के लिए उन्होंने कहा। फिर वे चले गये।

ये महोदय बड़े ही नाटकीय ढंग से बातें करते थे—अँगुली हिलाकर, आँखें

घुमा कर और ठीक परिस्थिति के अनुसार मुख-मुद्रा बना कर। इनकी उम्र ५५ साल के आस-पास होगी। एक खादी की टोपी, एक खादी की अचकन और खादी का चुस्त पायजामा पहने थे। आदमी मन के बहुत अच्छे प्रतीत हुए। चतुर और व्यवहार-कुशल बहुत अधिक। महादेवी जी पर इनका बेटी का सा अमित स्नेह है, पर साथ ही इस स्नेह में सम्मान भी मिला हुआ है। आप जानने के लिए उत्सुक होंगे कि वह व्यक्ति कौन था। ये श्रीयुत संगमलाल जी थे—प्रयाग महिला विद्यापीठ के संस्थापक।

श्रीयुत संगम लाल जी के चले जाने पर मैं सोफे पर आ बैठा। एक क्षण के उपरान्त मैंने बात छेड़ी।

"रामगढ़ में आपने और क्या किया?"

"कुछ भी नहीं।"

"अपने रंग और तूलिकाएँ तो आप ले गई होंगी?"

"जब मैं यहाँ से गई तो मैं बीमार थी। भक्तिन इत्यादि ने जो बाँध दिया वही साथ चला गया।"

"हाँ, मैं आप के जाने से दो दिन पहले आया था। उस समय पांडे जी डाक्टर को लिवाने गये थे। आपकी तबियत बहुत खराब थी। आप यहाँ अधिक दिनों तक रुकी रहीं। आपको पहले ही पहाड़ चला जाना चाहिये था। पंत जी तो फिर आये नहीं?"

"उन दिनों तो आये नहीं, पर आजकल यहीं हैं।"

"कहाँ ठहरे हुए हैं?"

"बच्चन जी के यहाँ।"

"यहाँ भी तो आते होंगे?"

"आते हैं।"

"मेरा उनसे मिलने का बड़ा मन है। अभी कितने दिनों तक और रहेंगे!"

"अभी तो वे नवम्बर तक यहीं रहेंगे।"

"साहित्यकार संसद में रहने को क्या कहते हैं?"

"कहते हैं कि मैं यहीं रहा करूँगा। गंगा जी के किनारे ठीक रहेगा।"

"ठीक है, निराला जी को और बुला लीजियेगा, तब बहुत अच्छा रहेगा।"

"निराला जी आ जायँ तो अच्छा ही है, पर न तो उन्हें समझाया जा सकता है और न बाँधा जा सकता।"

"आजकल निराला जी हैं कहाँ?"

"वहीं उन्नाव में हैं। सुना था रामायण का खड़ी बोली में अनुवाद कर रहे हैं।"

इसके बाद कुछ क्षणों तक हम चुप रहे। मैंने उनकी ओर देखा और बात बदलते हुए कहा, "मैं यहाँ से घर चार जून को चला गया था। जाने पर १२ जून को मैंने एक पत्र आपको लिखा था, मिला या नहीं?"

"वहाँ तो कोई पत्र नहीं पहुँचा।"

"मैं घर जाने से पहले एक दिन यहाँ आया था। नौकर से आपका पता पूछा था। उसने बताया था आपका नाम, रामगढ़, नैनीताल, बस।"

"पत्र तो पहुँचना चाहिये था, छोटी-सी बस्ती में तो लगभग मुझे सभी जानते हैं।"

"पर शायद रामगढ़ तो दो हैं लोअर रामगढ़ और अपर रामगढ़। हो सकता है इसी Confusion में खो गया हो। आप किस रामगढ़ में रहती हैं?"

"अपर रामगढ़ में!"

"यह कोठी तो शायद आपकी अपनी है?"

"हिमालय पर बनी हुई उस कोठी के आस-पास के वातावरण की

निर्मलता ने, वहाँ की वृक्षराजि और घाटियों के लुभाव ने, उतार-चढ़ाव की छटा ने और वृक्षों, पक्षियों, झरनों एवं समूचे वातावरण से मिलने वाली प्रेरणा ने मुझे कुछ ऐसा प्रभावित कर दिया है कि कभी वह कोठी मेरी अपनी मालूम होती है, और कभी मैं उस समस्त वातावरण की।"

"पते की गड़बड़ की वजह से ही पत्र नहीं मिल सका, आप से परिचित Post Enployees भी शायद बदल गये हों। थोड़ा-सा भी पता अधूरा रह गया हो, तो मुश्किल आ जाती है। मैंने के० एम० मुंशी को एक रजिस्ट्री भेजी थी। भला नई देहली में श्री के० एम० मुंशी को कौन नहीं जानता होगा, पर वह लौट आयी और उस पर लिखा था Address incomplete।" यह सुनकर जरा हँसती रहीं।

"वहाँ पहाड़ पर संध्या को घूमना तो बहुत अच्छा लगता होगा?"

"घूमना तो बहुत कम ही होता था। वहाँ का जीवन भी बड़ा अरक्षित-सा हो गया है। पहाड़ी की लड़कियाँ, जिन बेचारियों को, दिन भर घर से बाहर रह कर ही काम करना पड़ता है, घर से बाहर निकलना भी मुश्किल है। वहाँ एक सड़क बन रही है, जिसमें खान (पेशावरी) लोग काम करते हैं। ये लोग बड़ा ही अनाचार करते हैं। किसी पहाड़ी लड़की को अकेली पाते हैं, पकड़ कर ले जाते हैं। कहाँ ले जाते हैं, क्या करते हैं, कुछ पता नहीं। यह सब कुछ ऐसे ही होता है जैसे पानी में एक बड़ा भारी पत्थर डाल दिया, थोड़ी देर पानी हिला और फिर शान्त। थोड़ी देर तक शोर मचता है, फिर 'कुछ नहीं' 'कुछ नहीं' हो कर दब जाता है। उन लड़कियों की कोई खोज नहीं करता। अपने घर की लज्जा को ढकने के लिए बात दबा दी जाती है। एक दिन एक लड़की को पेड़ से टाँग गये। वह मर गई।"

"तब तो आपके दिन बड़े क्षोभ और अशान्ति में बीते होंगे?"

"बहुत ही कष्ट होता था। किदवई को लिखा, पन्त को लिखा। पहाड़ी मजदूर जो बेचारा दो रुपये रोज लेता है, उसे नहीं रखा

जाता, पेशावरी खान जो चार रुपये रोज लेता है, उसे रखा जाता है।"

"पहाड़ी लोग तो बड़े परिश्रमी होते हैं, उन्हें नहीं रखा जाता, यह तो बड़ा भारी अन्याय है" मैंने कहा। फिर क्षण भर चुप रहे। मैंने बात आगे बढ़ाई। मैं अभी रामनगर गया था, वहाँ भी ये लोग रहते हैं। पूछने पर पता लगा, ये लोग यहाँ गरीब पहाड़ियों को रुपया उधार देते हैं और High rate of interest चार्ज करते हैं। कुछ लोग मिट्टी-चूने का व्यापार करते हैं। ये लोग बड़े ही खूँख़ार होते हैं। मुझे तो कभी-कभी बड़ा ही आश्चर्य होता है कि फ्रॉंटियर में इस जाति को अब्दुल गफ्फार खाँ ने किस प्रकार अहिंसक बना दिया।"

"वे खुदाई खिदमतगार हैं और ये दूसरी पार्टी के हैं" क्षुब्ध स्वर से महादेवी जी ने कहा। सचमुच यह बहुत ही दुःख की बात थी। पहाड़ी जाति बहुत ही निर्धन है। यदि उन्हें काम देकर अच्छी मजदूरी देने की व्यवस्था की जाय, तो उन्हें कुछ सहायता ही पहुँच सकती है, पर बजाय इसके वहाँ ऐसे आदमियों को बुलाया जा रहा है जो उनकी निर्धनता का फायदा उठा कर उनके जीवन का रहा-सहा सुख भी लूटने पर उतारू हैं।

कुछ क्षणों तक हम ऐसे ही निस्तब्ध बैठे रहे। फिर मैंने अपनी जेब से आप का पत्र निकाला और महादेवी जी की ओर बढ़ाते हुए कहा, "यह मानव जी का पत्र है।" उन्होंने चुपचाप हाथ में ले लिया, वहीं उसे तुरन्त फाड़ भी डाला। उसे दोनों ओर से देख भी डाला। पर केवल ऐसा ही लगा कि जैसे Paragraphs ही गिने हों। एक क्षण कुछ सोचा और फिर मेरी ओर को बढ़ा दिया, "भाई, जरा सुनाओ तो क्या लिखा है।" मैंने उसे पढ़ कर सुना दिया। सुनने पर वे केवल इतना बोलीं, "अब मुझे रजिस्टर्ड पत्र ही लिखना पड़ेगा।" मैंने कहा, "सादे पत्र तो पहुँचते नहीं, बीच में ही गायब हो जाते हैं।"

आपके पत्र छोटे होते हैं पर सब कुछ समेटे होते हैं। ऐसा ही पत्र यह भी था। आपके सुन्दर पत्रों में से इसे भी एक पत्र कहा जा सकता है। वह पत्र उन्होंने मुझसे पढ़वा लिया था, इसे मैं अपना सौभाग्य ही समझता हूँ। ऐसे पत्र जीवन में कभी-कभी ही पढ़ने को मिलते हैं — कदाचित कभी भी नहीं। आज मुझे ऐसा लगा कि महादेवी जी मुझ में और आप में कोई अन्तर नहीं समझतीं और न यही समझती हैं कि मुझमें और आपमें कोई दुराव का सम्बन्ध है भी—यदि है भी तो किस सीमा तक।

"तुम्हारा परीक्षा फल क्या रहा ?" तुरन्त महादेवी जी ने पूछा। उनके बोलने के ढंग से ऐसा लग रहा था, जैसे यह बात वह पूछना भूल गई हों और अब पूछ रही हों।

"Second Class रही" मैंने मुस्करा कर उत्तर दिया।

"अब क्या ले रहे हो ?"

"अर्थशास्त्र मिल गया है।"

"और तुम्हारे पास बी. ए. में क्या था ?"

"गणित था; पर एम. ए. में यह परिश्रम अधिक चाहता है और परिश्रम मुझसे हो नहीं पाता, दूसरे संस्कृत थी, पर इसमें कुछ Prospects दिखाई नहीं देते।"

"संस्कृत पढ़ना तो बुरा नहीं है, पर संस्कृत पंडितों का अब आदर नहीं रह गया।"

"संस्कृत से मुझे प्रेम है, पर अर्थ शास्त्र तो केवल मैं अर्थ की दृष्टि से ले रहा हूँ।"

"अपने marks लेकर देख लिया अर्थशास्त्र में कैसे नम्बर आये हैं ?"

"नहीं अभी तो नहीं देखा। Second Class आई है, इसलिये marks के लिये कोई उत्साह नहीं। परीक्षा फल १३ ता० को आया था, उस दिन अवश्य कुछ प्रसन्नता हुई थी। दोपहर को ग्यारह बजे

धूप में ही मानव जी आये और पास होने के उपलक्ष में आपकी 'नीरजा' दे गये। उस समय कुछ भी बात नहीं हो सकी। मुरादाबाद के एक कोने पर मैं रहता हूँ और दूसरे पर वे। सन्ध्या को चाय पर बात-चीत हुई। मैंने आपकी वह बात कह दी" मैंने मुस्कारा कर कहा और रुक गया।

"क्या बात भाई?" महादेवी जी ने जरा हँसते हुए पूछा।

"वही जो आपने 'हिमवत्' के भेजने पर कही थी। छोटे आदमी बड़ों को उपहार नहीं भेजते। मैं 'मानव' जी को डाटूंगी।"

इस पर वे बहुत हँसीं और बोलीं, "मैंने तो वैसे ही कह दिया था। वह किताब तो मैंने अपने पास रख छोड़ी है। बहुत अच्छी है।"

मैंने अपनी बात फिर आरम्भ की, "पर 'मानव' जी ने इसका जो उत्तर दिया वह तो सुनिये। वे बोले, पर महादेवी जी मुझे छोटा समझती क्यों हैं? इस पर मैं कुछ नहीं बोला। वे चुपचाप चाय पीते रहे। मैंने पूछा: अच्छा तब यह बताइये कि आपका महादेवी जी से क्या सम्बन्ध है? जो उत्तर मिला उसे आप जानती हैं?"

"क्या?"

"भय का।"

"भय का सम्बन्ध। इसका क्या मतलब?" महादेवी जी ने चकित होकर प्रश्न किया।

"यह बात तो मेरी भी समझ में नहीं आयी।"

इस पर वे बहुत ज़ोर से हँसीं और सहसा गम्भीर और शांत होकर बोलीं, "मानव जी हैं बहुत अच्छे आदमी।"

"मैंने मानव जी को कितनी ही बार समझाया कि मुरादाबाद बहुत छोटी जगह है, वहाँ साहित्यिक वातावरण भी नहीं और वे भी यह बात मानते हैं, पर मुरादाबाद छोड़ते नहीं।"

"वहाँ उनके श्वसुर हैं न! कुछ सुविधा रहती होगी।"

"जहाँ तक मैं जानता हूँ सुविधा तो कुछ भी नहीं।"

"उनके श्वसुर हैं क्या?"

"एम. एल. ए. हैं, नाम है पं० शंकर दत्त शर्मा। बड़े प्रभावशाली व्यक्ति हैं ।"

"वे करना चाहें तो बहुत कुछ कर सकते हैं।"

"हाँ, यह बात तो है। वे बड़े आदमियों को चिट्ठी लिख सकते हैं, पर मानव जी चिट्ठी लेकर किसी के पास जायेंगे नहीं, यह मैं बहुत अच्छी तरह जानता हूँ।"

"उनकी पुस्तकों का क्या रहा ?"

"'खड़ी बोली के गौरव ग्रन्थ' के दो संस्करण समाप्त हो गये। तीसरा तैयार हो रहा है और उसकी माँग भी काफ़ी है। आपकी 'रहस्य साधना' वाली पुस्तक भी समाप्त-प्राय ही है। पर 'निराधार' और 'अवसाद' ऐसे ही पड़े हैं।"

"आलोचना की पुस्तक अधिक बिकती हैं। यह कैसे हो सकता है कि साहित्यिक केवल आलोचना ही लिखता रहे। उसकी नीरस चीज़ तो प्रकाश में आये, और अपनी बात वह दबाये बैठा रहे।" फिर पूछा "आजकल वे क्या लिख रहे हैं ?"

"एक खंड-काव्य है उसका कुछ भाग सुनाया था। अभी पूरा नहीं हुआ।" अपनी पुरानी पुस्तक 'शेफाली' के नवीन संस्करण की प्रतिलिपि भी तैयार की है। अब उसमें केवल १५ कवितायें रहेंगीं।"

"खंड-काव्य का क्या नाम है ?"

"कदाचित् 'महागीत' रखा है।"

फिर थोड़ी देर कुछ सोचती रहीं और बोलीं, "मानव जी नवम्बर में ही आयें तो ठीक रहेगा। तब तक मैं सब कामों से निश्चिन्त हो जाऊँगी।" यह बात उन्होंने आपके पत्र के उत्तर से सम्बन्धित कही थी। मैंने कहा, "नवम्बर तक तो आपका काश्मीर से लौटना ही होगा।"

"नहीं, काश्मीर तो मैं जाऊंगी नहीं। संगमलाल जी के सामने मैंने वैसे ही कह दिया था। सिर न हिलाती तो सिर हो जाते।"

"यह बात तो मैं तभी जान गया था।"

"पर फिर भी नवम्बर तक कहीं न कहीं आना जाना रहेगा" महादेवी जी ने कहा। फिर थोड़ी देर चुप रह कर बात को आगे बढ़ाते हुये बोलीं, "सम्पूर्णानन्द जी ने २५ हज़ार रुपये हिन्दी साहित्यिकों के लिये रक्खे हैं। उसमें एक तो मुझे रक्खा है और दो कोई और हैं।"

"हाँ, अखबार में यह आया तो था। उसमें भी उन दो आदमियों का नाम नहीं बतलाया था।"

"आपको तो इसमें ठीक ही रक्खा है। आप के हाथ से ही इस रुपये का ठीक उपयोग हो सकता है।"

"भाई, सभी यह समझते तो हैं; पर गवर्नमेंट अपना नियन्त्रण किसी न किसी तरह रखती अवश्य है और इसी कारण जिस तरह हम चाहेंगे उस तरह उपयोग नहीं होने देगी। इस प्रकार सरकार ने मेरा नाम रख कर यद्यपि सम्मान दिया है, पर इससे तो सम्मान घटने की ही संभावना है।"

"किसी भी लेखक को जो गरीब है, या मर रहा है, और इसलिये दया के रूप में कुछ रकम दी जाये, तो वह हाथ नहीं फैलायेगा। हाँ, उससे किसी काम के करने के लिये कहा जाये और उसके उपलक्ष में चाहे कुछ भी दे दिया जाये तो वह प्रसन्नता से ले लेगा।"

"मैं भी कुछ ऐसे ही सोच रही हूँ कि कुछ लोगों की पुस्तकों को सम्मानित करें, कुछ से पुस्तकें लिखायें, उन्हें Honorarium दें। इसी तरह के ढंग सोचूँगी।

"संसद के पुस्तकालय के लिये भी तो काफ़ी रुपया चाहिये।"

"अभी तो हम प्रकाशकों से बिना पैसों के ही पुस्तकें ले रहे हैं और मेरे पास घर पर ही बहुत पुस्तकें हैं, उन्हें वहाँ रख दूँगी।"

"पर दूसरी प्रान्तीय भाषाओं की पुस्तकों के लिये तो रुपये की जरूरत पड़ेगी।"

"सब हो जायगा" सहज भाव से महादेवी जी ने कहा। फिर बोलीं—

"पूरी छुट्टियों भर मुरादाबाद ही रहे ?"

"हाँ, मुरादाबाद ही रहा। प्रतिदिन सुबह एक आध घन्टा पढ़ लिया करता था, बाक़ी दिन भर परिवार के सदस्यों में और मित्रों में बैठ कर गप्पें होती थीं। संध्या को कभी मानव जी घर पर आ जाते थे और कभी मैं उनके यहाँ चला जाता था। ये दो ढाई घन्टे चाय पीने और साहित्य-चर्चा में बीतते थे।" यह बात सुनकर हँसीं और बोलीं—

"बिना चाय के तो साहित्य-चर्चा होती ही नहीं।" इस पर मुझे भी हँसी आ गई और मैं भी हँसता रहा। हँसते-हँसते ही बोला, "एक दो दिन के लिये दिल्ली और फिर मेरठ ज़रूर गया था। २१ जून को दिल्ली से रेडियो पर मानव जी की आलोचना थी। उन्होंने तीन पुस्तकों की आलोचना की थी, जवाहर लाल नेहरू के 'हिन्दुस्तान की कहानी', रांगेय राघव के 'विषाद मठ' तथा 'आजकल' के एक विशेषांक की। उन्हीं के साथ दिल्ली मैं भी गया था।"

"नगेन्द्र भी तो अब रेडियो में है।"

"हाँ, नगेन्द्र जी के घर के पास ही उधर जैनेन्द्र जी भी रहते हैं। उनसे मिलने गये थे, पर वे मिले नहीं।"

"जैनेन्द्र जी तो आजकल यहीं हैं। कल यहाँ आये थे। मुझसे स्वास्थ्य के विषय में पूछने लगे। मैंने कह दिया कि अब तो उस पार का टिकट कटाने वाले हैं, तो बोले एक साथ कई मिलकर कटायेंगे तो कन्सेशन मिल जायगा। इस बात पर खूब हँसती रहीं। फिर मैं बोला, "जैनेन्द्र जी से मिलने की मुझे बहुत इच्छा थी। यहाँ कहाँ ठहरे हुये हैं ?

"सुन्दर लाल जी के यहाँ ठहरे हुये हैं। पर कल वे बनारस गये। कल तक शायद लौट आयें।"

"तब तो मैं परसों अवश्य आऊंगा। कदाचित शाम को यहीं भेंट हो जाये।"

"बनारस से लौट आयें तो यहाँ आयेंगे अवश्य। वे आजकल भारतीय साहित्य सम्मेलन का आयोजन कर रहे हैं। इसके लिये मौलाना आज़ाद ने उन्हें ५० हज़ार रुपये दिये हैं। और भी एक दो जगह से उन्हें पचास-पचास हज़ार का वचन मिला है।"

"इस भारतीय साहित्य सम्मेलन में होगा क्या ?"

"इसमें भारत की सभी भाषाओं—बँगला, गुजराती, मराठी इत्यादि के लेखकों का संगठन होगा। राजेन्द्र बाबू सभापति होंगे।"

"Preside करने के लिये कोई साहित्यिक होना चाहिये था। निराला जयन्ती पर आचार्य नरेन्द्रदेव ने अपने भाषण में यह बात कही थी कि उनकी समझ में नहीं आता कि साहित्यिक समारोहों में सभापति किसी राजनीति से सम्बन्ध रखने वाले व्यक्ति को क्यों बनाया जाता है, साहित्यिक समारोह में तो सभापति कोई साहित्यिक ही हो तो अच्छा लगे।"

"यह युग राजनीति का है। राजनीतिज्ञों के हाथ में शक्ति है" महादेवी जी ने कहा।

"बिल्कुल ठीक है। आप यह देखिये कि शहर में कोई भी छोटा मोटा funotion हो तो सभापति या तो किसी एम. एल. ए. को बनाया जायगा या किसी साहू को। मेरी समझ में यह बात अब तक नहीं आई कि ऐसा क्यों है ?"

" भाई, उनके हाथ में शक्ति है इसी लिये उन्हें पूछा जाता है। साहित्यिक के पास क्या रक्खा है। राजनीति में तो जहाँ कोई जरा popular हुआ कि आत्म-कथा भी निकल गई।"

'साहित्यिकों को भी अपनी आत्म-कथा लिखनी चाहिये" मैंने कहा।

" साहित्यिक अपनी आत्म-कथा लिख ही नहीं सकता। यों वह अपनी बात कह सब कुछ देता है" महादेवी जी बोलीं।

"हाँ, आप ठीक कहती हैं। साहित्यिक से History के से अपने विषय में facts and figures नहीं दिये जा सकते, वह अपनी जीवनी किसी उपन्यास के रूप में दे सकता हैं जैसे "श्रीकांत।"

"अच्छा, यह" शेखर एक जीवनी" भी तो अज्ञेय जी की अपनी आत्म-कथा है।"

"नहीं, यह उनकी अपनी आत्मकथा नहीं। काल्पनिक है" महादेवी जी ने बड़ी दृढ़ता से कहा। ऐसा लगता था जैसे उन्हें बिल्कुल विश्वसनीय सूत्र से पता हो कि वह लेखक की अपनी कहानी नहीं। यह बात यहीं समाप्त हो गई। यहीं से मैंने दूसरी बात उठायी।

"मैं ने अबकी बार शरत्चन्द्र के तीन उपन्यास पढ़े "शेष प्रश्न" "देवदास" और "बड़ी बहिन।" शेष प्रश्न तो बहुत ही सुन्दर उपन्यास है। पढ़ कर ऐसा लगता हैं कि जैसे वह जीवन की Encyclopeadia हो। यही सोचता हूँ कि यह आदमी कैसा होगा। इनकी कोई जीवनी नहीं मिलती?"

"यही बड़ा आश्चर्य है कि ऐसे व्यक्ति के विषय में बंगाल में भी बहुत नहीं मिलता" महादेवी जी ने कहा।

"मेरी तो बहुत ही इच्छा है कि किसी ऐसे आदमी से मिलूँ जो इनके संपर्क में आया हो। आपने इन्हें नहीं देखा?"

"एक बार देखा था।" इतना कह कर चुप हो गईं।

"तो फिर पूरी बात बतलाइये।" मैंने बड़े ही कौतूहल से पूछा। शरत्चन्द्र के विषय में जानने के लिये मैं इतना उत्सुक था कि अपनी भावना पर तनिक भी संयम न रख सका। मैंने फिर कहा, "शुरू से बतलाइये आप कैसे गई थीं"

"नहीं, अब नहीं बतलाऊंगी। मैं कभी लिखूंगी" महादेवी जी ने कहा।

मैं कुछ बोला नहीं। पर इस तरह उन्होंने कौतूहल और भी बढ़ा दिया था। मैंने फिर शरत्चन्द्र के बारे में बात छेड़ी। "इनके बारे में कहा जाता है कि एक बार जब इनकी Royalty बहुत इकट्ठी हो गई थी,

तो प्रकाशक ने कलकत्ते में ही इनके लिये एक सुन्दर सा मकान बनवा दिया था। उस विशाल मकान में ये अकेले रहा करते थे। एक नव दम्पति कलकत्ते में आये। पति ने अपनी पत्नी को धोखे से प्राप्त किया था। शादी से पहले उसने कह दिया था कि मैं बहुत रईस हूँ और विवाह हो गया था। कलकत्ते में आने पर उस स्त्री का पति शरत्चन्द्र के पास आया और उनसे पूरी कहानी कह सुनायी। शरत्चन्द्र ने रहने के लिये उसे मकान का एक बड़ा हिस्सा दे दिया। अगले दिन सुबह पति-पत्नी चाय पी रहे थे। बात बात में पत्नी ने पूछा, 'इस मकान में यह दूसरा कौन रहता है?'

'हमारा किरायेदार है।' यह बात शरत्चन्द्र सुन रहे थे। वे अपने कमरे में आये और तुरन्त एक चिट लिख कर भेज दी, 'इतनी थोड़ी जगह में आप लोगों को बहुत तकलीफ है इसलिये मैं तुम्हारा किराये-दार मकान खाली किये जा रहा हूँ।' सुना है फिर उस मकान में वे कभी नहीं लौटे। यदि यह घटना सत्य हो तो मैं यही सोचता हूँ कि यह व्यक्ति कितना महान् होगा। एक कलाकार से ही यह सम्भव है। किसी दूसरे व्यक्ति से नहीं।''

'उनसे मिलने पर ऐसा नहीं लगता था कि सामने कोई महान् व्यक्तित्व विराजमान है। रवीन्द्रनाथ टैगोर जैसी बात इनमें नहीं थी। टैगोर का व्यक्तित्व ऐसा था कि सामने वाले व्यक्ति के चारों ओर छा जाता था। उनसे बात करने पर अवश्य ऐसा लगता था कि अपने से महान् व्यक्तित्व के सामने कोई है।'

'पर तब भी मैं सोचता हूँ कि जब इनके उपन्यासों में कथोपकथन इतने सुन्दर हैं तो यह व्यक्ति बात कितनी सुन्दर करता होगा।'

'बात बड़े सहज भाव से करते थे।'

'इधर उधर की ही बातें करते थे क्या? साहित्य पर भी तो कुछ बातचीत हुई होगी।'

'मैंने इनसे इतना ही पूछा था कि आपके सब पात्र वास्तविक हैं

क्या ?' बोले 'कुछ वास्तविक हैं और कुछ काल्पनिक पर कल्पना भी ऐसी नहीं कि ऐसे पात्र जीवन में मिलेंगे ही नहीं।'

'इनके पात्रों के विषय में यह प्रश्न बहुत उठता है। 'शेष प्रश्न' में कमल के Character को देख कर मेरे मन में यह प्रश्न उठा था कि क्या कमल जैसी स्त्रियाँ संसार में होती होंगी? पर अब तो ऐसा लगता है कि अवश्य होती हैं।'

'हमें तो कभी ऐसा लगा नहीं कि इनके पात्र संसार में मिल नहीं सकते। पर शरत्चन्द्र जो घोर एकाकी रहता था, न माँ, न भाई, न बहिन, न पत्नी, उसने परिवार के इतने सुन्दर चित्रण कहाँ से किये?'

"स्त्रियों के स्वभाव का तो शरत्चन्द्र ने बड़ा ही सूक्ष्म दर्शन किया है। पुरुष पात्रों से इनके स्त्री पात्र forceful भी बहुत हैं। 'शेष प्रश्न' में पहली बार ही जब कमल पाठक के सामने आती है तो कहती है, "मुझे साबुन और एक सफेद धोती चाहिये।" तभी से कमल पाठक के मस्तिष्क पर एक undying imprsesion छोड़ देती है और ऐसा लगता है कि जैसे दूसरे सब पात्र इसके सामने फीके पड़ गये हैं।" मैं क्षण भर रुका, फिर बोला, "कहते हैं राज-लक्ष्मी नाम की किसी वेश्या से इसका प्रेम-सम्बन्ध था।"

"होगा। पहिले एक बर्मी स्त्री तो इनके साथ रहती थी, पर उन दिनों कोई नहीं था। ये घोर शराबी थे, पर बातचीत बिल्कुल ठीक तरह करते थे। शराब पीते पीते इन लोगों को यह ऐसे ही हो जाती होगी जैसे चाय। जो खूब शराब पीने वाले हैं वे अंड-बंड कभी नहीं बकते।"

"तो आप किस वर्ष गई थीं?"

"मैं सन् १६२८ में गई थी, तब शरत्चन्द्र कलकत्ते में ही एक घर में रहते थे। घर काफी बड़ा था, उसमें अकेले रहते थे।"

"कोई नौकर चाकर भी नहीं था?"

"नौकर भी एक दो दिखाई तो देता था, पर उनके रहने का सब कुछ था बड़ा अव्यवस्थित। एक चीज यहाँ पड़ी है एक वहाँ।"

"देखने में कैसे लगते थे?"

"अच्छे लगते थे। एक धोती, एक कुर्ता पहने हुये, सिर पर बिल्कुल सफेद बाल सीधे खड़े हुये।" ऊपर को अंगुली कर संकेत करते हुये महादेवी जी ने कहा। फिर हँस पड़ी। मैं भी हँसने लगा। अब मैं चुप बैठ गया। महादेवी जी अपने सोफे पर से उठीं। बोलीं, "चाय तो पियोगे न?"

"पिऊँगा क्यों नहीं?" मैंने हँस कर कहा, और वे अन्दर चली गईं।

मैं वहाँ अकेला बैठा-बैठा यही सोचता रहा कि शरत्चन्द्र और रवीन्द्र नाथ टैगोर दोनों ही बंगाल के महान् कलाकार हैं। पर इन दोनों में कौन महान् था? इस प्रश्न का निर्णय नहीं हो सकता। महादेवी जी को रवीन्द्र नाथ टैगोर का व्यक्तित्व अच्छा लगता है। दूसरी ओर हिन्दी में वे निराला के व्यक्तित्व को महान कहती हैं। निराला का व्यक्तित्व तो शरत्चन्द्र से मिलता जुलता है वैसी ही अस्तव्यस्तता। कुछ भी हो मुझे तो ऐसा लगता है कि शरत्चन्द्र का मन बहुत ही सुन्दर रहा होगा, निराला जी की भाँति बाहर से वे उतने सुन्दर भले ही न रहे हों। ऐसा मेरा अनुमान है पर यह ठीक ही होगा ऐसा विश्वास भी है।

मैं इसी प्रकार तीनों महान् व्यक्तित्वों के विषय में सोचता रहा। बीस मिनट ऐसे ही बीत गये, महादेवी जी अन्दर से लौटीं। मैंने मुस्करा कर कहा, "आज आपको स्वयं ही चाय बनानी पड़ी क्या?"

"नहीं तो, चाय तो बन गई है। मेरी एक शिष्या आ गई। उससे बात करने लगी थी। महादेवी जी ने अपना प्याला उठाया, उन्होंने चाय पीना आरम्भ किया, मैं नमकीन खाता रहा। फिर मैंने चाय पी। चाय ठंडी हो गई थी। मैंने फलों की तश्तरी महादेवी जी की तरफ बढ़ाते

हुये कहा, "फल तो लीजियेगा ?" बोलीं, "नहीं, बस एक प्याला चाय पीती हूँ।" मैं बोला, "मैं तो एक प्याला चाय और पीऊँगा।" "अच्छा अभी मँगाती हूँ।" उन्होंने लीला को आवाज दी। लीला एक प्याला गरम चाय दे गई ! मैं चाय पीता रहा, खाता रहा।

अब काफी रात हो गई थी। आज मैं तीन साढ़े तीन घंटे तक बैठा बैठा बातें करता रहा, पर कुछ भी पता नहीं लगा कि समय कितना बीत गया है। मैंने कहा, "अच्छा। अब मैं चल रहा हूँ।"

"अच्छा !" कह कर वे अपने सोफे पर से उठीं और बाहर बरामदे में आईं। द्वार पर फैली हुई लता का एक तिनका दांतों में दबा कर तोड़ती रहीं। मैंने हाथ जोड़ कर प्रणाम किया। द्वार पर आकर मैंने एक बार मुड़ कर देखा, वे वैसे ही खड़ी थीं, विद्युत् के प्रकाश में स्थिर भावमग्न, जैसे कुछ सोच रही हों।

मैं बाहर आया। बाहर आकर देखा आकाश पर घनघोर घटा घिरी हुई थी। चारों ओर घना अन्धकार था। उस घने अन्धकार में कभी कभी बादल गरज पड़ते और बिजली चमक चमक उठती थी। चलते चलते आपकी 'श्यामा' कहानी की निम्नलिखित अंतिम पंक्तियाँ स्वतः स्मरण हो आईं। इसीसे मिलता जुलता वातावरण रहा होगा उस समय—

दुर्भाग्य सी घोर उस कालिमा में
जिसमें नहीं मार्ग देता दिखाई
उर चीर दे पाहनों का पलों में
वैसी कड़क में
उस बाढ़ में जो डुबादे सभी कुछ
बहादे सभी कुछ ?
जिस दृश्य को देखकर दूर से ही
उर काँपता शिक्षिता बालिका
नागरी प्रेमिका का

उस कालिमा को
करती हुई तुच्छ
उस बाढ़ को दृढ़ चरण से कुचलती
सौदामिनी का
दीपक बनाकर
श्यामा हमारी चली जा रही है
बढ़ी जा रही है।

सश्रद्धा
शिवचन्द्र नागर

३३

३० ए०, बेली रोड
प्रयाग
२६।७।४७

आदरणीय 'मानव' जी,

मुरादाबाद से यहाँ आने पर कोई भी दिन ऐसा नहीं गया, जिस दिन बरसात न हुई हो। इस समय मैं पत्र लिख रहा हूँ, पर बाहर पानी बरस रहा है। बरसात अच्छी ही लगती है। कभी कभी ऐसा लगता है कि बरसात से मन का और जीवन का गहरा सम्बन्ध है।

कल संध्या को मैं महादेवी जी के यहाँ चला गया था। उस समय ड्राइंग रूम में अपने एक सोफे पर महादेवी जी बैठीं थीं और बड़े वाले सोफे पर तीन व्यक्ति और थे। उनमें से दो तो थे श्रीयुत इलाचन्द्र जोशी और श्रीयुत गंगाप्रसाद पांडेय, तीसरे महोदय से मैं अपरिचित था। एक सोफा खाली पड़ा था। उस पर मैं बैठ गया। मेज पर रक्खे हुए फूलदान में कुछ श्वेत और लाल पुष्प थे और भगवान कृष्ण की मूर्ति के सामने रखी हुई सुन्दर अंजलि भी चमेली के श्वेत पुष्पों से भरी थी। कमरे का वातावरण एक मधुर सुगन्ध से सुरभित था।

बात पहले से छिड़ी हुई थी। कितनी ही देर तक मैं चुपचाप बैठा रहा, क्योंकि मैं बात का सूत्र ही नहीं पकड़ पा रहा था। बीच में कभी कभी केवल 'हाँ' 'हूँ', ही कर देता था।

सहसा शांतिप्रिय की बात उठी। इसी सम्बन्ध में महादेवी जी ने बताया कि आज तक लगभग सभी अशुभ और मृत्यु के समाचार शांतिप्रिय ने ही सुनाये हैं। एक बार जब अखबार में गलती से पंत जी की मृत्यु का समाचार छप गया था तो पहले तो उसने आकर वह समाचार सुनाया, उसके मुख पर न कोई विषाद की रेखा थी न कोई दुःख सा ही था और तुरन्त बोला, 'पता नहीं, उनकी किताबों का क्या हुआ होगा, मैं पास होता तो मैं ही ले लेता।' इस पर बहुत हँसी रही।

तुरन्त ही इलाचन्द्र जी बोले, 'पांडे जी, प्रसाद जी की मृत्यु पर भी वह रात को हमारे पास था। ग्यारह बजे होंगे हम लोग देवी जी के बंगले से pass हुये, बोला 'तुम यहीं ठहरो, मैं अभी आया।' हमने कहा कि कल को अखबारों में निकल जायेगा, पता लग जायेगा और कोई खुशी का समाचार तो है नहीं। पर वह बोला, 'नहीं, पाँच मिनट आप रुकिये, मैं अब आया, और वह अन्दर चला आया।' इसके बाद की कहानी महादेवी जी ने सुनाई 'मैं उस समय बुखार में थी। १०३ बुखार था। नौकर ने आकर कहा, मैंने उससे कहलवा दिया कि ज्वर में हूँ, तो बोला, 'बड़ा जरूरी काम है, एक मिनट के लिये हो जायें। मैं उठी, उसी ज्वर में दरवाजे तक आयी, तो शांति-प्रिय ने सबसे पहले प्रसाद जी की मृत्यु का समाचार दिया। उस समय मैं ज्यों कि त्यों खड़ी रह गई और बिल्कुल भी नहीं सोच सकी कि क्या करूँ।' सुनाते सुनाते महादेवी जी का मन भारी हो गया था, वह उनकी वाणी से स्पष्ट ही था। मैं नीचे गर्दन झुकाकर यही सोचता रहा कि जब उस दिन बारह बजे रात में १०३ डिग्री ज्वर में महादेवी जी ने प्रसादजी की मृत्यु का शोक समाचार सुना होगा तो उन्हें कैसा लगा होगा? उस कष्ट और वेदना को मापा नहीं जा सकता।

इसके बाद खाना पीना चला, चाय पी गई। जब हम खा पी चुके तो इतने में डा० ब्रजमोहन गुप्त भी आगये। उनके लिये भी महादेवीजी ने चाय और अन्य सभी चीजें मँगवाई। इसी बीच पांडेजी मेरी ओर संकेत करते हुए महादेवी जी से बोले, "कुछ लोग आपके परिचय के लिये व्यग्र हैं।" महादेवीजी ने मेरे बारे में बतलाया। फिर मैंने उन तीसरे व्यक्ति महोदय का परिचय पूछा, वे बोले, "मेरा नाम वाचस्पति पाठक है। मैं लीडर प्रेस में हूँ।" ये वाचस्पति पाठक थे, धोती और कुर्ते में। पान खाये हुए अच्छे लगते थे। वाणी में बनारसी लटका था और मिठास भी बनारसी रसगुल्ले जैसी ही। जब कई आदमियों के बोलते हुए भी उन्हें अपनी बात सुनानी होती थी तो जोर से बोल पड़ते थे। उस समय उनकी आवाज बड़ी तेज हो जाती थी। बात चीत करने का ढङ्ग प्रभावशाली था। अपना आशय बड़ी ही स्पष्ट रीति से व्यक्त कर देते थे। कई वर्ष पहले मैंने इनका एक कहानी संग्रह पढ़ा था, तब से मैं इनके नाम से परिचित था, पर साक्षात्कार आज ही हुआ।

मेरे परिचय के साथ श्री के०. एम. मुन्शी की बात उठी थी और साथ ही उपन्यास साहित्य की बात। पांडे जी ने कहा, "अब क्या कविता, क्या कहानी, क्या उपन्यास, सभी क्षेत्रों में हिन्दी में ऐसा साहित्य है कि कम से कम भारत की किसी भी प्रान्तीय भाषा का साहित्य उससे ऊंचा नहीं।" मैंने पूछा, "उपन्यास साहित्य भी?" बोले, "हाँ।"

"शरत्चन्द्र के उपन्यासों के विषय में आप का क्या विचार है?" मैंने पूछा। वाचस्पति पाठक बोले उठे, "पहले बचपन में तो शरत्चन्द्र के उपन्यास मुझे अच्छे लगते थे, पर अब तो लगते नहीं।" इस बात से उनका तात्पर्य संभवतः यह था कि शरत्चन्द्र भारत के सर्वश्रेष्ठ उपन्यासकार नहीं। फिर कौन है? मैं यही सोचता हूँ; पर मुझे तो और कोई दीखता नहीं।

साहित्यकार संसद् की बात उठी। कुछ दिनों में ठेले पर लाद कर आलमारियाँ इत्यादि सामान वहाँ पहुँचा दिया जायेगा। सामान पहुँच जाने पर वहाँ रहने की सुविधा भी होगी। वहाँ की भूमि बड़ी ही कड़ी थी। बरसात में मुलायम हो जाने के कारण अब उसमें हल चलवा दिया है।

महादेवी जी ने दूसरी बात उठायी। बात यह थी कि सुश्री होमवती देवी की कोई कहानी थी "गोटे की टोपी।" उसका प्लौट लेकर "सिंदूर" नाम की फिल्म तैयार हुई है ऐसा सुना जाता है। कहते हैं उसमें उन्होंने पात्रों के नाम तक नहीं बदले। विचार का विषय यह था कि क्या किया जाये! तय यही हुआ कि होमवती जी के पत्र को 'भारत' में छाप दिया जायेगा और कोई Responsible आदमी उस चित्र को भी देख ले और इस कहानी को भी पढ़ले। उसी समय कुछ हो सकता है। चित्र बम्बई में release हो गया है। दो-तीन दिन में अमृतलाल नागर आने वाले हैं। उन्हें "सिन्दूर" के बारे में पता होगा, उनसे भी पूछ लिया जायेगा।

पांडे जी ने एक प्रकाशक के विरुद्ध जिसने उनका कहानी संग्रह जब्त कर लिया है, शिकायत की। शिकायत क्या कहूँ, फरियाद कहनी चाहिये, क्योंकि कहने का ढंग ऐसा ही था। बीच में ही जोशी जी बोल पड़े "मेरी भी कुछ शिकायत है, पर पहले पांडे जी को कह लेने दीजियेगा।" जब पांडे जी कह चुके तो उसी प्रकाशक के विरुद्ध जोशी जी ने भी एक वैसी ही फरियाद की। सचमुच वह दृश्य देखने योग्य ही था। ऐसा लगता था जैसे किसी दरबार में फरियादी अपनी अपनी फरियाद सुना रहे हों।

पांडे जी के पास कागजी सबूत भी है। पाठक जी ने हँस कर राय दी कि आप एक नोटिस दे दीजियेगा।

दो तीन मिनट इस सिलसिले में और कुछ बातें होती रहीं। फिर पाठक जी बोले, "अब चलना चाहिये। सब लोग उठे। उन तीनों

व्यक्तियों और डा० ब्रजमोहन गुप्त ने विदा ली। उस समय रात के ६॥ बज चुके थे। मैं महादेवी जी के साथ वापिस लौट आया।

दो क्षण तक कमरे में मंदिर की सी शांन्ति रही। फिर महादेवी जी बोलीं, "देखो, ये प्रकाशक कैसे होते हैं?" इतना कह कर वे चुप हो गईं। बात उन्होंने इतनी छोटी हा कही थी, पर उसमें उनकी पूरी व्यथा उतर आयी थी। "हाँ, एक कहानी पांडे जी ने सुनाई दूसरी इलाचन्द्र जी ने। छिः छिः......" मैंने कहा।

"ये तो वे कहानियाँ हैं जो प्रकाश में आ गई हैं, अभी तो कितनी ही ऐसी होंगी जो प्रकाश में नहीं आयीं। ये लोग ऐसा करते हैं और फिर इसी से बड़े हो जाते हैं" महादेवी जी ने कहा। उनकी वाणी में गहरी उदासी थी। कई क्षणों तक कोई कुछ नहीं बोला। वातावरण कुछ भारी अवश्य हो गया था। मैंने देखा उन दो तीन क्षणों की मौनता में जो करुणा तथा व्यथा महादेवी जी के मन में उमड़ आयी थी,वह शांत हो गई थी। मैंने नई बात शुरू की। कहा—

"१५ अगस्त को मुरादाबाद से एक नवीन साप्ताहिक पत्र "विजय" आरम्भ होने वाला है। कल 'मानव' जी का पत्र आया था, शायद प्रथम अंक का सम्पादन तो उनके हाथ से ही हो।"

"यह पत्र साहित्यिक है या राजनीति का?"

"यह पत्र पहले तो राजनीति का ही था। १९४२ के आन्दोलन में बन्द हो गया था। अब इसका प्रकाशन फिर आरम्भ हो रहा है। इस समय ऐसा लगता है कि इसमें कुछ अंश साहित्य का अवश्य रहेगा। एक दो महीने तक जब तक कोई दूसरा आदमी नहीं मिलता, शायद 'मानव' जी ही संपादक का काम करें। पर फिर करेंगे नहीं।"

"मानव जी के कितने भाई बहिन हैं, कितना बड़ा परिवार है?" महादेवी जी ने पूछा।

"भाई तो कोई नहीं, एक छोटी बहिन हैं। इसके अतिरिक्त उनकी माता जी हैं, पत्नी हैं, और दो बच्चे हैं।'

'इनके पिता जी नहीं ?'

'उनकी पिछले साल मृत्यु हो गई ।

'परिवार तो बड़ा है ।'

'इससे तो वे नहीं घबराते, पर उन्होंने सिद्धान्तों के बन्धनों से अपने को बुरी तरह जकड़ रखा है । जहाँ साहित्य से दूर रहना पड़े वहाँ नहीं जायेंगे ।'

'जिसे अपने सिद्धान्त प्रिय हैं उसे उन्हीं में बँधे रहना अच्छा लगता है' महादेवी जी ने कहा ।

'यह बात तो ठीक है, पर उसे वाह्य कष्ट बहुत उठाने पड़ते हैं । कुछ थोड़ा सा उसे आन्तरिक सुख तो अवश्य मिलता होगा, क्योंकि इससे उसे संतोष मिलता है ।'

'थोड़ा सा क्यों, उसे बड़ा भारी आन्तरिक सुख मिलता है । उसे अन्दर की कोई अशांति नहीं रहती । बहुत से आदमी तो ऐसे होते हैं कि उनके कुछ सिद्धान्त होते ही नहीं, वे अवसरवादी हैं । कुछ आदमियों के सिद्धान्त होते हैं पर वे आपत्ति के समय परिस्थितियों के अनुसार अपने सिद्धान्तों से समझौता कर लेते हैं, पर कुछ ऐसे हैं जिन्हें सिद्धान्त प्रिय हैं । वे समझौते की बात नहीं जानते । उन्हें बाहर के बहुत कष्ट उठाने पड़ते हैं । कोई आदमी है वह सच बोलता है, कोई उससे पूछे कि 'भाई सच क्यों बोलते हो इससे क्या लाभ ?' तो वह उसे क्या बतला सकता है कि देख यह लाभ है । एक दूसरा है वह झूठ बोलता है, चोर बाजार में सामान बेचता है, उसने हजारों रुपये कमा लिये, उसका तो लाभ प्रत्यक्ष है ।'

'किसी को कितना आन्तरिक सुख या दुख है दुनिया इसे नहीं देखती, वह तो बाह्य सुख या दुख को देखती है और उसी पर आदमी का मूल्यांकन करती है और अपनी धारणायें बनाती है । यह युग तो प्रत्यक्षवादिता का है ।'

'ऐसा प्रत्यक्ष तो कुछ नहीं दिखाया जा सकता । एक सत्यवादी

कह सकता है कि मेरी आत्मा का विकास होता है, पर वह यह तो नहीं बता सकता कि इतना विकास हुआ, जैसे एक चोर बाजार वाला बता सकता है कि एक लाख का फायदा हुआ। सिद्धान्तों के लाभ को तौल कर नहीं बताया जा सकता कि इतना है और न यह लाभ प्रत्यक्ष ही है।'

'आंतरिक सुख तो इसमें अवश्य मिलता है पर बाह्य कष्ट क्या आन्तरिक सुख को मलिन नहीं कर देता होगा?'

'यह आदमी आदमी पर निर्भर है। हमारे यहाँ एक पंडित जी हैं। वे यहाँ संस्कृत की Classes लेते हैं। वे जब आये थे उनके बड़े बड़े सिद्धान्त थे। जूता चप्पल नहीं पहनेंगे, बड़े भारी शिखाधारी, वेदपाठी पंडित। एक दिन वे मेरे पास आये। बोले, "अब मैं विवाह कर रहा हूँ, आप मुझे आशीर्वाद दीजियेगा।" "हाँ, भाई आशीर्वाद है। तुम सुखी रहो" मैंने कहा। बोले, "नहीं आप स्वस्ति वाचन कर दीजियेगा।" स्वस्ति वाचन हो गया। वे विवाह कर लाये। अब पहले तो ऐसी बात थी कि पंडित जी के पास जो कुछ भी हुआ और किसी ने मांगा दे दिया, अब भी उनकी वह प्रकृति ज्यों की त्यों रही। लड़की घर में आयी। कभी कभी दो दो तीन तीन अतिथि भी आने जाने लगे। राशन बहुत कम मिलता ही है। उन्हें बड़ा कष्ट हुआ। कुछ लोगों ने जिनके यहाँ उनके टयूशन थे, कहा कि आप लिख दीजियेगा हम चार आदमी हैं, हम सब ठीक कर देंगे। चार का कार्ड बन जायगा। पर वे बड़े सत्यवादी थे, उन्होंने मना कर दिया। वे बाहर चले जायें तो लड़की घर झाड़ने, बुहारने बाहर निकले। लोग इधर उधर से झाँकने लगे। पहले पंडित जी से कोई बोलता नहीं था। अब उन्हें छेड़ने लगे। तब वे मकान यहाँ से वहाँ, वहाँ से यहाँ बदलते रहे। उनके सब काम चलते पहले की तरह ही हैं, पर चीज अब मिलती नहीं। कुछ कोई माँगने आये तो मना

करेंगे नहीं। इस बीच उनके एक लड़का भी हो गया है। बेचारों को बड़ा कष्ट है, बाह्य भी और आंतरिक भी।"

'आंतरिक कष्ट क्यों है?"

"इसीलिये कि उनके सिद्धान्तों का उनकी पत्नी के लिये तो कोई मूल्य नहीं। अब कोई भी लड़की हो वह ऐसे तो रह नहीं सकती कि उसका पति दिन भर बैठा माला जपता रहे। पति के घर थोड़ा सुख भी तो चाहेगी ही। इधर वे अपने सिद्धान्तों के साथ समझौता तो कर नहीं सकते और मन रहता है उनका ऋग्वेद की ऋचाओं में।"

"जब ऐसा था तो उन्होंने विवाह क्यों किया?"

"इसीलिये कि लोगों ने कहा कि एक संस्कार है, यह भी होना चाहिये, परम्परा है।" फिर क्षण भर रुकीं। बात को आगे बढ़ाते हुए बोलीं। "संस्कार है, परम्परा है, विवाह है, बड़ा भारी सुख है, लोगों ने अनेक नाम दे रक्खे हैं, पर अन्त में उतरना पड़ता है पशुता के स्तर पर ही। पशु, पक्षी, मक्खी, मच्छर के विकास की जो क्रिया है, उसके लिये ही तो मनुष्य इतना सब कुछ करता है। नहीं तो फिर है क्या? एक अपरिचित सुन्दर स्त्री है उसे देखकर बेहोश हो गये। प्रतिदिन देखते हैं कि मीलों तक स्त्रियों के पीछे पीछे लोग चले जा रहे हैं।"

"रूप का लोभ है" मैंने कहा।

'अगर रूप का लोभ ही होता, तो एक सुन्दर मूर्ति बनाकर अपने कमरे में रख लें और उसे ही देखा करें, पर ऐसा तो नहीं होता। सब कुछ एक वासना की भावना से प्रेरित है। शरीर पर अधिकार पाने के लिये ही यह सब कोलाहल है।"

"नारी पुरुष को आकर्षित करती है, पुरुष नारी को आकर्षित नहीं करता?"

"जैसे ब्रह्म है और माया है ऐसे ही पुरुष और स्त्री है। माया ब्रह्म को घेरे हुये है। माया आकर्षित करती है, आकर्षित होती नहीं। नारी माया का अवतार है, इसीलिये इसमें पुरुष को बड़ा भारी आकर्षण है।"

"पर ऐसे व्यक्तियों से जिनसे हमारा केवल मन और बुद्धि का सम्बन्ध है, उनसे बिछुड़ जाने पर भी हम एक आकुलता का अनुभव करते हैं।"

"आकुलता का अनुभव करते तो हैं पर यह आकुलता दूसरे प्रकार की है। यह बात तो समझ में आती है कि गुरु है उसे एक शिष्य चाहिये, अपनी बुद्धि का साथी चाहिये या किसी और महान् कार्य का आयोजन कर रहे हैं उसमें एक साथी चाहिये, पर एक जीवन साथी चाहिये, शरीर के साथ पशुता के स्तर पर साथ देने वाला. यह समझ में नहीं आता। सृष्टि के विकास के लिये इसकी आवश्यकता है। सभी इससे अलग रहने लगें तो सृष्टि का विकास ही रुक जाये, पर यह है दुर्बलता, स्वभाव-जन्य दुर्बलता। प्रकृति अपना काम करती है। किसी अस्सी वर्ष के बुड्ढे को किसी सत्तर वर्ष की बुढ़िया पर रीझते किसी ने कहीं देखा। वहाँ प्रकृति अपना काम कर चुकी है।"

" जब यह बात स्वभाव-जन्य है तो स्वभाव से भी तो भागा नहीं जा सकता ?"

"स्वभाव पर बुद्धि से शासन किया जा सकता है। यह स्वभाव जन्य तो है पर यह भी नहीं कहा जा सकता कि ऐसा व्यक्ति आज तक हुआ ही नहीं। स्वामी दयानन्द, विवेकानन्द, रामतीर्थ आजन्म ब्रह्मचारी रहे।"

"यह बात तो ठीक है पर पहिले तो पुरुष का नारी की ओर ही आकर्षण होता है फिर बाद में हो सकता है कि भावनायें उद्बुद्ध हो कर ईश्वर की ओर उन्मुख हो जायें ! तुलसीदास और सूरदास इसी प्रकार भक्त हुये थे।"

"हमारे यहाँ आवागमन का सिद्धान्त है। मैं तो उसे मानती हूँ। उसके अनुसार प्राणी कुछ संस्कार ले कर आता है। उन्हें भोग लेने पर वह मुड़ सकता है। किन्तु कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं जिनमें जन्म से ही संसार की ओर उन्मुख करने वाले संस्कार नहीं होते। उन लोगों के

लिये रास्ता साफ होता है। उन्हें अपने अन्तर के साथ संघर्ष नहीं करना पड़ता। तुलसीदास ने गार्हस्थ्य सुख का उपभोग किया। फिर एक छोटी सी बात से बदल गये। फिर उनकी वही पत्नी जिसे इतना प्रेम करते थे उन्हें मिली तो कहने लगे मैं तो पहचानता ही नहीं। तब तक संसार की ओर घसीटने वाले संस्कार समाप्त हो चुके थे।"

"और स्वामी रामतीर्थ?"

"उनकी जब पत्नी आयीं तो उन्होंने तो कह दिया कि तुम माता हो, अंबा हो। एक पुरुष जब नारी को शक्ति का रूप मानता है, जननी के रूप में देखता है तो संसार की स्त्रियों में से वह एक स्त्री को किस प्रकार अलग करके देख सकता है। रामतीर्थ में वे संस्कार जन्म से थे ही नहीं। कुछ व्यक्ति जिनमें सांसारिक संस्कार होते हैं, पर फिर भी ज्ञान के बल से वे उनसे ऊपर उठना चाहते हैं उन्हें मन के साथ संघर्ष करना पड़ता है। मेरा तो यह सौभाग्य ही था कि मुझे मन के साथ आंतरिक संघर्ष नहीं करना पड़ा, जन्म से ही मेरे लिये रास्ता साफ था।"

"पर बाह्य संघर्ष तो करना पड़ा ही होगा?"

"बाह्य संघर्ष क्या! लोगों ने यही कहा यह लड़की कैसी है समाज की अवहेलना करती है। कह दिया कि भाई, हम ऐसे ही हैं।"

"यह बात ठीक है, पर यह दुनिया इतने से ही नहीं मानती। जो इससे दूर जाना चाहता है उसे चारों ओर से घेरती है और खींच कर अपनी परिधि में ही ले आती है।"

"जब तक अपने मन की तनिक भी सहमति न हो तब तक मन के विरुद्ध कोई भी कुछ नहीं कर सकता।"

"क्यों? शरीर पर बल पूर्वक भी तो अधिकार किया जा सकता है?"

"यदि चेतन अचेतन में मन का जरा भी झुकाव नहीं, तो शरीर पर अधिकार पाने से पहले ही शरीर निर्जीव हो जायेगा।"

"हाँ, बिल्कुल ठीक है। शरीर पर अधिकार नहीं किया जा सकता, शव पर अधिकार किया जा सकता है।" मैंने कहा और फिर दूसरी बात मन में उठी। मैंने पूछा, "मान लिया कि एक व्यक्ति संसार से ऊपर उठ गया, पर वह रहता है संसार में ही। संसार के सभी व्यक्तियों में उठता बैठता है, मिलता जुलता है, उनकी सांसारिक बातें सुनता है तो उसका मन संसार की ओर लौट सकता है। क्या कुछ क्षण भी ऐसे न आते होंगे कि सांसारिक सुखों पर न सोचता होगा?

'सांसारिक सुखों की ओर खिंचना तो मनुष्य की प्रकृति है। जब एक व्यक्ति का मन चेतनता के ऊँचे स्तर पर स्थिर हो गया तो फिर यह प्रकृति जड़ हो जाती है। फिर संसार का वातावरण उस पर कोई रेखा नहीं छोड़ता। एक दार्शनिक है। वह अपनी पुस्तक के अध्ययन में लगा है। कमरे में कौन आया कौन गया इस बीच में उसने किसको क्या जवाब दिया यह उसे कुछ याद नहीं रहता। कला में भी ऐसी ही तन्मयता रहती है। रहस्यवादी की भी ऐसी ही स्थिति है। राजनीतिज्ञ की भी ऐसी ही। राजनीति ही उसके भगवान हैं। सुभाषचन्द्र बोस थे। के पास क्या नहीं था? स्वयं सुन्दर थे, बीस जगह आते जाते थे, घूमते फिरते थे, लड़कियों के बीच स्त्रियों के बीच रह कर काम करना पड़ता था, किन्तु उनके चरित्र पर कोई अंगुली नहीं उठा सकता।"

"यह तो मन भर जाने की बात है, किसी भी वस्तु से जब मन और प्राण पूर्णतया भर गये, तो फिर दूसरी चीजों को स्थान नहीं मिलता।" मैंने कहा।

"हाँ, यही बात है। जब प्राण भर गये तो फिर दूसरी चीजों के लिये स्थान ही कहाँ? भरे हुये पात्र में फिर और कुछ नहीं समा सकता।" फिर क्षण भर रुकीं और बोलीं, "एक बार जब मैं एक सीलोन के ब्रह्मचारी जी से प्रव्रज्या ले लेना चाहती थी और उनसे मिलने गई तो वे एक ताड़ का बड़ा पंखा मुँह पर लगा कर बात करने लगे।

तभी मैंने जान लिया कि, "ये क्या प्रव्रज्या देंगे, इनके मन में तो अभी चोर है।"

"इसका अर्थ यही है कि उनको स्वयं ही अपने ऊपर विश्वास नहीं था।" मैंने कहा। बात को आगे बढ़ाते हुए मैंने फिर कहा, "अच्छा मीरा के विषय में आप की क्या सम्मति है? मैं समझता हूँ मीरा ने तो गार्हस्थ्य सुख का उपभोग किया था।"

"मीरा के विषय में अभी पूर्णतया खोज नहीं हुई। पर मेरा तो विश्वास है कि इसमें कुछ न कुछ बात और थी। यदि वह विधवा होती तो कहीं तो एकाध विषाद की रेखा आती। भारतीय विधवा का जीवन कितना कष्टों से भरा है और उन दिनों तो और भी दुःख पूर्ण होगा।"

"पर यदि उन्होंने गार्हस्थ्य सुख का उपभोग न किया होता तो उनकी सगुणोपासना न होती, निर्गुणपासना होती?"

"नहीं, यह बात नहीं। उसके जीवन में ठीक अवस्था पर प्रेम भावना का विकास हुआ होगा, पर अपनी उन भावनाओं को उसने सुन्दर पुरुष श्रीकृष्ण पर आधारित कर दिया।"

"पर अपने पति के साथ तो वे रही हीं। उनका मन उच्च स्तर पर रहा हो, पर हो सकता है विवशता वश अपने पति के साथ पशुता के स्तर पर यन्त्र की तरह ही साथ देना पड़ा हो। ऐसी दशा में विधवा होने पर विषाद को रेखा का न आना सम्भव है; क्योंकि मन तो उसका वहाँ का वहीं था, पति को केवल शरीर ही दिया होगा।"

"मन और शरीर इस तरह बांटे नहीं जा सकते। यदि मीरा पर और खोज हुई तो कुछ रहस्य निकलेगा अवश्य।" कुछ क्षणों के लिये मैं चुप रहा। फिर बोलीं, "भारतीय नारी के लिये तो जब उसने गार्हस्थ्य धर्म स्वीकार कर लिया, पति ही सब कुछ है। पति के मरने पर जिस शव को कोई हाथ नहीं लगाता, उसे गोदी में लेकर चिता में

साथ जल जाती थीं। पत्नी के मरने पर किसी पुरुष को हमने मरते नहीं देखा।"

"क्यों मर तो जाते हैं। बहुत से पुरुष अपनी प्रेमिकाओं के पीछे मर जाते हैं।" मैंने अपनी मुस्कराहट को जरा ओठों में दबा कर कहा।

"वह बात बिल्कुल दूसरी है। अप्राप्त के लिये तो बहुत से मर जाते हैं, पर प्राप्त के लिये कौन मरता है। यहाँ एक में अप्राप्ति है और दूसरे में प्राप्ति।

"प्राप्ति के बाद तो समाप्ति ही आती है।"

"पर स्त्री प्राप्ति के बाद भी सब सम्बन्ध ठीक रखती है। वहाँ समाप्ति नहीं आती। एक पदार्थ है वह दूसरे पदार्थ की ओर आकर्षित होता है। यदि उनमें बराबर आकर्षण है तो दोनों अपने स्थान पर स्थिर रहेंगे। यदि नहीं तो कम आकर्षण वाला पदार्थ अधिक वाले की ओर बढ़ता है। उसे प्राप्त करने पर वही पदार्थ पीछे लौट जाता है। इसी प्रकार पुरुष स्त्री की ओर आकर्षित होता है, पर प्राप्ति के बाद पीछे ही लौटता है। नारी अपने सब सम्बन्ध ठीक रखती है। वह किसी की पत्नी है, किसी की माता है, किसी बहिन है। सब को पृथ्वी की तरह अपनी ओर खींचे रखती है।"

"इसमें तो कुछ संदेह नहीं। यह तो वास्तव में नारी की अद्भुत शक्ति है। वह अपने सब सम्बन्ध नियन्त्रित रखती है और सबको ठीक स्नेह का वितरण करती हैं" मैंने कहा।

"सब ठीक है भाई, पर अब तक तो उसकी स्थिति समाज में बड़ी खराब रही है।"

"यह क्या कदाचित् इसीलिये कि नीति-नियमों का निर्माण करने वाले पुरुष रहे।"

"यह बात भी रही होगी, पर पुरुष अर्थ का स्वामी है। अर्थ एक शक्ति है, फिर वह अपनी शक्ति का लाभ उठावेगा ही। स्त्री तो घर

की स्वामिनी है। यदि स्त्रियों ने नीति नियम बनाये होते तो दूसरी ओर इतने ही कठोर बन्धन हो सकते थे। अब भी जहाँ स्त्रियाँ बाहर का काम करती हैं, पुरुष सब घर का काम करते हैं—जैसे बर्मा में।"

"जिसके पास भी शक्ति होगी वह तो उसका प्रयोग करेगा ही। शक्ति का मूल्य ही उसके प्रयोग में है" मैंने कहा।

"कोई किसी पर शक्ति का प्रयोग न कर सके, तभी शांति रह सकती है। अब भारतवर्ष स्वतन्त्र हो रहा है। देखो, इसमें कैसे नीति-नियम बनते हैं।"

"अगस्त में १५ से १६ तक हमारी छुट्टी है। उन दिनों स्वतन्त्रता की खुशियों मनाई जायेंगी।"

"स्वतन्त्रता मिली तो, पर भारतवर्ष को इसका बड़ा भारी मूल्य देना पड़ा है। भारतवर्ष के टुकड़े हो गये। यह कोई कम मूल्य नहीं?"

"इसमें कोई संदेह नहीं। आपको याद होगा गान्धी जी ने कहा था कि पहले मेरे टुकड़े होंगे और फिर भारतवर्ष के।" वास्तव में गान्धी जी को तो इससे इतना ही दुःख है जैसे उनके अपने टुकड़े हो गये हों?"

"तभी तो बापू बहुत खिन्न हो गये हैं। इससे उन्हें बहुत पीड़ा हुई है।"

"मुझे तो ऐसा लगता है कि अब महात्मा गाँधी अपनी पूरी शक्ति इसी में लगा देंगे कि हिन्दुस्तान और पाकिस्तान फिर एक हो जायें।'

"पर अब ऐसा होगा नहीं। विषमता इतनी बढ़ गई है कि दूर ही दूर होते जायेंगे। भाषा का ही प्रश्न है। बापू अब भी हिन्दुस्तानी के लिये कहते हैं। वे अब भी कहते हैं कि मैं हिन्दू मुसलमान दोनों का प्रतिनिधि हूँ, जब कि दूसरा व्यक्ति यह बात नहीं मानता।"

"बापू यह बात तो कभी भी नहीं कह सकते कि मैं हिन्दुओं का

प्रतिनिधि हूँ। उनकी तो जीवन भर की साधना ही इस पर आधारित है। अब इन अन्तिम दिनों में वे उसे किस प्रकार छोड़ सकते हैं ?''

"साधना तो व्यक्ति की अपनी है। वैसे वे मानव मात्र के प्रतिनिधि हैं। पर जहाँ तक उनकी प्रचारात्मक बात है उसे बदल देना चाहिये।"

"हाँ, यह तो ठीक है। यदि काँग्रेस की वही पुरानी policy of Appeasement चलती रही तो बहुत संम्भव है भविष्य में इस हिन्दुस्तान में से भी एक दूसरा पाकिस्तान खड़ा हो।"

"हो सकता है" इतना कह कर शांत हो गईं।

"काँग्रेस ने कोई भी रचनात्मक कार्य क्रम सामने नहीं रक्खा और इस युग में तो जो युग के साथ कदम नहीं रख सकेगी उस गली सड़ी चीज को जाना ही होगा !' मैंने कहा।

अब तक दस बज चुके थे। घर चलने की बात मन में उठी। यह तो राजनीतिक विषय था जिसे कितना ही बढ़ाया जा सकता है। उस प्रसंग को वहीं छोड़ कुछ क्षणों के बाद मैं बोला—

"पंत जी से मिलने जाने की सोच रहा था, पर पांडे जी की उस बात से कि बच्चन जी के प्रतिबन्धों से मिलना कठिन है, मन बुझ गया है !"

"नहीं किसी की बात पर इतनी जल्दी विश्वास नहीं करते, तुम जाना। यदि तुम्हारे साथ भी ऐसा ही व्यवहार हो तो ठीक है। यह तो हो सकता है कि सुबह से शाम तक आदमी उन्हें परेशान करते हों। वे कमजोर हैं। उनके स्वास्थ्य का ध्यान रख कर 'बच्चन' जी मना कर देते होंगे।'

"नहीं, मैं एक दम तो किसी की बात पर विश्वास करता नहीं. क्यों कि मैंने देखा है कि बहुत से मनुष्यों के विषय में जैसा सुना था, उनके Close Contact में आने पर उनको उसके बिल्कुल विपरीत पाया।"

"हाँ, मैं बीमार होती हूँ तो बहुतों को यहाँ से लौट जाना पड़ता है।"

"वे ही व्यक्ति बाहर जाकर कहते हैं, उन्हें बड़ा गर्व है।"

"पता नहीं, उन्हें इस प्रकार लौट जाने पर बुरा क्यों लगना चाहिये। मनुष्य को तभी बुरा लगता है जब उसके स्वार्थ को हानि

पहुँचती है। पर बहुत से व्यक्तियों को तो इसलिये दुःख होता है कि मैं बीमार हूँ। इसलिये नहीं कि उन्हें बिना मिले लौटना पड़ रहा है।"

"यह तो आदमी आदमी की अपनी अपनी बात है। जो व्यक्ति किसी के यहाँ अपने स्वार्थ को लेकर जाता है, उसका उठना, बैठना, बोलना चलना बातचीत करना एक दूसरे ही प्रकार का होता है। उसकी आँखों से उसके मन की बात छिप नहीं पाती।" मैंने कहा। मन तो यही कह रहा था ऐसे ही बैठे बैठे बातें करता रहूँ, पर उठना तो था ही। आज भी लगभग मैं २॥ घंटे बैठा, पर बाद का आधा घंटा सचमुच कभी भी भुलाया नहीं जा सकता। जिन बातों को कहने में हमारे चेहरे पर संकोच की रेखा खिंच जाती है उन बातों को वे कितने सहज भाव से कह जाती हैं, इस पर मुझे आश्चर्य हुआ। इस समय मुझे विक्टर ह्यूगो के उपन्यास ला मिजरेबिल की ये पंक्तियाँ याद आ रही हैं —

"She was much more a spirit than a woman. Her persou seemed formed of shadow, hardly body enough to say she had sex; a little substance containing light; a pretext for a soul to remain on earth."

और ये पंक्तियाँ महादेवी जी पर कितनी ठीक उतरती हैं।

मैंने आज्ञा ली। बरामदे में आया। सड़क पर तांगे वालों की दौड़ हो रही थी। आवाज वहाँ भी चली आ रही थी। मैंने कहा —

"आज तो सड़क पर तांगों की दौड़ हो रही है?"

"हाँ, दौड़ा रहे होंगे।"

"ये भी एक जुआ खेलने का ढंग है।"

"हाँ, बेचारे घोड़ों के मत्थे जुआ खेला जाता है। इसमें घोड़े मर भी जाते होंगे।"

'कभी कभी अवश्य मर जाते हैं।"

"मरते नहीं, तब भी कष्ट तो सभी को होता है।" करुणा भरे स्वर में महादेवी जी ने कहा। मैंने हाथ जोड़ कर प्रणाम किया और बिदा ली।

ग्यारह बजे घर पहुँच कर मैं सोचता सोचता ही सो गया।

मीरा ने वैवाहिक जीवन का उपभोग किया था या नहीं ? इस सम्बन्ध में आपकी क्या सम्मति है, लिखिएगा।

सश्रद्धा

शिवचन्द्र नागर

३४

३० ए. बेली रोड

प्रयाग

१।८।४७

आदरणीय 'मानव' जी,

२६।७ का पत्र मिला। दो लिफाफे आज सुबह डाल चुका हूँ। वे बेरंग होकर मिलेंगे।

वे कलाकार महिला तो बड़ी ही मौन रहने वाली महिला थीं। उन्होंने पूरे रास्ते भर किसी से भी बात नहीं की। कभी किसी से अपनी चीज इधर से उधर रख देने या ला देने के सिवाय वे नहीं बोलीं। आपके कथनानुसार शायद उनसे फिर कभी कहीं भेंट हो। आपके अधिकतर अनुमान सत्य ही उतरते हैं।

सचमुच बरसात की ये सुन्दर संध्यायें मिलकर चाय पीने के लिये हैं, पर उपयुक्त साथी के अभाव में इनका सौंदर्य कोई उत्फुल्लता नहीं लाता, मन को अवसाद में डुबा जाता है। पर फिर भी सुन्दरता तो सुन्दरता ही है। आपने ऐसा क्यों लिखा कि 'उस सुन्दरता का कोई अंश आपके लिये नहीं !'

'मैं थक गई हूँ,' यदि यह महादेवी जी की 'क्षणिक वृत्ति' ही है, तो इससे बड़े सौभाग्य की क्या बात हो सकती है। जहाँ तक साहित्यिक जीवन की बात है मैथिली शरण, निराला और पंत के विषय में तो कुछ नहीं कहा जा सकता, पर महादेवी जी के विषय में मेरा अपना विश्वास है कि वे चुपचुप कुछ न कुछ अवश्य कर रही होंगी। इतनी बात अवश्य है कि ये चारों व्यक्ति जैसा लिख चुके हैं, उससे अच्छा अब नहीं दे सकते। यूरोप के कलाकार ५० साल की उम्र के बाद अच्छा लिखते हैं और भारत के इससे पहले। यहाँ का कलाकार

अपनी कीर्ति और यश का तुमल नाद अपने कानों से सुन कर प्रोत्साहित नहीं होता बल्कि उससे उसकी गति शिथिल हो जाती है। शायद वह सोचने लगता है कि मुझे जहाँ पहुंचना था वहाँ पहुँच गया, और बस।

अब एक धारा दूसरी धारा में मिल रही है, इसीलिये ऐसा है। इसमें यदि कोई नवीन तारा उगेगा भी तो कुछ समय तक दिखाई नहीं देगा। कम से कम साहित्य में तो यह अव्यवस्था का काल है।

मेरा आशय निराला और शरत् के वाह्य व्यक्तित्व से था। 'लेखक को उसकी रचना में ही ढूँढ़ना ठीक है,' यह बात आपकी बिलकुल ठीक है। लेखक के आंतरिक व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति उसकी कलाकृति में ही ठीक से होती है।

साहित्य का प्रभाव मनुष्यों की मनोवृत्ति पर पड़ता है। शक्तिशाली साहित्यिक संसार भर के मनुष्यों की मनोवृत्ति बदलते आये हैं और बदलेंगे। उस मनोवृत्ति की नाप तौल करने वाले राजनीतिक हैं। उसी के अनुसार जगत के विधान का निर्माण करते हैं। यही कारण है कि संसार के जितने विधान हैं जितनी क्रांतियाँ हैं, उनका आधार साहित्यिकों ने तैयार किया है। अब भी ऐसा ही होगा। पर साहित्यिक जो देता है, उसका प्रभाव तात्कालिक नहीं होता। वह किसी भी देश की सभ्यता और संस्कृति को कहाँ से कहाँ लाकर पटक देता है! पर प्रगति इतनी धीमी होती है कि गति आँखों से नहीं पकड़ी जा सकती।

वर्षा की उस अँधेरी रात में अकेले देर से लौटने पर आपने ऐसा क्यों सोचा कि सच 'विरक्त प्राणी बड़े कठोर होते हैं। वे किसी के नहीं होते।' महादेवी जी का उस ओर ध्यान ही नहीं गया। वैसे वे बड़ी कोमल-हृदया हैं। पर उस दिन से इतनी बात अवश्य है कि यदि 'श्यामा' कहानी का स्थान 'महामाया' से ऊँचा नहीं तो नीचा भी नहीं है, ऐसा मुझे लगने लगा है। जिसने कभी ऐसी स्थिति देखी

नहीं, वह 'निराधार' की 'श्यामा' की स्थिति का अनुमान नहीं लगा सकता।

सश्रद्धा

शिवचन्द्र नागर

३५

२० ए० बेली रोड

इलाहाबाद

७।८।४७.

आदरणीय 'मानव' जी,

आपके ४।८ और ५।८ के पत्र क्रमशः ५।८ और ६।८ की संध्या को मिले।

'महादेवी जी असाधारण व्यक्तियों को दृष्टि में रख कर बात करती हैं' आपकी यह बात ठीक है, पर असाधारण व्यक्तियों के विषय में जो बात सत्य है, वह एक शाश्वत नियम नहीं बन सकती। सभी सिद्धान्त ऐसे सत्यों पर आधारित होते हैं जिनका सम्बन्ध एक साधारण मानव के जीवन से होता है। इन असाधारण व्यक्तियों के सत्य सत्य अवश्य हैं पर मनुष्य जीवन पर शासन करने वाले नियमों के अपवाद स्वरूप हैं।

कभी कभी जीवन में ऐसे ही दिन आ जाते हैं कि कुछ भी अच्छा नहीं लगता। पर यह स्थिति थोड़े ही दिनों तक चलती है। पर-कटा पक्षी जब अपनी इस विवशता की स्थिति से ऊब जाता है तो वैसे ही पंख फड़फड़ाने लगता है। उसकी इस क्रिया से नवीन पंख जल्दी ही निकलते हैं। फिर वह उड़ता है—दूनी शक्ति से और दूनी गति से।

आप मन से तो बहुत दिनों से बीमार हैं। अब शरीर से क्यों बीमार होना चाहते हैं? संघर्ष मार्ग में प्रवृत्त होने के दिन तो अब आये हैं। स्वतन्त्र भारत में एक विजयोल्लास लेकर जीवन आरम्भ करना होगा। १५ अगस्त से आपका एक नवीन जीवन आरम्भ होना चाहिये।

३।८ को मैं श्री सुमित्रानन्दन पंत से मिलने गया था। जिस समय

मैं 'बच्चन' जी के यहाँ पहुँचा, उस समय ५ बजने में दस पन्द्रह मिनट थे। पंत जी बाहर आये। नमस्कार हुई। फिर मैं अन्दर ड्राइंग रूम में आ गया। अन्दर आने पर पंत जी बोले 'Autograph' लेना है? मैंने कहा 'नहीं।' फिर कुछ क्षण रुके और बड़ी ही कोमलता तथा विवशता से बोले, "मैं लेट हो गया हूँ। मुझे पाँच बजे एक जगह जाना है। मैंने मुस्करा कर कहा "अच्छा, चले जाइयेगा। अभी जा रहे हैं?"

"हाँ, पाँच बजने में दस मिनट हैं।"

मैंने उन्हें अपनी "ज्योत्स्ना" की एक प्रति दी। उसे उन्होंने एक क्षण देखा, फिर अपने कमरे में जाकर उसे रख आये। बोले "अच्छा, मैं जारहा हूँ, क्षमा कर दीजियेगा, फिर कभी भी आ जाना, हाँ, ठीक है न?" बड़ी कोमलता से कहा। मैंने उसी कोमलता से उत्तर दिया, 'ठीक है, आप जाइये। फिर कभी आऊँगा।'

"हाँ, आना, जरूर आना।" कह कर चिक उठा कर बाहर चले गये।

आज पंत जी के जीवन में पहली बार दर्शन किये। अब वे स्वस्थ हैं। उनके फोटो से उनका शरीर कुछ भारी लगा। बाल उनके अब भी वैसे ही सुन्दर हैं, जैसे पहले थे, पर अब उनकी लटें श्याम न रहकर गंगा-जमुनी हो गई हैं। फिर भी काले और सफेद बालों में अनुपात लगभग ४:१ का होगा। एक पैंट और पूरी बाहों की कमीज़ पहने थे। पीछे से देखने पर अब भी वे ऐसे ही लगते थे जैसे कोई मेम हो। उनके चेहरे पर Smoothness अब नहीं रही, कदाचित् पहले रही होगी। जैसी कोमलता उनके काव्य में है, उठने बैठने चलने फिरने बातचीत करने में भी वे उसे छोड़ नहीं पाते। केवल पंत को छोड़ कर यह बात किसी में नहीं मिली। वे भीतर बाहर से एक से हैं।

मैं बैठा रहा। 'बच्चन' जी से मिलना था। 'बच्चन' जी का मैं एक सप्ताह के लिये विद्यार्थी अवश्य रहा था, लेकिन साहित्यिक परि-

चय उनसे बिल्कुल नहीं था। चालीस मिनट प्रतीक्षा करने पर वे अपने कमरे से ड्राइंग रूम में आये। 'ज्योत्स्ना' की प्रति 'बच्चन' जी को भी भेंट की। देखकर कहने लगे, 'ज्योत्स्ना' नाम का नाटकों का एक संग्रह पंत जी का भी तो था ?"

मैंने "कहा, हाँ, था, पर नाम मिल गया है। यह गीतों का संग्रह है।" मैंने पूछा—

"आपकी "मिलन यामिनी" कब निकल रही है ?"

बोले, "लगभग समाप्त तो हो चुकी, अब देखिये कब निकलती है, पर जल्दी ही निकलेगी। फिर बोले, "अच्छा, मैं इसे (ज्योत्स्ना को) देख लूंगा। फिर किसी दिन बातचीत होगी। पंत जी को भी दिखा दूंगा।"

"उनको मैंने दे दी है।"

"दो प्रतियों की क्या आवश्यकता थी ! एक ही ठीक थी। वे अपने साथ तो कुछ भी नहीं ले जायेंगे। सब यहीं छोड़ जायेंगे।"

"वे ले जायें चाहे छोड़ जायें; पर मैं तो अपनी चीज उन्हें पहुँचा चुका।" कुछ क्षण रुककर मैंने कहा, 'आप 'मिलन-यामिनी' के गीत सुनाइये।" बोले, "इस समय मैं कुछ काम कर रहा हूँ। फिर जब आप आयेंगे, तो सुनाऊंगा।"

"आप आजकल बहुत व्यस्त रहते हैं" मैंने कहा।

"हाँ, काफी काम करना पड़ता है। कुछ लिखता रहता हूँ, पढ़ता रहता हूँ, फिर शाम को Parade में जाना।" मैंने एक बात छेड़ी। कहा, "जब मैं यहाँ आया ही आया था, तो मेरे मन में यही एक प्रश्न उठा था कि Parade में आपका मन कैसे रम गया ?" इस पर बड़े गम्भीर होकर बोले, "मेरा मन कई तरह का है।" मैंने बिदा ली। मैं समझता हूँ मनुष्य का मन कई तरह का नहीं होता। मन तो एक ही तरह का होता है; पर परिस्थितियों के अनुसार नये-नये लिवास पहन लेता है। यदि बच्चन जी U. T. C की Parade कराते हैं, Mil-

itary discipline में रस लेते हैं तो यह उनका स्वभाव नहीं। स्वभाव तो उनका कुछ और है, जिसका आभास उनकी पुस्तकों में मिल सकता है। सच बात तो यह है कि विवशता के आगे नतशीश होकर जब मनुष्य घुटने टेक देता है तो कहने लगता है यही जीवन है।

सश्रद्धा

शिवचन्द्र नागर

३६

३० ए०, बेली रोड

इलाहाबाद

१८। ८। ४७.

आदरणीय 'मानव' जी,

परसों आपके पत्र की प्रतीक्षा की थी। कल तो मन घबरा सा गया। इन दिनों स्वभावतः व्यस्त रहे होंगे।

१५। ८ की संध्या को मैं डाक्टर साहब रमेशचन्द्र वर्मा के साथ चौक गया था। जैसे ही रात्रि का अन्धकार झुका कि चौक की प्रमुख सड़क लाखों वल्वों से जगमगा उठा। स्त्री बच्चे, युवा, वृद्ध सभी उमड़ पड़े थे। जनता में इतनी प्रसन्नता और उत्साह मैंने जीवन में कभी नहीं देखे थे। सचमुच इससे पहले शायद ही इलाहाबाद नगर कभी ऐसा सजा हो।

साढ़े आठ बजे हम घर की ओर लौट पड़े। भीड़ को चीरते हुये बढ़ रहे थे कि इतने में तीन चार सौ आदमियों की भीड़ का रेला आया। इनके शरीर नंगे थे। सब ने केवल मैली धोतियों के टुकड़े पहन रखे थे। उनके चेहरों पर भयंकरता थी, भय था, और साथ ही प्रसन्नता भी। वे महात्मा गाँधी की जय बोल रहे थे और जिधर उन्हें प्रकाश दीख रहा था, उधर ही बढ़े जा रहे थे, घुसे जा रहे थे भीड़ चीरते हुए—जैसे उनका कोई उद्देश्य न हो। ये जेल से छूटे हुये कैदी थे। इन्हें जेल की अन्धकार पूर्ण चहारदीवारी से यहाँ जन-समुदाय और

प्रकाश के समुद्र में छोड़ दिया गया था। इन्हें भय, निठुरता और गुलामी के शासन में से यहाँ, रंग बिरंगे दृश्यों, संगीत और स्वातंत्र्य के उल्लासमय वातावरण में छोड़ दिया गया था। मुझे डर लग रहा था कि कहीं उनमें से कुछ पागल न हो जायें, पर अब सोचता हूँ कि उनमें से कोई भी पागल होगा नहीं, क्योंकि भावुकता का उनमें लेश-मात्र भी शेष नहीं रह गया है।

उनमें से एक कैदी के गले में रुद्राक्ष के छोटे दानों की माला पड़ी थी, हाथ में एक लोटा था, उसके सिर के और उसकी मूंछों के बाल पक गये थे। मैंने उसका भुजदंड पकड़ कर उसे रोक लिया। पूछा, "भाई कितने साल की कैद थी?"

"अट्ठाइस साल।" उत्तर मिला और वह आगे बढ़ गया।

एक दूसरे को पकड़ कर यही प्रश्न किया तो बोला, "आठ साल।"

शायद "आठ साल" ही सबसे कम थे। अधिक का नम्बर शायद आजन्म कारावास तक पहुँचा हुआ हो। इन्हें क्षमा कर दिया गया है। मेरा यह विश्वास बना रहे कि शायद अब इनमें से कोई भी कभी अपराध न करेगा।

तत्पश्चात् हम महादेवी जी के यहाँ आये। महिला—विद्यापीठ की बाहरी दीवार पर नौकर दीये जला रहा था, पर अन्दर कुछ नहीं था। प्रतिदिन जैसा ही सब कुछ था। हम अन्दर बैठ गये। बातचीत करते रहे। अन्दर महादेवी जी किसी महिला से बातचीत कर रही थीं। थोड़ी देर में लीला द्वार पर आयी। उसके हाथ मैंने अपने आने की सूचना अन्दर भिजवाई। पन्द्रह मिनट बाद उस महिला को विदा कर, महादेवी ड्राइंग रूम में आयीं। प्रणाम कर हम लोग बैठ गये। बैठते बैठते बोलीं, "कहो भाई, क्या बात है?"

"सब ठीक है। आज तो इतनी प्रसन्नता है कि सहन करना कठिन हो रहा है" मैंने कहा।

"सहन करना कठिन हो रहा है?" महादेवी जी ने जरा हँस कर कहा और फिर गम्भीर हो गईं और बोलीं "कैसी प्रसन्नता है भाई!"

"यही, हम स्वतन्त्र जो हो गये।"

"भाई, यह जैसी स्वतन्त्रता और जितना कुछ देकर मिली है वह तो आज से दस साल पहले भी मिल सकती थी। आज से भारतवर्ष के दो टुकड़े हो गये।"

"इसका तो महात्मा गांधी जी को भी बहुत दुःख है। आज सब जगह तो पेट भर भर कर मिठाइयाँ खाई जा रही हैं और बापू जी आज Fast करेंगे। सचमुच आज गाँधी जी को बहुत दुःख है।"

"हाँ, वास्तव में तो टुकड़े आज के दिन से ही हुये।"

"आज वे दिन भर प्रार्थना करेंगे।"

"आज उनके लिये तो ऐसा ही है जैसे उनके शरीर के टुकड़े हो गये हों, और फिर यह सब उत्सव अच्छा नहीं लगता। एक ओर तो ऐसे व्यक्ति हैं जिनका सब कुछ स्वाहा हो गया। उनके घर का कोई भी नहीं बचा। जब पंजाब तथा बंगाल के व्यक्ति यह सुनेंगे कि ऐसी खुशियाँ मनाईं गई तो उन्हें कैसा लगेगा? मेरे यहाँ तो ऐसी विद्यार्थिनियाँ हैं। उनके दुःख के सामने हम यह उत्सव मनाते हुये कैसे लगेंगे?"

"पर ऐसा तो कभी भी नहीं हो सकता कि सभी प्रसन्न हों। यह तो रहता ही है कि कोई प्रसन्न है तो कोई दुःखी!"

"मेरी बात इससे बिल्कुल दूसरी है। वैसे तो संसार में लगा ही रहता है कि कोई सुखी और कोई दुखी है, पर यदि एक घर में विवाह हो और पड़ौस में किसी की मृत्यु हो गई हो, तो विवाह के बाजे-गाजे कैसे लगेंगे? दुख सुख से अधिक व्यापक होता है। सुख को दुख के नीचे दब जाना पड़ता है। दुख के सामने सुख जब अट्टहास करता हुआ निकलता है तो वह केवल उपहास मात्र है। इस प्रकार का सुख तो अशिष्टाचार है।' वे धारा-प्रवाह बोलती रहीं, और मैं एकटक

उनकी ओर देखता रहा। उनके सिर के बाल सँवरे हुये न थे जैसे यौंही हाथ से ऊपर को कर लिये हों; पर आज जो उन्होंने खद्दर की धोती पहन रक्खी थी उसकी कन्नी तिरंगी थी। रंग कुछ हलके थे। मैंने कहा,

"इस धूमधाम की बड़ी आवश्यकता थी। लोगों के दिलों में गुलामी ने इतना गहरा प्रवेश पा लिया है कि उसको निकाल भगाने के लिये जोर से ढोल बजाने की आवश्यकता थी ही।"

"इससे गरीब आदमी को क्या फायदा हुआ? हजारों रुपये इसमें फूंक दिये जायेंगे, पर गरीब आदमी वही भूखा का भूखा और नंगा का नंगा ही रहेगा। आज ही मैंने एक गाँव के आदमी से पूछा, 'भाई आज यह क्या हो रहा है!' बोला, 'जवाहर लाल को गद्दी हो रही है।' जब तक उसकी दैनिक आवश्यकतायें पूरी नहीं हो जातीं, तब तक उसके लिये ऐसी स्वतन्त्रता का कोई मूल्य नहीं। शिक्षा के लिये तथा और दूसरी बातों के लिये तो कह दिया जाता है कि यह Poor man's Bu[illegible] है पर अपने आप अर्थ का मोह बिल्कुल नहीं छोड़ा जाता। गवर्नर ६००० रु० महीने वेतन लेगा और वह भी Income Tax से exe[illegible] फिर इसमें और पहले में क्या अन्तर रह गया? बड़े-बड़े Min[illegible], M. L. A' S, बड़ी-बड़ी बिल्डिगें खरीद रहे हैं, प्लोट्स खरीद रहे हैं, एक साल में ही उनके पास यह इतना रुपया कहाँ से आ गया? यह मैं मानती हूँ कि इन लोगों ने त्याग किया है, पर यदि उस त्याग की कीमत ले ली, तो फिर ऐसे त्याग का क्या मूल्य रह गया?"

"कुछ भी नहीं," मैंने कहा।

'आज आप किसी minister से मिलने जाइये, तो मिलने में वे ही सैकड़ों बाधायें जो पहले थीं तुम्हारा रास्ता रोक लेंगी और तुम अपनी आवाज वहाँ तक नहीं पहुँचा सकते।

"बात यह है कि हाथ में शक्ति आने पर ऐसा ही हो जाता है। पर यह धूमधाम इस समय तो आवश्यक थी ही।"

"पर यह है तो आडम्बर ही, क्योंकि कोई वास्तविक परिवर्तन नहीं हुआ। यदि कोई परिवर्तन हुआ भी है तो उसका अनुभव चोटी के लोगों ने किया होगा, नीचे के आदमी ने तो कुछ नहीं।"

"माना कि यह आडम्बर है, पर कभी-कभी आडम्बर का भी तो मूल्य होता है।"

"ऐसे आडम्बर से कोई स्थायी लाभ कुछ नहीं होता।"

"स्थायी लाभ तो तभी होगा जब नीचे के लोगों का Standard उठाया जायगा और ऊपर के लोगों को गिराया जायगा।"

"पर कांग्रेस से यह कभी नहीं हो सकता। काँग्रेस बिरलाओं और डालमियांओं का विरोध नहीं कर सकती।"

"यदि नहीं कर सकती तो फिर उसका काम अब समाप्त हो गया समझिए "मैंने कहा।"

"देखो आगे क्या होता है, पर अब तो टुकड़े टुकड़े हो ही गये। इसमें सिक्खों को बड़ी हानि उठानी पड़ी है। बेचारे दो विभागों में बँट गये। ८ प्रतिशत एक ओर और ६ प्रतिशत एक ओर।

"पर फिर भी गांधी जी के लिये दुःखी होने का कोई कारण नहीं। एक बार गांधी जी ने किसी को पत्र लिखा था उसमें लिखा था कि यदि एक Community का बड़ा भाग अलग रहना चाहता है तो उसे कौन रोक सकता है। मुसलमान अलग होना चाहते थे वे अलग हो गये।"

"पर ऐसा है कहाँ? फ्रांटियर में ही उन्हें ५० प्रतिशत से कुछ अधिक Votes तब मिले हैं जब मरे हुए दादा परदादा वोट देने आ गये और एक एक आदमी ने ग्यारह ग्यारह बार वोट दिये। और वहाँ घोर झूठा प्रचार करने के बाद इतना हो पाया!"

"यह तो बात ठीक है।" मैं इतना कह कर चुप हो गया। डाक्टर साहब सामने वाले सोफे पर चुपचाप बैठे थे। अब वे बोले—

"पर यह तो मानना ही पड़ेगा कि फ्रान्टियर को छोड़कर और सब जगह के मुसलमानों की majority लीग के साथ थी।"

"यह माना लीग के साथ थी, पर काँग्रेस को लीग के सामने नहीं झुकना पड़ा, बल्कि थोड़े से लोगों की बर्बरता के आगे झुकना पड़ा है।"

"यह बात ठीक है, पर उसके पीछे शक्ति majority की थी। जनता की शक्ति के सामने झुकना पड़ता है। यदि यह बात न होती तो हम तो तब जानते जब आसाम में लीग अपनाDirect Action सफल करके दिखलाती" डाक्टर साहब ने कहा। फिर मैं बोल पड़ा, "नहीं, एक बात और है। भारतवर्ष के Division की बात यदि ये लोग न मानते, तो स्वतन्त्रता की बात अभी दस साल आगे पहुँच जाती।" इस पर महादेवी जी ने कहा—

"राजनीति शतरंज का एक खेल है। एक चाल चूक गये कि फिर वह चाल कभी नहीं आती।"

"पर अब टुकड़े हो जाने से इतना तो लाभ हुआ कि हिन्दुओं की उन्नति में मुसलमान बाधक नहीं हो सकते और मुसलमानों की उन्नति में हिन्दू बाधक नहीं हो सकते।"

"अब देखते रहो। लाभ कुछ नहीं हुआ, फ्राँटियर पर Defence के लिये हिन्दुस्तान को फौज रखनी पड़ेगी। पाकिस्तान कह सकता है कि हमें तो कोई डर नहीं हम तो Defence के लिये फौज नहीं रखते, क्योंकि उन्हें डर है भी नहीं। कोई मुसलमान देश किसी मुसलमान देश पर हमला नहीं कर सकता और यदि किसी मुसलमान देश ने कभी हिन्दुस्तान पर आक्रमण किया तो पाकिस्तान रास्ता देगा।"

"अभी तो सम्भव नहीं।" डाक्टर साहब ने कहा।

"हाँ, अभी तो दस-पन्द्रह वर्ष तक ऐसी सम्भावना नहीं कि कोई मुसलमान देश आक्रमण कर सके" महादेवी जी ने कहा।

"आज से गांधी जी की नवीन साधना आरम्भ होती है। अब

वह अपना पूरा जीवन हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के एक करने में ही लगा देंगे और हिन्दुस्तान एक हो कर रहेगा" मैंने कहा।

"यह आप लोगों का सपना ही सपना है। अब कभी एक न होगा। अब तो दोनों का बिल्कुल विभिन्न धाराओं में विकास होगा और अन्तर बढ़ता ही जायेगा। एक होनेके लिये कोई एक आधार तो होना चाहिये ?"

"धर्म के आधार पर तो वे कभी न तो एक हो सकते थे और न होंगे, अब आर्थिक आधार एक पर हो सकते हैं।"

"अर्थ के आधार पर भी नहीं हो सकते, क्योंकि आर्थिक समस्या भी जो हमारे यहाँ की है वह उनके यहाँ की नहीं। उनके यहाँ capitalists नहीं हैं हमारे यहाँ हैं। अभी मैंने रामगढ़ में देखा पठान मजदूर दिन में वहाँ सड़क बनाने का काम करते थे और खाने के समय वहाँ अमीर मुसलमान रहते हैं उनके यहाँ खाना खाते थे। एक ही दस्तरखान पर अमीर मुसलमान और मजदूर खाना खा सकते हैं, इसलिये उनका सामाजिक ढाँचा ऐसा है कि गरीब अमीर का जो अन्तर है वह तीव्र रूप में सामने नहीं आता।"

"पहली चेतना हमेशा धार्मिक होती है। यूरोप में भी पहली चेतना धार्मिक थी। भारतवर्ष में भी हिन्दुओं में पहली चेतना धार्मिक थी। विवेकानन्द हुए, दयानन्द हुए। इसी प्रकार धार्मिक चेतना के बाद फिर हिन्दुओं में राष्ट्रीय चेतना आई। मुसलमान हिन्दुओं से एक स्टेज backward रहे हैं। जब हिन्दुओं में राष्ट्रीय चेतना थी, उस समय मुसलमानों में धार्मिक चेतना थी और जिन्ना ने उसी को Exploit किया। अब पाकिस्तान मिल जाने पर जिन्ना ने अपने पहले भाषण में ही कहा है कि : "Hindus should forget that they are Hindus and Muslims should forget that they are Muslims and both should be loyal to the Pakistan Government." जब उनमें राष्ट्रीय चेतना जगेगी तब बहुत सम्भव है पाकिस्तान और हिन्दुस्तान एक हो जायें।" डाक्टर साहब ने कहा।

"हाँ, Pak Assembly में जिन्ना का पहला भाषण तो सचमुच ऐसा है कि लगता है जैसे जिन्ना के मुख से गाँधी जी बोल रहे हैं।" मैंने कहा। इसके बाद ही डाक्टर साहब बोल पड़े, "आप कहती हैं कि भारतवर्ष के दो टुकड़े हो गये, पर इससे पहले भी भारतवर्ष कब एक रहा है? मुगलों के ज़माने में उससे पहले तीन तीन चार चार Independent राज्य रहे हैं। यदि उस दृष्टि से देखा जाये तो India is tending towards Unification. अब तो दो ही हैं।"

"यह तो नहीं कहा जा सकता कि भारतवर्ष एक नहीं रहा। अशोक के जमाने में ही एक था।" महादेवी जी ने कहा।

"एक अवश्य था, पर वह Unity, imposed थी, इसीलिये अशोक की मृत्यु के बाद ही समाप्त हो गई, पर जो यूनिटी जनता द्वारा स्थापित होगी, वह चिरस्थायी होगी। यह दो भाग इसीलिये हुये हैं कि जनता चाहती थी। यदि भविष्य में जनता चाहेगी तो दोनों एक भी हो सकते हैं।" डाक्टर साहब से कहा।

"गाँधी जी एक करके छोड़ेंगे। उन्होंने १५ अगस्त से ही कलकत्ते में अपना काम शुरू कर दिया। पर कल तो लड़कों ने उनको बड़ा परेशान किया कि Gandhi ji go back, Gandhi ji go back," मैंने कहा।

"पंजाब में भी ऐसा ही हुआ था। अब गाँधी जी का प्रभाव घट रहा है। पहले भी गाँधी जी का विरोध हुआ है, पर ऐसा कभी नहीं। गाँधी जी भी तो ऐसी ही बातें करते हैं। हरिद्वार गये तो वहाँ बेचारे शरणार्थियों को धमका आये कि कुछ काम करो और अपने अपने घर को लौट जाओ। भाई वे क्या करें? आप उन्हें काम दीजिये। और बेचारे वे वहाँ तभी तो आये हैं, जब उन्हें कोई आशा नहीं रही। कितनों के माँ-बाप भाई-बहिन पत्नी-बच्चे मारे गये, माल लुट गया। जब सुरक्षा नहीं थी तभी तो वे वहाँ से भागे और अभी सुरक्षा वहाँ है कहाँ, जो चले जायें?" महादेवी जी बोलीं।

"हाँ, पंजाब-बंगाल के हिन्दू उनसे बहुत नाराज हैं और बात है भी बहुत स्वाभाविक। यदि मैं हूँ और मेरे माँ-बाप या भाई- बहिन को मार दिया गया है तो मैं तो उस मारने वाले की जान लेने को तैयार रहूँगा ही और उस समय यदि कोई मुझे ऐसा करने से मना करेगा तो वह मुझे शत्रु ही दिखाई देगा।"

"हाँ, यह तो बात है ही। क्रोध में बुद्धि पर शासन नहीं रहता। पर गाँधी जी भी तो हिन्दुओं को दबाने के लिये तो कड़ी से कड़ी बात कह देते हैं, पर मुसलमानों के लिये नहीं।"

"वह यह समझते हैं न कि मैं हिन्दू हूँ और मुसलमानों के लिये कोई कड़ी बात कहूँगा तो लोग कहेंगे कि हिन्दुओं का पक्षपात करते हैं।"

"तो मैं हिन्दू हूँ, यह बात वह नहीं भुला पाते ! हमें तो हमेशा यह ध्यान रहता नहीं कि हम हिन्दू हैं। बचपन में भी हमने तो देखा है कि जब हम इन्दौर में रहते थे तो हमारे पड़ौस में एक मुसलमान रहते थे। वे किसी नवाब के वंशज थे। उनका एक लड़का था। राखी पूनों के दिन हम लोगों को जरा देर हो जाये तो बेगम साहब हमें घर से बुलवाया करती थीं। राखी बाँध देने के बाद वे हमको चूड़ियें और जाने क्या-क्या चीज़ें दिया करती थीं। पता नहीं हमारा वह भाई तो अब न जाने कहाँ है ?" महादेवी जी ने कहा और क्षण भर रुक कर बोलीं, "ये तो इतना विष इन दिनों ही देखा गया कि एक जाति ने दूसरी जाति पर इतने अत्याचार किये हैं।"

डाक्टर साहब बोल पड़े, "महासभा में भी शक्ति नहीं है क्योंकि महासभा के पीछे जनता नहीं, यही कारण है कि देखिये महासभा का Direct Action तीन दिन में ही फेल हो गया और लीग को सफलता मिली, क्योंकि उनके पीछे जनता की शक्ति थी। अब शायद सोशलिस्ट पार्टी Power में आये।"

"पर सोशलिस्ट पार्टी के पास Followers कहाँ हैं?" महादेवी जी ने पूछा।

"जयप्रकाश नारायण इत्यादि नेता तो बहुत अच्छे हैं।" डाक्टर साहब ने कहा।

"पर कांग्रेस से अलग तो अभी जयप्रकाश नारायण का कोई अस्तित्व नहीं।" महादेवी जी ने कहा।

"यह वह जानते हैं तभी तो अभी तक उन्होंने कांग्रेस से इस्तीफा नहीं दिया। पर पहले तो कांग्रेस भारतवर्ष की आजादी के Issue पर सब को एक कर लिया करती थी, पर अब वह बात तो रह नहीं गई। अब तो यदि जनता की Demand पूरी नहीं होती तो उसकी उत्तरदायी कांग्रेस होगी। आर्थिक समस्या यदि कांग्रेस हल न कर सकी, तो फिर तो जनता सोशलिस्ट पार्टी का साथ देगी ही।" डाक्टर साहब ने कहा।

"हाँ, यह तो बात ठीक है।" महादेवी जी बोलीं। मैंने महादेवी जी की ओर मुड़ कर पूछा, "कम्यूनिस्ट पार्टी के बारे में आप के क्या विचार हैं?" बोलीं, "कम्युनिस्ट पार्टी के Workers तो बड़ी लगन के साथ काम करने वाले हैं, पर नेता कोई नहीं।"

"नहीं ये लोग अनुकरण करते हैं रूस का, पर रूस की परिस्थितियाँ अलग हैं और भारत की अलग। ये इतना नहीं देखते।"

"अब कोई नेता तो है नहीं इसलिये बेचारों को जो इनके बाबा दादा लेनिन-मार्क्स-स्टालिन कहते हैं उसी पर चलना पड़ता है।"

"नहीं, इनमें Contradictions बहुत हैं। १९३१ ई० की Independent struggle में इन्होंने बूर्जुवा Struggle कह कर भाग नहीं लिया। १९४२ में भी अलग रहे और यही कहते रहे कि यह साम्राज्यवादी शक्तियों की लड़ाई है इससे अलग रहो। पर रूस के युद्ध में आते ही Allies की सहायता की पुकार करने लगे। पहले सुभाष बोस तथा

I. N. A को Fifth columnist और Traitor कहा और फिर बाद में I. N. A Day भी मनाया।" डाक्टर साहब ने कहा।

'भाई Contradictions तो सभी जगह हैं। Contradictions कहाँ नहीं? कांग्रेस में क्या कुछ कम हैं? अभी तो पहले citizen India, United India चिल्लाते रहे फिर Divided India मान लिया।"

"वह तो उन्होंने इसलिये मान लिया कि इस समय उनके दृष्टिकोण से भारत का इसी में हित था पर कम्यूनिस्ट तो भारत से पहले रूस के हित का ध्यान रखते हैं" डाक्टर साहब ने कहा।

"राजनीति में सब ऐसे ही चलता है। कोई किसी के हित का ध्यान नहीं रखता। सब अपनी अपनी पार्टी के हित का ध्यान रखते हैं।" महादेवी जी ने कहा।

"नहीं, जब कभी आवश्यकता पड़ी, तब कम्यूनिस्टों ने लड़ाई नहीं छेड़ी, पर जब आवश्यकता नहीं थी तब शुरू की।" डाक्टर साहब ने कहा और साथ ही मैं बोल पड़ा, "अभी देख लीजियेगा, दस पन्द्रह दिन पहले कांग्रेस के विरुद्ध थे, पर रूस से Ambassadorial exchange हो जाने पर नीति बदल दी। चिल्लाने लगे, संयुक्त मोर्चा कायम करो। संयुक्त मोर्चा कायम करो।" इसके साथ ही मैंने महादेवी जी से कहा, "एक संस्था राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ भी तो है। उसका नाम भी आपने सुना या नहीं?"

"हां, सुना तो है।"

"वे कहते हैं कि भारत वर्ष हिन्दुओं का है। मुसलमान विदेशी थे। इनको निकाल बाहर करो। ये यदि यहाँ रहें भी तो यहाँ के citizen नहीं हो सकते।"

"भाई, यह बात तो ठीक नहीं। इस तरह से तो हम भी विदेशी हैं। हम भी तो मध्य एशिया और ईरान से आये थे। तो फिर तो भारत यहाँ के Aboriginals को मिलना चाहिये।" इस पर मुझे हँसी आ गई।

कुछ क्षणों तक ऐसे ही शांति रही और हिन्दुस्तान की राजनीति तथा राजनीतिक पार्टियों से संबंधित बात यहीं समाप्त हो गई।

मेरे तो कभी यह बात ध्यान में भी नहीं आई थी कि सभी पार्टियों की policies के बारे में उन्हें इतना ज्ञान होगा और वे उसमें भी interest लेती होंगी। पर आज उन्होंने राजनीति में भी साहित्य जैसा ही interest लिया।

अब साहित्यिक बात प्रारम्भ हुई। मैंने कहा, "निराला जी आये हुये हैं। सुना है डा० ब्रजमोहन गुप्त के यहाँ ठहरे हैं। एक दिन मैं उनसे मिलने जाने की सोच रहा था। पिता नहीं गुप्त जी का घर कहाँ है?"

"अब तो वे वहाँ से अपने घर दारागंज चले गये। अभी तीन दिन हुए मेरे पास आये थे। उनके घर की ताली मेरे पास थी। आकर बोले, 'लाओ मेरी ताली।' मैंने ताली दे दी। उनके घर पर एक बार मैंने एक कुर्सी और एक मेज पहुँचवा दी थी। बोले, 'अपनी कुर्सी मेज मँगवा लेना।' मैंने कहा, 'मुझे तो कोई जरूरत नहीं। आ जायेगी।' वे ताली लेकर चल दिये। थोड़ी दूर गये होंगे कि फिर लौट आये। बोले, "लो ताली। मैंने ताली ले ली।" अब आज दारागंज से उनकी चिट्ठी आयी है कि मैं सकुशल घर पहुँच गया। पता नहीं ताला तोड़ कर पहुँचे या घर फोड़ कर। कल उनके यहां जाऊंगी।"

निराला जी की बात पर बड़ी हँसी आयी। हँसते-हँसते मैंने पूछा, "निराला जी, आजकल लिख क्या रहे हैं?"

"पहले तो रामायण का खड़ी बोली में अनुवाद कर रहे थे, पर अब कुछ गद्य में लिख रहे हैं।"

मैंने पंत जी के विषय में बात छेड़ी :

"एक दिन मैं पंत जी से मिलने गया था। उस समय वे कहीं जा रहे थे। बात तो कुछ हुई नहीं। केवल अपनी 'ज्योत्स्ना' की एक प्रति उन्हें देकर मैं लौट आया। फिर अब तीन दिन हुए 'विचारक परिषद'

में पंत जी आये थे। वहाँ उनकी कवितायें सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। पहली कविता उन्होंने सुनाई थी 'चिन्तन', जिसकी पहली पंक्ति थी—'दुःख में मन करता चिन्तन, सुख में जीवन दर्शन।' उनकी दूसरी कविता थी 'अगुंठिता।' उसमें एक स्त्री यही कहती है कि देह और स्नेह साथ-साथ नहीं चल सकते। तीसरी कविता थी 'हिमाद्रि और समुद्र।' उसमें हिमालय का बहुत सुन्दर वर्णन है और समुद्र का भी। फिर उन्होंने अशोक-बन सुनाया। एक छोटा खंड-काव्य ही कहा जा सकता है उसे। उसमें अशोक बाटिका से अग्नि प्रवेश तक सीता जी का चित्रण है। सीता जी प्रकृति से परा प्रकृति को लौट जाती हैं। चेतन से उपचेतन में विलीन हो जाती हैं। स्वर्ग से भगवान राम आये थे और धरा से सीता जी। दोनों थोड़ी सी लीला के उपरान्त अपनी-अपनी प्रकृति को लौट जाते हैं। आपने तो सुना होगा?" मैंने पूछा।

"हाँ सुना है। यहाँ आये थे तो बड़ी दर्शन की बातें कर रहे थे। कह रहे थे भारत का ही तो है सब कुछ। एक हम ही तो हैं जो शुरू से ही अपने मार्ग पर रहे, ये (पंत जी) तो छोड़ कर चले गये थे। अब फिर लौट कर वहीं आ गये न?"

"नहीं,, अब तो उन्होंने अंतर्जगत और बहिर्जगत का समन्वय कर दिया है। बात यह है कि रूस का कम्यूनिज्म तो सब कुछ बहिर्जगत को ही माने बैठा है और भारत की विचार धारा अन्तर्जगत को ही सब कुछ समझे बैठी हैं। दोनों Extreme Views हैं। अब पंत जी ने इन दोनों का समन्वय कर दिया है। उनकी एक कविता "इन्द्रधनुष" है उसमें उन्होंने इसी भाव का प्रतिपादन किया है कि यदि जीवन में दोनों का सामंजस्य होगा तो जीवन ऐसा ही सुन्दर होगा जैसे इन्द्रधनुष जिसमें धरा के Elements भी होते हैं और स्वर्ग के भी, जो धरा को भी छूता रहता है और नभ को भी।"

"तब तो फिर वे ठीक मार्ग पर आ गये।"

"पंत जी की ये दोनों पुस्तकें 'स्वर्ण किरण' और 'स्वर्ण धूलि" बहुतLik की जायेंगी,पर इसमें कोई सन्देह नहीं पंत जी कोमल बहुत हैं। जब परिषद् की मीटिंग समाप्त होगई तो प्रकाश का कोई प्रबन्ध नहीं था। जैसे ही पंत जी ने अन्धकार में पैर रक्खा कि उनके मुंह से निकला, "बच्चन कहाँ हैं।" 'बच्चन' जी तुरन्त आये। उनकी दायीं भुजा पकड़ कर धीरे-धीरे आगे बढ़े। मैं अपने आप ही बांयी ओर आ गया। इस तरह धीरे-धीरे पंत जी ने वह अन्धकार का समुद्र पार किया। आप सच समझिये कि पंत जी को अन्धकार में छोड़ कर यदि चल दिया जाये, तो वे प्रकाश होने तक वहीं बैठे रहेंगे। कदाचित् ही निकल पायें।"

"परसों मैं भी संसद् में प्रतीक्षा करती रही। खाना बनवाया, पर वे आये नहीं। शायद आये हों और आधे रास्ते से ही न लौट गये हों।" महादेवी जी ने हँस कर कहा! मैं बोला, "इसमें कुछ आश्चर्य नहीं, जरूर लौट गये होंगे।"

अब दूसरी बात छिड़ी। मैंने कहा, "हिन्दी में पत्र पत्रिकाओं की बड़ी बाढ़ आ रही है। केवल अपने यू. पी. से ही २०,२५ पत्रों का नया Declaration है।

"सब पत्र बिरला और डालमियाँ खरीदे जा रहे हैं।"

"यह इसलिये है कि पत्रों में इनका प्रचार हो और जनता की आवाज दबाई जा सके।" मैंने कहा। डाक्टर साहब बोल पड़े, "सुना है बम्बई में इन Capitalists की एक बड़ी भारी concern खुल रही है जिसमें पूरे भारतवर्ष के अच्छे लेखकों को निमंत्रित किया जायेगा और वहाँ उनके रहने-सहने खाने-पीने इत्यादि की सभी सुविधाओं का प्रबन्ध भी वे ही करेंगे और इस प्रकार वे सोचते हैं कि हम लेखकों का मुँह बन्द कर सकेंगे।"

"कुछ भी हो पर अभी हिन्दी का लेखक इतना नहीं गिरा। अर्थाभाव के कारण वह चकनाचूर हो गया है, अपने में ही टूट गया है,

पर ऐसा उसने कभी नहीं किया। हमारी यू. पी. गवर्नमेन्ट ने २५ हजार रुपया लेखकों की सहायता के लिये रखा है और वह लेखक के आवेदन-पत्र पर दिया जायगा, पर अभी तक एक भी आवेदन-पत्र उनके पास नहीं पहुँचा। कोई साहित्यिक तो ऐसा कर नहीं सकता, कदाचित् कोई कलम पकड़ने वाला ऐसा कर दे, तो कर दे" महादेवी जी ने कहा।

मैं डाक्टर साहब की ओर मुड़ा, बोला "अपने 'टेढ़े मेढ़े रास्ते' पढ़ा है?"

बोले, "मैं पढ़ने बैठा था, पूरा नहीं पढ़ पाया। यह राजनीतिक उपन्यास है पर इसमें उन्होंने एक साहित्यिक chapter भी रखा है। उसकी कोई आवश्यकता तो थी नहीं।"

"वह बात तो उनके मन में पहले से ही थी। जानबूझ कर किसी एक जगह ठूंस दिया होगा।"

"पता नहीं, ये लोग कैसा लिखते हैं कि ऐसी बात नहीं होती जैसी शरतचन्द्र के उपन्यासों में है कि पढ़ रहे हैं तो फिर समाप्त होने तक छोड़ने को मन नहीं करता। मैं इलाचन्द जी का 'निर्वासित' पढ़ रहा था उसमें भी यही बात है।" डाक्टर साहब ने कहा।

"हाँ, इलाचन्द जी न जाने कैसी भाषा लिखते हैं। मुझे तो ऐसा लगता है कि उन्होंने कदाचित् अपना एक समय नियत कर रखा होगा कि प्रतिदिन सात से दस तक उपन्यास लिखेंगे। अब दिन भर तो लीडर प्रेस में काम करते होंगे और फिर थोड़ा आराम लेकर उपन्यास पर जुट जाते होंगे।"

"हाँ, भाई, इतना तो काम करना ही पड़ता होगा, पर उनकी भाषा यही स्वाभाविक है।" महादेवी जी ने कहा और डाक्टर साहब बोल पड़े, "एक बात समझ में नहीं आती कि जोशी जी के [illegible]acters विकृत से क्यों हैं? इनके 'प्रेत और छाया' में भी यही बात थी और 'निर्वासित' में भी वही।"

"इनके उपन्यास तो मनोवैज्ञानिक होते हैं और यदि वे Normal

Characters लें तो कल्पना से उस पर इतना तानावाना नहीं बुना जा सकता। इसलिये वे Abnormal Characters लेते हैं।"

"ऐसा ही इनका Description देखिये। कलाकार के तो suggestions होते हैं और कहीं-कहीं सुन्दर Touches होते हैं। पर जोशी जी Description देंगे तो उसमें सब कुछ देंगे जैसे एक तांगा चला जा रहा था, वह ऐसा था, उसके पहिये ऐसे थे, व ऐसी आवाज कर रहे थे, यह बात इनमें बहुत पाई जाती है।" डाक्टर साहब ने कहा।

"हाँ, यह बात तो है।" महादेवी जी ने कहा। मैं बोल पड़ा, "उस दिन पांडे जी कह रहे थे कि शरतचन्द्र के टक्कर का हमारे यहाँ ओंकारनाथ 'शरद्' लिखते हैं। मैंने तो इससे पहले इन महाशय का नाम तक नहीं सुना। आप बतलाइये आपने इनका कुछ पढ़ा है?"

"नहीं, पांडे से ही नाम सुना है।"

"तो बतलाइये ये शरतचन्द के टक्कर का लिखते हैं?"

तो हँस कर कहने लगी "अरे भाई, वैसे ही कह दिया होगा, क्योंकि ये भी तो 'शरद्' हैं न!"

"नहीं वे Seriously कह रहे थे।"

"शरत्चन्द के चरित्रों का एक विशेष वातावरण में विकास होता है और वे एक विशेष प्रकार का भाव प्रतिपादित करते हैं। यदि उन चरित्रों को उस विशेष वातावरण से अलग कर दिया जाये तो वे कुछ भी नहीं। वे हृदय पक्ष को अधिक अपील करते हैं। यदि उनका एक बुरा पात्र है तो वह भी एक विशेष वातावरण में आपकी सहानुभूति का पात्र बन जाता है। ये लोग इसमें विश्वास नहीं करते। ये कहते हैं कि जीवन में जैसा देखा जाये वैसा ही चित्रित कर दिया जाये।"

"तो फिर कलाकार ने अपना क्या दिया?" डाक्टर साहब ने पूछा।

"वे परिस्थितियों का चित्रण करते हैं और विचारधारा पाठकों को सोचने के लिये छोड़ देते हैं।"

"हमारा तो ऐसा विश्वास है कि कुछ भी हो पर ऐसा होना चाहिये जो मानवता को ऊपर उठाये। शरतचन्द्र में यह बात है।"

"मानवता को ऊपर उठाने वाला तो होना ही चाहिये यह तो मैं भी मानती हूँ!" महादेवी जी ने कहा। इतने में, लीला आई और अन्दर दरवाजे के पास चुपचाप खड़ी हो गई। महादेवी जी ने उसे देखा, बोलीं, "क्यों लीला, क्या बजा है?"

"साढ़े ग्यारह।" उसने कहा।

"अरे। ...." डाक्टर साहब के मुँह से निकला और हम खड़े हो गये। इस के बाद कोई कुछ नहीं बोला। महादेवी जी बरामदे तक आई। हम लोग घर की ओर चल दिये।

अगले दिन प्रभात में डा० रमेश भाई से फिर भेंट हुई। बात ही बात में मैंने उनसे पूछा, "आप को महादेवी जी कैसी लगीं?" बोले, "मैं और तो कुछ नहीं कह सकता पर इतनी बात अवश्य है कि 'She is the embodiment of nobility.'

सश्रद्धा
शिवचन्द्र नागर

३७

२० ए० बेली रोड
इलाहाबाद
२०। ८' ४७

आदरणीय 'मानव' जी,

घनी प्रतीक्षा के बाद कल आप का पत्र मिला। एक पत्र मैंने आज ही सुबह लिख कर समाप्त किया है। वह और यह आपको साथ-साथ ही मिलेंगे।

हर्ष में समय व्यतीत हुआ मालूम नहीं देता। १४ से १९ तक की छुट्टियाँ समाप्त हो गईं, पर ये पाँच छः दिन एक दिन की तरह बीत गये। १५ अगस्त के सुरम्य प्रभात में एक लाख का जन-समुदाय

गवर्नमेंट हाउस की ग्राउन्ड पर एकत्रित हुआ और जय-जय नाद के बीच श्री सम्पूर्णानन्द जी ने राष्ट्रीय पताका फहराई। उस समय मेरा शरीर रोमांचित हो उठा। हमें कोई साकार वस्तु नहीं मिली है, पर फिर भी ऐसा लगता है कि पृथ्वी आकाश सब बदल गये हों, समस्त वातावरण ही बदल गया हो। आज यहाँ के नदी, निर्झर, घाटी, पर्वत, वन, वसुन्धरा सब हमारे हैं। ये आँखें इससे अधिक जीवन साफल्य और क्या देख सकती थीं। इस मंगलमय अवसर पर मेरा हर्षाभिवादन स्वीकार कीजियेगा।

भारत के बँटवारे का थोड़ा दुःख अवश्य है, पर इतना नहीं कि स्वातंत्र्य के महान् सुख को उससे मलिन किया जाये।

इस अवसर पर 'विजय' का प्रथम अंक निकल गया होगा ?

पत्र के लिए मैंने श्री रामचन्द्र वर्मा एम० ए० की एक कहानी और अपना एक गीत भेजा था। और आज मैं डा० रमेश की कहानियाँ, एक छोटा उपन्यास और एकांकी नाटक भेज रहा हूँ।

२३। ८ की संध्या को आपके पत्र की प्रतीक्षा करूँगा।

सश्रद्धा
शिवचन्द्र नागर

३८

३० ए० बेली रोड
इलाहाबाद
२१।८।४७,
प्रभात

आदरणीय 'मानव' जी,

परसों १६।८ को दिन की घोर तपन के बाद तीसरे पहर चार बजते-बजते आकाश मेघाच्छादित हो गया था। साढ़े चार बजे मैंने अपना अध्ययन कार्य बन्द कर दिया और डाक्टर साहब के यहाँ

चल दिया। वहाँ पहुँच कर यह निश्चय हुआ कि साहित्यकार संसद् चला जाये।

"संसद्' हमारे यहाँ से डेढ़ मील होगा। रास्ता साहित्य-चर्चा में कुछ दूर नहीं लगा। साढ़े पाँच बजते-बजते हम पुनीत जाह्नवी के तट पर पहुँच गये। बरसात में उमड़ी हुई गंगा का दूर तक विस्तृत फाट बहुत अच्छा लग रहा था। तट पर कुछ नाव लंगर डाले खड़ी थीं। यहाँ गंगा के तट पर एक प्राचीन विशाल वटवृक्ष है। उसकी फैली हुई मोटी-मोटी जड़ें बरसात में गंगाजल का स्पर्श करती हैं, या यों कहूँ कि आत्मवृद्धि के लिये रस खींचती हैं। हम आध घंटे तक उन जड़ों पर बैठे-बैठे बातचीत करते रहे, गंगा की शोभा देखते रहे, बड़े-बड़े कछुए और मच्छों की जलक्रीड़ा देखते रहे और देखते रहे सामने क्षितिज पर लटके हुए बादल।

फिर मैं उठा। उठ कर साहित्यकार संसद भवन की ओर एक ऊँचे टीले पर देखा तो वहाँ के द्वार खुले हुये थे। सोचा कोई आया है। डाक्टर साहब को लेकर मैं वहाँ पहुँचा। नौकर से पूछने पर पता लगा कि महादेवी जी हैं, स्नान करने जा रही हैं। आप अपना नाम बता दीजियेगा। मैंने अपना नाम बता दिया। वह अन्दर से लौटा और सबसे पहले वाले कमरे में जहाँ एक कालीन बिछा था और एक तकिया रखा था और जिसके एक ओर एक मेज और एक कुर्सी थी, वहीं एक कुर्सी लाकर और डाल दी। बोला, "आप यहाँ बैठ जाइ-येगा।" वहाँ गर्मी थी, इसलिये हम बाहर ही बैठ गये।

थोड़ी देर बाद महादेवी जी आयीं। वे बिल्कुल सफेद धोती पहने थीं और बिल्कुल सफेद कुर्ती। आज और दिनों की अपेक्षा अधिक स्वस्थ लग रहीं थीं। वे हँसती हुई आईं और बड़े स्नेह गर्भित स्वर से बोलीं, "अरे, तुम यहाँ बैठ गये?"

"यहाँ बहुत अच्छा लग रहा था" मैंने कहा।

"बहुत देर हो गई?"

"नहीं, यहाँ तो अभी आये थे। इससे पहले तो हम गंगा जी के किनारे बैठे थे।"

"पहले तो तुम यहाँ कभी आये नहीं ?" इतना कह कर वे आगे बढ़ीं।

"नहीं, गर्मियों में तो हम प्रतिदिन जाते थे। पर तब तो यहाँ बिल्कुल ऊबड़-खाबड़ था और बंजर सा लगता था। अब तो काफी हरियाली है" मैंने कहा। जिस स्थान पर हम खड़े थे, वह भवन के आगे वाला सहन था। उसका समतल काफी ऊँचा है। नीचे से देखने पर सभा-मंच सा लगता है। उसकी ओर संकेत कर महादेवी जी बोलीं—

"परसों पंत जी आये थे। इसे देख कर कहने लगे कि यह तो बना बनाया मंच है। यह नीचे से लगता भी तो मंच जैसा है।" "हूँ।" फिर उस समतल से नीचे उतरे। उसको दिखा कर बोलीं, "यह अर्द्ध वृत्ताकार Lawn रहेगा। इसके किनारे-किनारे फूल पत्तियें लगा देंगे। लतायें ऊपर चढ़ा दी जायेंगीं।"

"अच्छा।"

फिर वहाँ से एक कोने पर पहुँचे। यहाँ इसके पास ही एक भगवान शिव का मन्दिर है। पर यह संसद् की जमीन में नहीं आता, बल्कि सीमा-रेखा से बिल्कुल लगा हुआ है। इसी सीमा-रेखा वाली संसद् की जमीन के Plot की ओर संकेत कर कहने लगीं

"यहाँ मेरी कुटिया बनेगी।"

"यहाँ ?"

"यहीं ठीक है एक ओर।"

"तब तो इसकी नींव बड़ी गहरी रखी जानी चाहिये, क्योंकि बरसात में इसके नीचे तक गंगा जी आ जाया करेंगी। कभी कोई ऊंची लहर आ गई तो बहा कर ले जायेगी," मैंने जरा हँस कर कहा।

"यही तो मैं चाहती हूँ। अच्छा है कोई लहर बहा कर ले जाये।

हम लोग स्मारक वाले व्यक्ति थोड़े ही हैं।" इतना कह कर वे आगे बढ़ गईं। कुटिया के स्थान के सामने वाले Lawn की ओर संकेत कर बोलीं—

'यह आप लोगों के लिये Lawn का स्थान रहेगा, नहीं तो मेरे पास आओगे तो बैठोगे कहाँ?" इतना कह कर आगे बढ़ गईं। फिर पीछे मुड़ कर बोलीं—

"वे देखो मैंने अपनी कुटिया के पास दो अशोक के वृक्ष लगा दिये हैं।" मैंने मुड़ कर देखा तो उनकी कुटिया वाले Plot के दो कोनों पर दो अशोक के वृक्ष लहलहा रहे थे। अब तीसरे नीचे वाले समतल पर उतरे। वहाँ के एक Plot की ओर संकेत कर बोलीं, "यहाँ एक छोटा सा सरोवर बन जायगा। उसमें कमल लग जायेंगे।"

"बहुत अच्छा रहेगा। पर अभी लगभग एक लाख रुपया चाहिये।"

"हाँ, इतना तो चाहिये ही।" फिर आगे बढ़तीं हुई जैसे अपने से ही कह रही हों इस प्रकार बोलीं

"जो कुछ पहले था वह तो विद्यापीठ को दे दिया था। जो अब था वह यहाँ लग गया। अब तो कुछ है नहीं। अब गले में झोली डालनी पड़ेगी।" समतल न होने के कारण मेरा पैर ज़रा गड़बड़ा गया, तो तुरन्त बोलीं, "देखो भाई, सँभल कर चलना।"

"नहीं, मुझे तो आदत है। मैं तो पहाड़ भी पैदल ही यात्रा करता था।"

"पहाड़ पर घास तो नहीं होती। यहाँ घास में उलझ कर गिर गये तो?"

"घास पर गिर गये, तो चोट तो नहीं लगेगी। वहाँ पहाड़ पर गिर जाओ, तो फिर मर ही जाओ" मैंने कहा। महादेवी जी आगे आगे चली जा रही थीं। और हम उनके पीछे पीछे उनके पदचिन्हों का अनुसरण करते हुए चल रहे थे। फिर भी उन्हें हमारी चिन्ता थी।

अब हम संसद् भवन के पश्चिमीय भाग से पूर्वीय भाग पर आ पहुँचे थे। वहाँ कोई मज़दूर एक पेड़ की डाल पर अपना अंगोछा

भूल गया था। महादेवी जी ने उसे उठा लिया, "देखो, यहाँ भूल गया है, आजकल कपड़ा बिल्कुल मिल नहीं रहा है।" वे उस अंगोछे को हाथ में लेकर चल दीं। थोड़ी ही दूर चली होंगी कि मैंने उनके हाथ से अंगोछा ले लिया। ले क्या लिया, छीन लिया समझो, तो बोलीं, "कुछ बोझ थोड़े ही है, मैं लिये चल रही हूँ।"

फिर हम नीचे से ऊपर को चढ़ने लगे तो कहने लगीं, "देखो गिर मत जाना।" अब की बार मुझे हँसी आ गई। बात यह थी कि मुझे पंत जी याद आ गये थे, मैंने कहा, "मैं पंत जी थोड़े ही हूँ। उनके लिए कहा होता तो ठीक है।"

"ओ भाई नहीं, तब भी गिर जाओ तो। पंत जी को भी परसों मैंने घुमा ही दिया। बेचारों को कष्ट तो बहुत हुआ होगा। उन्हें यह जगह पसंद तो आयी। कह रहे थे कि मैं एक ऐसा ड्रामा लिख दूंगा जो नाव पर खेला जा सके। ड्रामा तो नाव पर खेला जायगा पर दर्शक कहाँ रहेंगे ?"

मैंने कहा, "दर्शकों की नावें भी साथ साथ चलेंगी।"

अब हम भवन के पूर्वीय पार्श्व पर पहुँच गये थे। उस ओर के एक बड़े प्लौट की ओर देख कर मैंने पूछा, "इसमें क्या रहेगा ?" हँस कर बोलीं, "फिलहाल तो गेहूँ बुआ रही हूँ।"

"गेहूँ"

"हाँ, कुछ साहित्यिक यहाँ रहने के लिये आ गये, तो उनके लिए कुछ तो होना चाहिये। फिर हम नीचे उतरे। वहाँ सबसे नीचे एक पेड़ की छाया में छोटा सा प्लौट था। उसे दिखा कर बोलीं, "यहाँ भी एक छोटा सा तालाब बन जायगा और उसमें कमल लग जायेंगे। यदि कोई लेखक एकान्त में कुछ लिखना चाहता है तो यहाँ पेड़ के नीचे बैठ कर लिखता रहे।" अब हम ऊपर को लौट चले। चढ़ते चढ़ते बोलीं "मुझे पहाड़ में सीढ़ियोंनुमा खेतों की क्यारियाँ बहुत अच्छी लगती थीं। यहाँ तो बनी-बनाई ही मिल गई।" अब हम ऊपर वाले स्तर पर

भवन के मुख्य द्वार के सामने आ गये। उसके सामने दो बड़े-बड़े नीम के पेड़ हैं। उनकी ओर संकेत कर बोलीं, "ये पेड़ भी ठीक ही रहे।"

फिर हम पश्चिमीय पार्श्व की ओर आये। अंगोछा मज़दूर को दे दिया गया। इधर पश्चिम की ओर एक प्लौट में एक मज़दूर माथे पर पट्टी बाँधे काम कर रहा था। उसे देख कर महादेवी जी ने कहा, "राधे। सिर में दर्द है तो काम क्यों कर रहा है, बस रहने दे।" हमारी ओर मुड़ कर कहने लगीं, "मैं रहती हूँ तो ये लोग बहुत काम करते हैं।"

पश्चिमीय पार्श्व की ओर उन्होंने वह स्थान बताया जहाँ संसद् का सिंहद्वार बनेगा। फिर उधर बनी हुई खपरैल की ओर गये। वह घुड़साल सी थी। वहाँ बड़ा अंधेरा भी था और कुछ गंदीं भी थी। उसे प्रकाशमान बनाने के लिये तुड़वा कर खिड़कियाँ लगवाने के लिये कहती रहीं। मैंने कहा, "यहाँ प्रेस ठीक रहेगा।"

"प्रेस के लिये भी ठीक जगह है और नहीं तो कुछ और भी बन सकता है।" फिर हम वहाँ से लौट चले और ऊपरी समतल वाले पश्चिमीय पार्श्व भाग में जहाँ कुंआ है, वहाँ ऊंचे मेंढ के समतल में मिला हुआ एक चबूतरा सा है। भवन के बाहर यही एक खुला हुआ सबसे ऊँचा स्थान है। यहाँ से गंगा जी तथा पुल का दृश्य बहुत सुन्दर दिखाई देता है। वहाँ नौकर ने एक फूलों वाली सुन्दर चादर बिछा दी थी। उस पर हम लोग बैठ गये। महादेवी जी पाल्थी मार कर बैठ गईं। श्वेत वस्त्रों से परिवेष्ठित वे उस उच्च-स्थल पर ऐसी ही लग रही थीं जैसे हिमाचल की उच्चतम श्रेणी का सर्वोच्च भाग वहाँ लाकर रख दिया गया हो और वह पिघला न हो। उनके मुख पर शांति थी और प्रसन्नता भी। उनके नेत्रों में संतोष की आभा थी—ऐसी ही आभा जैसी एक कलाकार के नेत्रों में कला का सृजन कर लेने पर होती है। आज सचमुच उनमें सृजनात्मक आल्हाद था।

हम बैठ गये। कुछ देर तक कुछ नहीं बोले। फिर मैंने बात प्रारम्भ की:

"आज सुबह पंत जी से भेंट हुई। कहीं जाने वाले थे। दस ग्यारह मिनट बात हुई होगी। जो कुछ भी उन्होंने कहा वह बहुत ही संक्षेप में और अस्पष्ट सा था।" इसी बीच डाक्टर साहब बोल पड़े, "वह पहले से ही कुछ सतर्क से हो गये थे।"

"हाँ, उन्होंने यही समझा कि ये कहीं P. D. Tondon की तरह Interview तो लेने नहीं आये, इसलिये दूध का जला छाछ को भी फूंक फूंककर पीता है।" मैंने कहा।

"ठीक तो है, ये लोग भी तो मुँह की बात पकड़ते हैं। अगर किसी के विषय में कुछ लिखें तो पहले उसे दिखा लेना चाहिए। अब पंत जी ने तो यह कहा था कि १९४२ में कम्यूनिस्ट भ्रांत थे, उन Correspondent महोदय ने उसके लिये लिख दिया कि Traitors थे।"

"हाँ भ्रान्त का तो यही अर्थ है कि Confounded थे," मैंने कहा।

"हाँ, भूले हुए थे और Traitor में बड़ा भारी अन्तर हो जाता है।"

"Traitor का अर्थ तो यही है कि Deliberately वह ऐसा कर रहे थे।" डाक्टर साहब ने कहा।

"मैंने टंडन जी के और भी Articles और Interviews पढ़े हैं। यह उनका गुण है कि वे अपने विरोधी पर बड़ा तीखा प्रहार करते हैं।" मैंने कहा।

"हाँ, उनका कम्यूनिस्टों से व्यक्तिगत विरोध है। अब उन्होंने यह अवसर पाकर जो कहना था कह डाला। पंत जी बड़े संकट में पड़ गये कि मैंने तो ऐसा कहा नहीं।"

"हाँ, मैंने सुना था वह इसके लिये बहुत व्यथित थे।"

"जितना कहा जाये उतना ही तो देना चाहिये। अब पंत जी ने उसका Contradiction भेजा है, मैंने तो अभी पढ़ा नहीं।"

"सुना है, पढ़ा तो मैंने भी नहीं, कि इस सप्ताह के 'देशदूत' में निकला है।"

"National Herald तो कदाचित ही निकाले क्योंकि कांग्रेस पेपर है न ? "महादेवी जी ने कहा।

"अब तो पंत जी बदल रहे हैं, उनकी इधर की जो कविता हैं 'स्वर्ण किरण' 'स्वर्ण धूलि' की, उनमें उन्होंने बाहर्जगत और अन्तर्जगत का समन्वय कर दिया है।"

"पंत जी प्रयोग बहुत करते हैं। जो जिस समय करते हैं उसी को चरम सत्य बताने लगते हैं। साहित्यिक का सत्य तो एक ही होता है। वह कभी बदलता नहीं। जो आज सत्य है वही हजार वर्ष बाद भी सत्य रहेगा। वैसे वह कितनी ही चीजें लिखें पर सब के पीछे एक सूत्र रहता है। अब निराला की एक ओर 'राम की शक्ति पूजा' है और दूसरी ओर 'गरम पकौड़ी' पर दोनों के पीछे एक सूत्र है। जब पंत जी हम लोगों को छोड़ कर चले गये तो हम को आश्चर्य भी हुआ और दुख भी। एक बार बातचीत हुई थी तो कहने लगे पहले जो कुछ लिखा है, वह सब कुछ नहीं और यह सब कुछ नहीं रहेगा। हम को तो ऐसा कुछ था नहीं। यदि सभी साहित्यिक कह देते कि ये हममें से नहीं हैं तो इससे कुछ बनता बिगड़ता नहीं। बहुत से साहित्यिक कलाकार मर गये। उनके जीवन में किसी ने उन्हें जाना तक नहीं। पर सौ दो सौ साल बाद उन्हें लोगों ने ढूँढ़ निकाला। हमारे यहाँ के साहित्यिक तो ऐसे ही रहे हैं। उन्होंने बड़े-बड़े काव्य लिखे, पर अपने विषय में कहीं भी कुछ नहीं कहा। उन्हें अपने जयघोष तथा फूल मालाओं की आकांक्षा नहीं रही। साहित्यिकों के मठ नहीं बनते।"

"हाँ, जो मणि होगी वह कब तक अन्धकार में रहेगी ?" मैंने कहा। तुरन्त ही डाक्टर साहब बोल पड़े, "हमारे अजन्ता के पेंटिंग्स ही हैं। इन चित्रों को दुनिया जानती है, पर चित्रकारों को कोई नहीं।"

"साहित्यकार का सत्य तो कभी नहीं बदलता यह बात तो ठीक है; पर राजनीतिज्ञ का सत्य बदलता रहता है, इसलिये राजनीतिक साहित्य किसी विशेष समय के लिये उपयोगी साहित्य है। जब गुप्त जी की 'भारत

भारती' निकली थी तो कैसी धूम थी; पर आज उसे कोई नहीं पूछता। 'ग्राम्या' के बाद से ऐसा लगता है कि पंत जी ने अपना पुराना सूत्र छोड़ दिया और उनकी विचारधारा राजनीतिक दृष्टिकोण को लेकर आगे बढ़ी।" मैंने कहा और महादेवी जी बोलीं :

"'युगवाणी' से ही पंत जी तो बदल गये थे। कहने लगे थे कि इससे पहला सब व्यर्थ है।"

"जीवन के आर्थिक संघर्ष को ही ये प्रगतिवादी सब कुछ समझते हैं और इनका विचार है कि इससे सम्बन्धित साहित्य में ही प्रगति है। ये लोग इसी में भूल करते हैं। मेरा तो विचार है कि अध्यात्म में भी प्रगति है।" डाक्टर साहब ने कहा।

"विरोध जितना नाम से उत्पन्न होता है उतना वास्तव में होता नहीं। इंगलैंड में एक Progressive writers' Association था। प्रेमचन्द जी कहने लगे कि हम भी एक लेखकों की ऐसी संस्था चाहते हैं और इसका नाम 'प्रगतिशील लेखक संघ' रखा जाये। मैंने कहा : नाम यह न रखिये। वहाँ का अनुकरण करने से क्या लाभ? पर वे माने नहीं। आज ये लोग अपने को बिल्कुल अलग समझने लगे हैं। वैसे किसी भी देश के महान् कलाकारों में चाहे वे रूस के हों या भारत के, विशेष अन्तर नहीं होता। साहित्य तो सरिता है। इसमें समतल पर बहुत ऊँची नीची लहरें हो सकती हैं, पर गहराई में ऐसा कुछ नहीं होता" महादेवी जी ने कहा। कुछ क्षणों तक हम चुप रहे। फिर मैंने पूछा, "पंत जी को यह स्थान कैसा लगा?"

"यह जगह तो उन्हें पसन्द आई? अपने 'लोकायन' के लिये कह रहे थे।"

"यह लोकायन क्या है?"

"वे एक शिक्षण संस्था चाहते हैं। अब यही देखना है कि संसद् के साथ साथ यह कहाँ तक ठीक रहेगी। कुछ ऊँची क्लास के विद्यार्थी यदि किसी विषय पर जानना चाहते हैं तो Lectures रखे जा सकते

हैं और किसी विषय पर कोई खोज का कार्य करना चाहे तो उसे छात्रवृत्ति देंगे और दूसरी भी हर प्रकार की सुविधा देंगे। ऐसा तो संसद् के विधान के अन्तर्गत भी है। पर यदि पंत जी की कोई बड़ी योजना है तब तो कठिन रहेगा; क्योंकि इसमें लग गये तो फिर संसद् का कार्य रुक जायेगा।"

"पंत जी यहाँ रहने के लिये क्या कह रहे हैं?"

'अभी उनका कुछ ठीक नहीं। बाहर के इन कमरों के लिये कह रहे थे यहाँ Privacy नहीं है। पता नहीं उनको यहाँ अच्छा लगेगा या नहीं। उन्हें प्रत्येक सुव्यवस्थित चीज अच्छी लगती है। जरा भी Abnormality उन पर सहन नहीं हो पाती। अब परसों निराला जी आये। पंत जी भी यहाँ बैठे थे। आते ही उन्होंने कुर्ता उतार कर एक ओर रख दिया। बस पंत जी तो घबरा गये। पंत जी की ऐसी कोमल प्रवृत्ति है। वास्तव में यह व्यक्ति इस देश के योग्य नहीं है।"

"यह बात बिल्कुल ठीक है। भारत में उनके मन के अनुकूल वातावरण कहाँ?" मैंने कहा। डाक्टर साहब ने पूछा :

"सुना है निराला जी का मस्तिष्क कुछ विकृत हो गया है?"

"हाँ कुछ है ऐसा ही। उनकी पत्नी मर गई। लड़की के लिये डाक्टर ने ५ रु० का Prescription लिखा। निराला जी अपना कुर्ता तक रखने को तैयार थे, पर उन्हें कहीं से पाँच रुपये नहीं मिले। उनकी लड़की ऐसे ही मर गई। जिस पर ऐसे आघात हुए हों उसके मस्तिष्क का विकृत हो जाना स्वाभाविक ही है। अब उन्हें कुछ Persecution का सा दौरा हो गया है। कहते हैं कि काँग्रेस वाले उनके पीछे डन्डे लेकर पड़े हैं, हँस कर महादेवी जी ने कहा। फिर बोलीं, "डाक्टर कहता है Injection से ठीक हो जायेंगे, पर वे Injection लेने के लिये तैयार ही नहीं, तो दिये

कैसे जायें ? उनके हाथ पकड़ कर तो दिये ही नहीं जा सकते, क्योंकि हम जैसे चार पाँच को तो वे यों ही गिरा दें," महादेवी जी ने हँस कर कहा।

"इसमें क्या संदेह है पहलवान आदमी तो वे हैं ही," मैंने हँस कर कहा।

जब यहाँ आये तो मैंने पूछा, "आप स्वस्थ तो हैं ?" तो झट कुरता उतार दिया और अपने शरीर के पुट्ठे दिखा कर बोले "हाँ, हाँ स्वस्थ तो हूँ। देखतीं नहीं ?" हम लोगों को हँसी आगई। महादेवी जी बोलीं, 'अब उनकी ये बातें देखकर मुझे तो ऐसा ही लगता है कि अपना बच्चा है, वह इतना भीमकाय हो गया है और बच्चों की सी उछलकूद कर रहा है। इससे अधिक और कुछ नहीं। पर पंत जी ने तो उनको ऐसा करते देख कर एक ओर मुँह फेर लिया।' फिर क्षण भर रुक कर कहने लगीं, "पंत जी में सभी सभ्य संस्कार हैं, और निराला जी के सब संस्कार मुसल्ला संस्कार हैं, लुंगी पहनेंगे, अंडे, मांस, मच्छ के बिना उन्हें भोजन में स्वाद नहीं आता।" हंसते हुये महादेवी जी ने कहा।

"तब तो बड़ा आश्चर्य है। आपकी उनसे किस प्रकार निभती है। आपका तो सब कुछ अहिंसा पर आधारित है और उनको यह सब चाहिये।"

'मेरे यहाँ तो वह कुछ नहीं कहते। दाल भात रोटी आनन्द से खा कर यही कहते हैं कि 'बड़ा दिव्य है, बड़ा दिव्य है।' होमवती जी के यहाँ मेरठ गये तो उन्हें परेशान कर डाला, 'लाओ वह और लाओ यह।' यहाँ तो जो मिल जाता है, चुपचाप खा लेते हैं।' हँसते-हँसते महादेवी जी ने कहा और फिर बोलीं, "मेरे यहाँ आकर तो वे कुछ अधिक ऊटपटांग भी नहीं बकते। विक्षिप्त सी दशा में भी उन्हें तो यहाँ कुछ भय सा ही बना रहता है।"

"नहीं, आजकल तो वे टैगोर और न जाने किसके बारे में क्या-क्या कहते हैं।"

"बात यह है कि जो बात कभी उनके Sub-conscious में रही होगी वह विक्षिप्त दशा में उभर आती है" महादेवी जी ने कहा। इतनी देर में दाता उनकी डाक ले आया। इस डाक में खत तो कोई नहीं था, केवल सात आठ पत्र-पत्रिकायें थीं। इनमें एक मासिक पत्रिका व्यवसाय-कला या कुछ ऐसे ही थी। उसे मेरी ओर डालते हुए बोलीं, "ये लोग समझते हैं कि मुझे व्यापार की बातें जानना भी जरूरी है।" उसे मैंने पलटा। उस पर अन्दर के पृष्ठ पर एक चिप्पी लगी थी। For favour of opinion महादेवी जी सबके पन्ने पलट कर और उनके शीर्षक पढ़-पढ़ कर मेरी ओर रखती रहीं। मैंने भी उन्हें इधर उधर से पढ़ा। इसके बाद एक नया साप्ताहिक 'संगम' जो इलाचन्द जी के सम्पादकत्व में आरम्भ हुआ है, सामने आया। उसमें महादेवी जी का एक फोटो था। उसकी ओर संकेत कर मैंने, कहा "देखिये यह आपका फोटो है। पर आपकी सूरत से बिल्कुल नहीं मिलता।"

"मुझे तो पता नहीं भाई, मेरी सूरत कैसी है।"

इसी तरह सब पत्र पत्रिकायें देख कर एक ओर रख दीं। मैं एक पत्रिका देख रहा था। महादेवी जी एक दम बोल पड़ीं।

"कितना सुन्दर बादल है!" मेरी और डाक्टर साहब की दृष्टि एक दम उधर खिंच गई। बात यह थी कि छिपते हुये सूर्य की अरुण रश्मियों ने गंगा के उस पार क्षितिज पर लटके हुए मेघों को गुलाबी और स्वर्णिम बना दिया था। उनमें भी एक बादल तो बहुत ही सुन्दर लग रहा था। उसी की ओर संकेत कर महादेवी जी ने कहा था। मैं भी उस ओर देखता ही रह गया।

"इसको *Paint* करती। पर आँखें......" इतना कह कर चुप हो गईं। उस समय उन्हें कितनी व्यथा हुई होगी, इसका कोई अनुमान नहीं लगा सकता। यहाँ संसद में रह कर इस सुहावनी पावस ऋतु के प्राकृतिक सुन्दर दृश्यों को देख कर मिलने वाली प्रेरणा को चित्रों में परिणत न कर सकने की असमर्थता पर नहीं, बल्कि विवशता

पर, सचमुच उन्हें बहुत ही दुःख होता होगा। कुछ क्षणों तक व्यथामय निस्तब्धता रही। मैंने आकाश की ओर देखा। सूर्य बादलों के पीछे से अस्ताचल को जा रहा था और संध्या उमड़ती आ रही थी।

अब महादेवी जी ने उस दिन का लीडर उठाया। उसमें सबसे पहली मोटी Head-line थी Pakistan forces invade India एक दम पढ़ते ही महादेवी जी के मुँह से निकल पड़ा "अरे··· "हम लोगों को हँसी आ गई, क्योंकि बात यह थी कि जिस बहुत छोटी सी बात को पत्रिका ने किसी कोने में छापा था Leader ने व्यर्थ की इतनी Importance दे दी थी। कुल १०० आदमियों ने दो तीन Border के गांवों में लूट मार की। इधर के Troops गये और उन्होंने उन सब को गिरफ्तार कर लिया। यह बात डाक्टर साहब ने बतलाई तो महादेवी जी बोलीं, "अब ऐसा तो होगा ही, क्योंकि पाकिस्तान और हिन्दुस्तान के बीच कोई प्राकृतिक सीमा रेखा तो है नहीं।"

"हाँ, कोई China wall जैसीGreat wall बन जाये तब तो अलग हो भी सकते हैं, नहीं तो प्राकृतिक रूप से तो हिन्दुस्तान-पाकिस्तान एक ही हैं", मैंने कहा। फिर बाउन्ड्री कमीशन के Award पर बात चीत होती रही। पंजाब के दंगे अभी शांत नहीं हुए न ? इसलिये उसकी खबरों से महादेवी जी विशेष व्यथित और क्षुब्ध हो गईं। बोलीं, "किसी सभ्य युग में एक जाति दूसरी जाति पर इतने अत्याचार करती है, पता नहीं। इनका कब अन्त होगा, पता नहीं। गांधी जी को भी क्या हो गया है। कलकत्ते में पड़े हैं, पंजाब नहीं जाते।"

"हाँ, अब तो उन्हें पंजाब चले जाना चाहिये। कलकत्ते में उनकी अब इतनी आवश्यकता नहीं" मैंने कहा। फिर मैंने दूसरी बात उठायी "ये मुसलमान बहुत से Converted Hindus हैं तो क्या अपने पुराने संस्कारों का इनमें लेश मात्र भी नहीं रह गया ?"

"ये क्या, कोई इनके बाप दादा मुसलमान हुए होंगे। बस उन्हीं तक कुछ संस्कार रहे होंगे और अब जो बंगाल में गाँव के गाँव मुसल-

मान हो गये हैं इस बीच के Converted Muslims और भी भयंकर होंगे क्योंकि हिन्दू जाति के प्रति अब उनके मन में एक घृणा हो गई होगी कि यह ऐसी जाति है कि हमारी रक्षा नहीं कर सकी।" महादेवी जी एक स्पष्ट विषाद में डूब गईं। कुछ क्षणों बाद केवल उनके मुख से यही निकला कि "हम लोग यहाँ शांति से बैठे हैं। हमें कुछ करना चाहिये।" इतना कह कर वह चुप हो गईं और किन्हीं विचारों में खो गईं। इसी बीच उनके मुख पर गहरी विषाद की रेखा दिखाई दीं और विलीन हो गईं। एक दो मिनट तक कोई किसी से नहीं बोला। अब तक विषाद की छाया-सा हलका अन्धकार भी वसुधा पर छा गया था।

फिर कुछ इधर उधर की बातें हुईं। महादेवी जी आपको याद कर रही थीं। मैंने आपकी सदस्यता की बात पूछी तो कहने लगीं, "उन्हें अपनी सदस्यता में भी कुछ संदेह है क्या? हमने तो उन्हें स्वयं निमंत्रित किया था।" और भी बातें हुईं पर मुझे ऐसा लगता है कि अब आपको यहाँ आना ही होगा। इस समय मुरादाबाद में नहीं इलाहाबाद में आपकी आवश्यकता है।

महादेवी जी ने नौकर को बुला कर कहीं से दूध लाने के लिये कहा और एक दूसरे नौकर से चाय का पानी पकाने के लिये। फिर बोलीं, "अब अँधेरा हो गया है, अन्दर चलो।" हम लोग वहाँ से उठे। मैंने चादर उठा ली और अन्दर एक बड़े कमरे में जिसमें महादेवी जी रहती हैं आये। वे चाय के लिये बाहर चली गईं। मैं उनके कमरे में घूमता रहा। वहाँ एक ओर एक कालीन बिछी थी। उस पर बैठ कर पढ़ने का एक डेस्क था। वहाँ एक प्रति 'साहित्य-संदेश' की रक्खी थी और एक प्रति 'विश्व वाणी' की और उस पर एक चश्मा रखा था। शायद महादेवी जी ने अब चश्मा ले लिया है जिसे लगा कर कुछ पढ़ती हैं। एक आलमारी में उनकी खद्दर की धोतियाँ तह की हुई रक्खी थीं और उसके दूसरे खाने में एक ऋग्वेद की हिन्दी भाषा वाली जिल्द थी, जिसे शायद महादेवी जी ने पढ़ते पढ़ते वहाँ रख दिया

था। वहाँ के वातावरण को देख कर मुझे तो विश्वास है अब महादेवी जी हिन्दी साहित्य को कोई अमूल्य भेंट अवश्य देंगी।

थोड़ी देर में महादेवी जी आ गईं। आते ही उन्होंने Table fan खोल दिया और हम लोग कमरे के बीच में बिछी हुई कालीन पर बैठ गये। इतने में भक्तिन आ गई। मैं भक्तिन से बात करने लगा—

"भक्तिन अच्छी हो?"

"हाँ, हाँ, ठीक हूँ" अपनी भाषा में बड़ी सरल और मुक्त हँसी हँसते हुए उसने उत्तर दिया। फिर मैंने पूछा,

"अभी कितने दिन और जिओगी?" बड़े विश्वास के साथ उसने उत्तर दिया 'बहुत दिन।' फिर महादेवी जी बोलीं, "पंत जी ज्योतिष भी तो जानते हैं न। वे भक्तिन को बतला गये हैं ७३ साल जियेगी।" इसी प्रकार हम सब लोग हँसते रहे।

मैंने कहा, "पंत जी कोमल बहुत हैं। कोई एक बार पहले पहल देखने वाला समझ सकता है कि यह कोमलता कृत्रिम है। हो सकता है शुरू शुरू में कृत्रिम रही हो, पर अब तो स्वभाव बन गया है। चलने फिरने में, उठने बैठने में, यहाँ तक कि बातचीत में भी वे इसे नहीं छोड़ पाते। कविता पढ़ते समय स्वर और लय के साथ उनके अंगों का संचालन एक अद्भुत सौंदर्य ला देता है। आज सुबह में गया था। उनकी एक कविता है "अंगुठिता। उस पर बातचीत चल पड़ी तो बोले, 'अंगुठिता'...एक स्त्री जिस के मुख पर अवगुंठन नहीं, जिसे सब जानते हैं......" मैंने अभिनय करते हुए कहा। सब हँसने लगे।

महादेवी जी बोलीं, "यह तो उनका स्वभाव ही है।"

"नहीं, मुझे तो आश्चर्य इस बात का है इस कठोर युग में वे इतने कोमल कैसे रह पाये हैं और इससे भी बड़ा आश्चर्य इसमें है कि देखने पर ऐसा पता लगता है कि इस कठोर युग ने उन पर कोई अपनी छाप भी नहीं छोड़ी है।" मैंने पूछा।

"पंत जी ने इस युग की कठोरताओं को स्वीकार ही नहीं किया। उनको उनके आगे नतशिर ही नहीं होना पड़ा। निराला उन कठोरताओं में पिस गये। अपने में ही टूट गये। यह सब इसलिये कि निराला ने विवाह किया था, उनका गृहस्थ था, पर वे व्यावहारिक तनिक भी थे नहीं। व्यावहारिक तो पंत जी भी नहीं हैं, पर उन्होंने विवाह नहीं किया और गृहस्थी का भी कोई भार नहीं था, इसलिये वे युग की कठोरताओं से बच गये।"

"मैंने आज पंत जी से पूछा था कि आपने विवाह क्यों नहीं किया? आया कि मुझे पूछना नहीं चाहिये था पर मैंने पूछ ही लिया। बाद में मुझे बहुत पछतावा हुआ, क्योंकि पंत जी को भी यह अच्छा नहीं लगा था।"

"ऐसा प्रश्न नहीं पूछना था। इस प्रकार नासमझी का विज्ञापन नहीं करते" महादेवी जी ने हँसते हुए स्नेहमय ढंग से जैसे समझाया करते हैं उस प्रकार कहा।

नहीं यह बात नहीं। बात ही ऐसी आ पड़ी थी। मैंने सोचा था पंत जी Formal नहीं होंगे। पर जैसे ही हम लोग बैठे और इसके पूर्व कि कोई बात शुरू होती पंत जी बोले, 'कहिये क्या काम है?" मैं सन्न रह गया। क्या काम बताऊँ? मैंने कहा, "वैसे ही बातचीत करनी थी।" बोले "क्या बातचीत करनी है?' मुझे कुछ भी नहीं सूझा कि क्या बताऊँ! तुरंत ही, उनकी अगुंठिता कविता याद आ गई। उसमें मुझे कुछ स्पष्ट समझ में नहीं आया था। पंत जी ने उसमें कहा है कि देह और स्नेह साथ साथ नहीं चल सकते हैं। उनका यह भी कहना है कि स्नेह देह के बिना भी चल सकता है। यह आवश्यक नहीं कि देह के साथ ही स्नेह चले। तब मेरे मन में यह बात उठी कि पंत जी का कोई ऐसा सिद्धान्त तो नहीं कि जिसके अन्तर्गत विवाह न आता हो।

"ऐसा कोई सिद्धान्त तो पंत जी का नहीं। बात यह है कि उन्हें कोई उपयुक्त साथी नहीं मिला। और कोई साथी मिल भी जाता तो

उसे साथ में लेकर वे जीवन का सघष नहीं कर सकते थे। उन्हें भी निराला की तरह पराजित होना पड़ता" महादेवी जी ने कहा।

"अब भी तो पंत जी को अपने लिये संघर्ष करना पड़ता होगा।"

"हाँ, पर पंत जी व्यावहारिक नहीं हैं। व्यावहारिक तो सबसे अधिक मैं ही हूँ" महादेवी जी ने कहा।

"यह बात आपके साथ अच्छी ही है" मैंने हँस कर कहा।

हमारे देश में पंत जी जैसे महान् कलाकार को भी यदि जीवन की सब सुविधायें प्राप्त न हों, अर्थाभाव के कारण यदि उन्हें भी कभी कष्ट उठाना पड़े तो सचमुच यह इस देश का और इस देश के हिन्दी भाषा भाषियों का दुर्भाग्य ही है

सुबह पंत जी से हुई भेंट की बात उठाते हुए डाक्टर साहब ने कहा,

"पंत जी कुछ सतर्क हो गये थे। इधर उधर की बातें करते रहे।"

"नहीं, पंत जी बहुत अच्छे हैं" महादेवी जी ने कहा।

"यह बात तो है ही। पर उन्होंने 'ग्राम्या' के बाद जो लिखा है वह अच्छा ही है। 'स्वर्ण किरण' और 'स्वर्ण धूलि' उनकी बहुत सुन्दर पुस्तकें रहेंगी। इनमें उनकी विचारधारा बड़ी ही Balanced मालूम होती है" मैंने कहा।

"हाँ, अब ठीक मार्ग पर आ गये हैं।"

"पर एक बात जरूर है। इधर की कविताओं में चिंतन-पक्ष अधिक हो गया है और भाव-पक्ष कम।"

अब तक नौकर चाय ले आया था। महादेवी जी ने उससे दाल-मोठ और बिस्कुटों का डिब्बा लाने को कहा। और फिर पहले सूत्र को जोड़ती हुई बोलीं—

"आरम्भ की लिखी हुई चीजों में भाव-पक्ष कुछ अधिक रहता ही है, बाद में चिंतन-पक्ष की बहुलता हो जाती है। यह बात कुछ उम्र पर भी निर्भर करती है।"

"पर टैगोर की 'गीतांजलि' में देखिये कि दोनों पक्षों का कितना सुन्दर समन्वय है" डाक्टर साहब ने कहा।

"भाई, टैगोर जैसा व्यक्ति तो कोई कभी युगों में कहीं एक पैदा हो जाता है। उनमें तो दर्शन, भाव, कल्पना, संगीत, सभी का अद्भुत सम्मेलन था" महादेवी जी ने कहा।

"अन्तर्प्रेरणा से जो भी लिखा जाता है उसमें ऐसा ही रहता है। उसमें नीरसता नहीं आ पाती। 'बच्चन' जी की निशा-निमन्त्रण बहुत अच्छी है। 'मिलन-यामिनी' भी बहुत अच्छी रहेगी, क्योंकि दोनों के पीछे एक शक्तिशाली प्रेरणा थी, पर 'बच्चन' जी का "हलाहल" मुझे बिल्कुल अच्छा नहीं लगा। उस में तो ऐसा लगता है कि गद्य में तुकें जोड़ कर पद्य बना दी हैं। और इसी तरह १५ अगस्त को स्वातंत्र्य का आह्वान करते हुए उन्होंने एक कविता सुनाई थी। बहुत साधारण कोटि की कविता थी वह। वैसी कविता कोई कलम पकड़ने वाला भी लिख सकता है। जब स्वतन्त्रता-दिवस से उन्हें कोई प्रेरणा नहीं मिली थी, तो उन्होंने वह कविता क्यों लिखी? हमें तो उस दिन कोई कविता लिखने जैसी प्रेरणा नहीं मिली थी।" अब चाय ठंडी होती जा रही थी और ठंडी चाय किस काम की। मैंने चाय बनाने का उपक्रम करते हुए हाथ बढ़ाये और महादेवी जी ने पहली बात को समाप्त करते हुए कहा "बच्चन जी अब गिर रहे हैं। वे व्यक्ति तक ही सीमित रह गये।" मैंने अपने हाथ पीछे खींच लिये। डाक्टर साहब ने कहा—

"हाँ, पन्त जी कोई गम्भीर चीज नहीं लिख सकते उनके अन्दर का कवि अभी दार्शनिक नहीं हुआ।"

"महान् कलाकार होने के लिये व्यक्ति माध्यम हो सकता है, लक्ष्य नहीं" महादेवी ने कहा। इधर मैं चाय के लिये लालायित हो रहा था, क्योंकि सबसे अधिक भय ठंडी हो जाने का था। जैसे ही मैंने हाथ बढ़ाया तो बोलीं, "बस चुपचाप बैठे रहो। मैं बना रही हूँ। अभी मिल तो रही है।" मुझे बड़ी जोर की हँसी आ गई।

डाक्टर साहब भी हँस पड़े। मैं फिर बनाने में सहायता देने का उपक्रम करने ही वाला था कि बोलीं, "इतनी परेशानी क्यों है?"

सुन्दर कलर वाला पानी उन्होंने चाय के प्यालों में उड़ेला। मैंने कहा, "चाय से मुझे बड़ा प्रेम हो गया है।" महादेवी जी हँसती हुई बोलीं, "तुम्हें और कुछ नहीं मिला?" इस पर तो बहुत ही हँसी आई। वातावरण बिल्कुल बदल गया था। गम्भीर वार्तालाप के बाद ऐसा वातावरण बहुत अच्छा लगता है। हम लोग चाय पीते रहे। डाक्टर साहब बोले, "यहाँ आप एक दो गाय और रखिये। बिल्कुल प्राचीन ऋषि मुनियों का सा आश्रम हो जायेगा।" मैंने डाक्टर साहब की ओर मुड़कर कहा—

"तो क्या आप का इरादा चाय से दूध पर उतरने का है।" सब हँस पड़े। मैंने कहा, "नहीं जी, एक बकरी ही ठीक है। उसके दूध से चाय बन जाया करेगी।"

"बकरी तो मैं रखूगीं नहीं, क्योंकि वह जल्दी ही अपने परिवार से पूरे संसद को भर देगी और बकरी के बच्चों को मैं बेच सकती नहीं, क्योंकि Slaughter House में ही उनके लिये स्थान है।" फिर ऐसी ही हल्की फुल्की सुन्दर बातचीत होती रहीं। अब साढ़े आठ बज गये थे। घड़ी तो वहाँ नहीं थी, पर अनुमान से यही समय होगा।

हम घर को चलने लगे। जैसे ही कमरे से बाहर आये तो बाहर घोर अन्धकार था। यह देख कर महादेवी जी बोलीं, "कितना अँधेरा है। अच्छा रुको। टार्च लाती हूँ।" अपनी आलमारी में से ढूंढ़ कर टार्च लायीं। फिर हम वहाँ से घोर अन्धकार में सड़क के छोर तक जहाँ प्रकाश था, चले। हमलोग पगडन्डी पर चले जा रहे थे और महादेवी जी उस अन्धकार में अपनी टार्च से मार्ग दिखा रही थीं। थोड़ी दूर चलकर मैंने कहा "देखिये, अन्धकार में गंगा जी कैसी लग रही हैं।"

"ऐसा लगता है अब तो बालू का तट यही है।"

हम और आगे चले। अन्धकार के समुद्र को पार कर कुछ हलके प्रकाश के तट पर आये। मैंने कहा, "अब आप लौट जाइये। हम चले जायेंगे।" हमने प्रणाम किया। उन्होंने भी हाथ जोड़े और तुरन्त ही अँगुली उठाकर बोलीं, "देखो चाँद कितना सुन्दर है।" हमारी आँखें उधर ही खिंच गई। कुछ श्यामल बादलों के साथ हँसियाकार चौथ का चाँद आँख-मिचौनी खेल रहा था। सफेद हलके रुई के टुकड़ों से बादल उस चाँद बेचारे की क्षीण प्रभा को ढक कर उड़े जा रहे थे।

सश्रद्धा
शिवचन्द्र नगर

३६

३० ए. बेली रोड
इलाहाबाद
३१।८।४७

आदरणीय 'मानव' जी,

इस बीच एक दिन मैं यहाँ की एक साहित्यिक संस्था परिमल की At Home party में निमन्त्रित था। वहाँ के सम्माननीय अतिथियों में थे श्री सुमित्रानन्दन पंत। सौभाग्य से मैं उनके दायीं ओर बैठा था और उनके बायीं ओर थे श्री केमिल बुल्के-एक डैनमार्क के युवक जो यहाँ हिन्दी में रिसर्च कर रहे हैं। आज पंत जी से Heart to heart बातचीत हुई, पर फिर भी ऐसा लगा जैसे वे कुछ खोये से रहते हैं। मैंने उनसे उनके लोकायन की योजना के विषय में पूछा था। कहने लगे, "अभी तो मुझे ही कुछ मालूम नहीं कि क्या होगा।" मैंने उनके लिये चाय बनाई। चाय में दूध जितना average आदमी पीते हैं उतना ही डाला था; पर पंत जी के लिए वह अधिक था इसलिये वह प्याला बुल्के साहब को दे दिया। उनके लिये दूसरा प्याला बनाया गया जिसमें दूध नाम मात्र को पड़ा था। पंत जी सिगरेट भी पीते हैं।

पंत जी पेंट पर खुले गले की शर्ट पहनते हैं। सिल्क उन्हें अधिक पसन्द है। जब तक पंत जी मेरे पास बैठे रहे, मैं उन्हें पंखे से हवा करता रहा, क्योंकि आज बिजली खराब थी। सचमुच कोई और व्यक्ति होता तो हवा करते करते मन ऊब जाता, हाथ थक जाते, पर उस दिन इन दोनों में कुछ भी नहीं हुआ। मैं उन्हें पंखा करता रहा और देखता रहा कि उस हवा में उनके सुनहरे रेशमी बालों के लच्छे कैसे उड़ रहे थे। जब कभी बाल उड़ कर उनकी दृष्टि को अवरुद्ध कर लेते थे तो बड़ी कोमलता से हाथ उठा कर वे उन्हें एक ओर कर देते थे। चश्मा लगा लेने पर पंत जी विशेष सुन्दर लगते हैं। हिन्दी साहित्य के जीवित कलाकारों में शरीर में सब से सुन्दर हैं पंत और मन की सबसे सुन्दर हैं महादेवी।

पत्र की प्रतीक्षा में

सश्रद्धा
शिवचन्द्र नागर

४०

३० ए० बेली रोड
इलाहाबाद
१।६।४७

आदरणीय 'मानव' जी,

आप का २८।८ का पत्र कल संध्या को मिला। उस समय मैं और राम प्रसाद भटनागर साहित्यकार-संसद जाने वाले थे। पत्र मिल जाने पर ऐसी ही प्रसन्नता हुई जैसी कि किसी चिर प्रतीक्षित वस्तु को पाकर होती है। प्रतीक्षा का भी जीवन में कितना महत्व है! प्रतीक्षा का दुख कहूँ या सुख, एक भिन्न प्रकार का ही होता है।

हम साहित्यकार संसद गये। देखा गंगा में पानी बहुत आ गया है। जान्हवी ने बढ़ कर संसद के चरण स्पर्श कर लिये हैं। यदि कुछ और जल बढ़ गया तो फिर हम लोगों के आने जाने का मार्ग भी रुक

जायगा। सामने इतना अपार जल प्रवाह देखकर मन एक अज्ञात उल्लास से नाच उठता है। क्षितिज पर लटके हुए संध्या के रंगीन मेघ ऐसे लगते हैं जैसे अन्तरिक्ष की विस्तृत पलकों में कोई रंगीन महा स्वप्न हो। इन बिल्कुल बोलते हुए से, सजीव से, सुन्दर प्राकृतिक दृश्यों को देखकर मुझे लगता ही नहीं, विश्वास भी होता है कि ईश्वर जैसी कोई महा सत्ता है, नहीं तो फिर यह सब कौन बना गया?

महादेवी जी संसद की भूमि से मिले हुए एक देव-मन्दिर की उच्च पीठिका पर खड़ी हुई कुछ व्यक्तियों को विदा देरही थीं। हम उनके पास गये, भटनागर साहब का परिचय करा दिया। इतनी देर में कुछ महोदय आ पहुँचे, वे यहाँ की म्युनिसिपैल्टी के शायद कुछ थे। महादेवी जी उनसे कुछ बातें करने लगीं, जिनका सारांश संसद के सामने का मार्ग पानी से अवरुद्ध न हो, यह था।

इसी बीच मैं भटनागर साहब को इधर उधर घुमाने ले गया। उन्हें पूरी संसद की बाह्य भूमि दिखलाई। भवन नहीं दिखा सका, क्योंकि वहाँ आज महिला विद्यापीठ की छात्राएँ आई हुई थीं। हम लोग घूमते रहे। रात होने को आ गई थी अतः हम लौट कर महादेवी जी के पास आये तो देखा दो नौकाओं में सब छात्रायें बैठ रही थीं और महादेवी जी ऊपर खड़ी-खड़ी निरीक्षण कर रही थीं।

हम उधर गये। ऊपर चढ़ कर मैं इधर उधर देखने लगा। पूर्व में सोने की थाली सा चाँद ऊपर आ गया था। महादेवी जी कह रही थीं, "देखो, एक नाव में ही सबकी सब भर गईं हैं।"

"आप नहीं जायेंगी? मैंने पूछा।

"पहले उन्हें, ठीक तरह से बिठा आऊँ।"

हम बीस पच्चीस मिनट तक इधर उधर घूमते रहे। फिर नीचे घाट पर जा कर देखा तो वहाँ कोई भी न था। सामने दूर पूर्णिमा की शुभ्र ज्योत्स्ना से झिलमिलाती हुई बीच धार में दो नौकायें चली जा रही थीं। समस्त वातावरण शान्त और निस्तब्ध था।

मन में नौका-विहार की एक अदम्य भावना जगी। एक खाली नौका किनारे पर थी भी, पर दोनों में से किसी के पास भी पैसा न था। मन मार कर हम घर की ओर चल दिये। चारों ओर चाँदनी छिटकी हुई थी, पर मैं यही सोचता जा रहा था कि यह चाँदनी तारकूल की काली सड़क पर चलने के लिये नहीं है, बल्कि जल की चाँदी सी सड़क पर अपनी छोटी सी डोंगी लेकर जाने के लिये है—दूर बहुत दूर, जहाँ संसार की यातनाओं का आभास मात्र भी न हो सके।

हम घर की ओर लौट रहे थे। प्यास लगी। रसूलाबाद में एक मियाँ साहब का घर दिखाई दिया। उनके यहाँ एक बूढ़े मियाँ कुँये से उसी समय पानी लाये थे। हम उनके घर गये। उनमें से एक मियाँ बोले, "अन्दर आकर बैठ जाइये।" हम अन्दर बैठ गये। उसने अपनी आठ साल की लड़की से गिलास में पानी देने के लिये कहा। मैं पानी पीता रहा और उस बच्ची की ओर देखता रहा। मन में स्नेह उमड़ आया। ऐसी भावना मन में जगी कि उस बच्ची को खींच कर गोदी में बिठा लूँ और उसके माथे पर स्नेहमय चुम्बनों की बरसात-सी कर दूँ। आज राखी पूनो थी। सुबह से ही मेरे मन में एक भावना जगी थी कि मेरी कोई छोटी बहिन नहीं। इस समय यही भावना ऐसी परिस्थितियों में करुण रूप लेकर फिर जाग उठी। क्या अच्छा होता यह मेरी छोटी बहिन होती! वे मुसलमान हैं और हम हिन्दू हैं। तो क्या सम्बन्धों को भी जाति की सीमा चाहिये? जब एक बार मैंने अपने गाँव वाले घर की महतरानी को मगते की माँ कह कर पुकार लिया था तो मेरी अम्मा जो चिल्लायी थी, "एम नथी कहता, ए तो ताई छे, ताई कहवुँ जोइये। (ऐसा नहीं कहते, ये तो ताई हैं, ताई कहना चाहिये।) वह सब क्या झूठ था? और हमारे घर के पास एक मुसल-मान फकीर साईं रहता था, वह ईद के दिन अम्मा को मेरे लिये सूखी सिंवैयें चीनी और दूध क्यों दे जाया करता था? क्या इसीलिये कि तीसरे चौथे दिन जब वह मागने आता था तो मैं उसे कटोरा भर चून

दे दिया करता था और वह सिर पर हाथ फेर कर कहा करता था, "बेटा। जीते रहो।" नहीं यह बात नहीं। शायद वे कुछ सम्बन्ध ऐसे थे जो जाति विशेष की सीमा से परे हैं, जो मानव मानव के पारस्परिक व्यवहार की भित्तियों पर आधारित हैं, जो मन मन की आंतरिक सूक्ष्म भावनाओं से कसे हैं।

मेरा मन बार-बार यही करता है कि आपके पास चला आऊँ। मैं एक कामरेड की तरह आप के साथ दिन भर काम करूँ, तो मुझे बड़ी प्रसन्नता हो। आपके महान् यन्त्र में यदि मैं कभी किसी कल पुर्जे की तरह भी फिट हो सका, तो मैं उसे अपना सौभाग्य ही समझूँगा।

जब कभी भी मैं महादेवी जी के पास जाता हूँ, पूरे समय आप याद आते रहते हैं। हाँ, शरीर से तो नहीं, पर भाव से आप सदा ही वहाँ रहते हैं। कितनी बार ऐसा Co-incidence हुआ है कि मैं इधर उनसे बातें कर रहा था और उसी समय आप मुरादाबाद में यह सोच रहे थे कि मैं इस समय वहाँ गया हूँगा। यह क्या बात है? आप ने एक बार बताने के लिये कहा था। इस बार बताइयेगा न?

सश्रद्धा
शिवचन्द्र नागर

४१

३० ए० बेली रोड
इलाहाबाद
६।६।४७

आदरणीय 'मानव' जी,

आपके २।६ और ४।६ के पत्र क्रमशः परसों मध्यान्ह और कल संध्या को मिले।

अब से तीन चार साल पहले मेरा यह स्वप्न था कि मैं किसी दिन एक पत्र का संपादक होऊँ। पर फिर सम्पादकों की गरीबी देखकर मन हटता गया, क्योंकि मेरे मन में बचपन से ही गरीबी के प्रति विद्रोह रहा

है और अब भी है। गरीबी से निकलने के लिये तो अब भी संघर्ष करना पड़ेगा ही। पता नहीं यह संघर्ष कैसा होगा, यही सोचकर कभी कभी मन घबरा उठता है।

अब हिन्दी का भविष्य बहुत उज्ज्वल है, ऐसा लगता है; अतः सम्पादकों की दशा सुधरेगी ऐसी भी आशा है। एक स्वतन्त्र देश में किसी पत्र का सम्पादक होना एक महान् गौरव की बात ही होती है।

महादेवी जी को तो आप को प्रथम अंक से ही पत्र भेजना था। अब दोनों अंक भेज दीजियेगा। साधारण पत्र भले ही हो, पर वह आपका तो है और फिर पत्र की ऊपरी सुन्दरता से उन्हें क्या लेना? संकोच न कीजिए।

आप थीसिस के काम को छोड़ियेगा नहीं। मुझे तो पक्का विश्वास है कि संसद् में रहने पर आपका शेष काम दो महीने में पूरा हो जायेगा। इतनी बड़ी चीज के लिये यदि आप इतना समय दे सकें, तो बहुत अच्छा रहेगा। मुझे ऐसा लगता है कि थीसिस का काम इस वर्ष हो गया तो होगया, नहीं तो फिर होगा नहीं। ना करने की तो बात ही नहीं उठती। जैसा आप को अपने साधारण पत्र पर संकोच है ऐसा ही संकोच उन्हें भी था। वे कह रही थीं कि अभी जंगल में क्या बुलाऊँ। कुछ ठीक ठाक हो जाये तो फिर बुलाऊँगी।

जब आपके मन में इस समय आने की बात उठी है तो आइये न। यहाँ सब आपको याद करते हैं। तो फिर कब आइयेगा?

शकुन्तला जी का पत्र आया था। उन्हें 'विजय' की प्रति मिल गई है।

आपने आकर्षण की बात लिखी। निस्संदेह आकर्षण एक महान् शक्ति है, यदि आकर्षण हो। कभी कभी मैं सोचता हूँ जिस समय हम किसी व्यक्ति विशेष के विषय में स्वप्न देखते होंगे, तो उसे भी तो कुछ होता होगा? कभी मैं आकर्षण के इस रहस्य की स्वयं विवेचना करने लगता हूँ। सोचता हूँ बहुत सी वीणायें हैं वे सब एक ही Dune

में attuned हैं, तो फिर एक को झंकृत करने से पास वाली वीणायें स्वयं झंकृत हो उठती हैं। ऐसी ही बात हृदयों की होगी, प्राणों की होगी। यदि प्राण प्राणों से बँधे हुये हैं, हृदय हृदय से मिला हुआ है तो एक हृदय की झंकार, एक प्राण की पुकार, दूसरे हृदय तथा प्राण तक नहीं पहुँचती होगी? अवश्य पहुँचती होगी। इसी बल पर मेरा विश्वास है कि अपना व्यक्ति कितनी ही दूर क्यों न हो और मन के भावों के आदान-प्रदान के सभी साधन समाप्त क्यों न हो गये हों, पर फिर भी अपनी बात अपने आदमी तक पहुँचायी जा सकती है। कभी हम बैठे-बैठे ही अकारण आकुल हो उठते हैं, सहसा व्यथा में डूब जाते हैं, अपने आप मुस्करा उठते हैं, हँस उठते हैं, गा उठते हैं। यह सब क्या है? अपने आदमी की तीव्रानुभूति की लहरें बिखर पड़ी होंगी। उन लहरों से हमारे एक लय में मिले, प्राण-यन्त्र की अन्तर्चेतना सिहर उठती है। यह अकारण व्यथा, उदासी, मुस्कान आदि उसी की वाह्य अभिव्यक्तियाँ हैं।

मैंने महादेवी जी को 'बा' कहा है और माँ का यह सम्बन्ध मेरी ओर से मन का सम्बन्ध है। मैं इस बात में भी विश्वास करता हूँ कि मन में जैसी बात हो, व्यवहार में भी वैसी ही आनी चाहिये। पर बात-चीत में दो व्यक्तियों को एक ही स्तर पर उतरना पड़ता है। जहाँ बात-चीत करने वाले व्यक्ति दो भिन्न-भिन्न स्तरों पर हैं, वहाँ बातचीत नहीं हो सकती। इसी से कभी-कभी ऐसे प्रश्न कर बैठता हूँ जो सामान्य रूप से मुझे नहीं करने चाहिये थे।

हो सकता है मैं उनके बहुत से विचारों से सहमत न होऊँ, पर फिर भी जिस रूप में मैंने उन्हें देखा है, उसकी गरिमा के निर्वाह में कभी कोई कमी नहीं आयेगी। आप विश्वास रखें।

सश्रद्धा

शिवचन्द्र नागर

पुनश्चः 'विजय' के लिये जो कुछ भी यहाँ मिलता रहा करेगा, भेजता रहा करूँगा। सामाजिक तथा राजनीतिक लेख लिखने वाले यहाँ कम हैं, फिर भी मैं प्रयत्न करूँगा।

पत्र हम दोनों का है, मैंने तो यही सोचा है और ऐसा लगता भी है। आपने सहकारी के रूप में नाम देने की बात लिखी। मेरे और आपके बीच नाम की बात उठती ही नहीं।

नागर

४२

३० ए० बेली रोड
इलाहाबाद
१३।६।४७

आदरणीय 'मानव' जी,

आप का ६।६ का पत्र परसों संध्या को मिल गया था। आप आजकल मानसिक रूप से क्षुब्ध हैं, यह जानकर मन व्यथित हो उठा।

जब पीड़ा के भरे-भरे मेघ हृदयाकाश को इस प्रकार आच्छादित कर दें, तब एक ऐसा कोमल साथी अपने पास होना चाहिये जिसकी एक हलकी सी मुसिकान उन मेघों को भेद कर जीवन को इन्द्र-धनुषी बना दे, पर कहाँ मिलता है ऐसा साथी?

भटनागर साहब ने मुझसे यह बात कही थी कि अब मुरादाबाद से मानव जी का मन ऊब सा गया है। वहाँ कोई भी आदमी ऐसा नहीं जिससे बात की जा सके। तभी से मैं बराबर आपको इलाहाबाद आ जाने के लिये लिख रहा हूँ। आप आते क्यों नहीं?

कल श्रीमती सरोजिनी नायडू आई थीं। यह महिला आन्तरिक सौंदर्य और वाह्य कुरुपता का अद्भुत सम्मेलन है। ऐसी सुन्दर वक्तृता मैंने जीवन में कभी नहीं सुनी थी। ये अब वृद्ध हो गई हैं। सिर के बाल पूरी तरह सफेद होने को आ गये हैं। शरीर की त्वचा भी ढीली पड़ती जा रही है। पर इसके अन्दर एक कोकिल कंठ निहित है।

मैं समझता हूँ कि उस पर काल का प्रभाव नहीं पड़ा, यद्यपि लीलावती मुन्शी ने अब से दस साल पहले उनके रेखा-चित्र में यह लिखा है कि इनकी आवाज अब वैसी नहीं रही, जैसी पहले थी। आज भी इतनी मधुर आवाज सुनकर मैं कल्पना नहीं कर सकता कि पहले वह कैसी रही होगी। लगता है कि जैसे वसन्त के एक मधुर प्रभात में जोर से कोकिल बोल रही हो, जैसे कहीं कोई संगीतज्ञ कलाकार मुग्ध होकर सरोद बजा रहा हो ! श्रीमती सरोजिनी नायडू बोलती नहीं, कुहुकती हैं। उन्हें जो भारतवर्ष की कोकिला कहा जाता है वह ठीक ही है। ईश्वर ने ऐसे व्यक्ति को सुन्दर शरीर न देकर अन्याय ही किया है। उनके बोलने से ऐसा पता लगता था कि वे शिष्ट मजाक करने में बड़ी ही कुशल हैं, नकल उतारने में भी खूब निपुण हैं। जब वे बोलती हैं तो ऐसा प्रतीत होता है जैसे किसी अज्ञात् प्रदेश से वाणी का कलकल करता हुआ अविरल स्रोत निसृत हो रहा हो।

सश्रद्धा
शिवचन्द्र नागर

४३

३० ए० बेली रोड
इलाहाबाद
१७।६।४७

आदरणीय 'मानव' जी,

१४।६।४७ का पत्र कल संध्या को मिला। आपके लिफाफे के साथ ही दो लिफाफे और मिले जिनमें से एक में अथाह सुख का समाचार था और एक में अथाह दुःख का। उन पलों की अनुभूति मैं तो अवर्णनीय ही कहूँगा। पर फिर भी मुझे ऐसा लगा जैसे कि दम घुट सा रहा हो। आज मुझे महादेवी जी के शब्द रह रह कर याद आये, "दुःख सुख से अधिक व्यापक होता है, सुख को दुःख के नीचे दब जाना पड़ता है।" केवल याद ही नहीं मैंने इस सत्य का तीव्र अनुभव किया।

विश्वसनीय साथी के अभाव में मदिरा के प्यालों में दुःख डुबोया जा सकता है ऐसा मैंने सुना है, पर मैंने तो अब तक अपने मन को क्षुब्धता तथा विषाद को चाय के प्यालों में डुबोने का प्रयत्न किया है। ऐसे अवसर पर मुझे अकेले ही चाय पीना अच्छा लगता है और आस-पास दूर तक कोई आदमी न दिखाई दे तो बहुत ही अच्छा। आज भी मैंने ऐसा ही प्रयत्न किया पर आज मै चाय भी नहीं पी सका। रोने को मन हुआ, रो भी नहीं सका। हृदय इतनी जोर से धड़क रहा था कि ऐसा लगता था कि यह अपना स्थान छोड़ देगा। पर ऐसा कहाँ हुआ। मैं तो मृत सा अब भी जीवित हूँ।

अब की बार मेरा इरादा एक सुन्दर सा टी-सैट लाने का है पर यही सोच कर मन मुरझा जाता है कि हमारे पास उसकी सी पृष्ठभूमि कहाँ है?

'आलोक' के विषय में पत्र में भी पढ़ा था और कमल मोहन जी ने भी लिखा था। ठीक है थोड़े ही सदस्य रहेंगे तो ठीक तरह से चलता रहेगा। अधिक होने पर मत-वैविध्य हो जाता है और फिर संगठन की अपेक्षा चीज बिखर जाती है।

क्या करूँ, मेरी कोई भी संध्या अच्छी नहीं कटी। दो वर्ष से मेरी प्रत्येक उषा उल्लास लिये आई है और प्रत्येक संध्या अवसाद में मुझे डुबो गई है।

१४। ६ को चार बजे मैं महादेवी जी के यहाँ गया था। १२, १३ को यहाँ गंगा यमुना में जोर से बाढ़ आई है। कहते हैं ऐसी बाढ़ १६१६ में आई थी। गंगा का पानी मेरे घर के सामने वाली सड़क से कुछ दूर मिलने वाली सड़क के नीचे आ गया है। अपने घर के दरवाजे से मैं गंगा जी के दर्शन कर सकता था। जिस समय मैं वहाँ पहुँचा तो इंजीनियर साहब अपने परिवार सहित इसी समय उस स्थान का निरीक्षण करने आये थे। आज, कल की अपेक्षा दो फीट पानी उतर गया था। पर फिर पानी इतना आगे तक आ गया है कि गंगा

जी ने संसद् को तीन ओर से घेर लिया है। अब या तो नाव से वहाँ जाया जा सकता है या चौथी ओर से चढ़ कर। पर चढ़ने वाला मार्ग नवागंतुक को दिखाई नहीं देता। मैं भी जाकर तट पर खड़ा हो गया था। सोच रहा था नाव से जाऊँगा, पर इसी बीच दातादीन ने आवाज दी, "भैया इस रास्ते से आ जाओ।" उसका मतलब उस चौथे रास्ते से था। मैं उससे वहाँ गया। महादेवी जी इंजीनियर साहब को बाढ़ का Highest Water Mark दिखा रही थीं। महादेवी जी अपने कुटिया वाले प्लौट की ओर गईं। जो बात मैंने कही थी, वही हुई। गंगा की बढ़ती हुई उत्ताल तरंगों ने उसका एक कोना तोड़ दिया था, और साथ में महादेवी जी का लगाया हुआ चम्पा का पेड़ भी वे बहा ले गईं। ऐसा लगता था कि महादेवी जी को कोने के कट जाने का इतना दुःख नहीं था जितना अपनी चम्पा के बह जाने का। आज ही साथ घूमते-घूमते मुझे ऐसा लगा कि उन्हें फूल-पौधों का बड़ा विशद ज्ञान है। शायद ही कोई ऐसा फूल हो जिसका नाम वे न जानती हों।

इन्जीनियर साहब से मेरी बातचीत हुई। वे कह रहे थे कि महादेवी जी की कुटिया के प्लौट से लगा हुआ नहाने का घाट बनना चाहिये, तभी ठीक रह सकता है। और दूसरे अब संसद का सिंह-द्वार जहाँ महादेवी जी का विचार था, वहाँ नहीं बनेगा, क्योंकि वहाँ तो वह प्रत्येक वर्ष पानी से अवरुद्ध हो जाया करेगा।

थोड़ी देर हम अन्दर बैठकर बात करते रहे। मुझे उस भीड़ में अच्छा नहीं लग रहा था। महादेवी जी की बहिन भी आज सपरिवार आई हुई थीं। थोड़ी देर में महादेवी जी ने दो नावें मँगवाईं, और हम नाव में बैठ कर चले। बड़ी नाव में इन्जीनियर साहब, उनका परिवार, मैं, चित्रकार शम्भूनाथ और दूसरे दो एक व्यक्ति बैठे थे। छोटी नाव में महादेवी जी और उनकी बहिन का परिवार। हम चले। महादेवी जी की नाव छोटी थी। वह हमसे आगे ही रहती थी जैसे वह

वहाँ भी मार्ग प्रदर्शन कर रही हों। ५० मिनट तक हम नौका में घूमे। मेघाच्छादित असीमाकाश के नीचे अथाह समुद्र सी गंगा में इस तरह एक महान् कलाकार के सान्निध्य में नौका में घूमना कितना अच्छा लग रहा था।

इन्जीनियर साहब के पास छोटा वाला केमरा था। उससे महादेवी जी वाली नौका के दो (Snap) लिये। यदि वे ठीक आ गये होंगे, तो इन्जीनियर साहब से मैंने भेजने के लिए कह दिया है।

फिर संसद्-भवन में आकर महादेवी जी ने चाय का प्रबन्ध करने के लिए कहा। इतने में दो लड़के उन्हें निमंत्रित करने के लिये आ गये। पर महादेवी जी तो १९३७ से कहीं बाहर जाती नहीं। वे कह रही थीं कि भीड़ में व्यक्ति को समझा नहीं जाता। हाँ, एक फूल माला अवश्य मिल जाती है।

और जब उन लड़कों ने यह कहा कि ४५ मिनट के लिये ही चली चलियेगा तो कहने लगी, "प्रश्न ४५ मिनट का नहीं। जिस व्यक्ति ने जीवन साहित्य के लिये दे दिया उसके लिए ४५ मिनट की बात नहीं उठती है। प्रश्न सिद्धांत का है। अभी तो मेरा ऐसा ही निश्चय है और काम भी मेरे इतने पड़े हैं कि सोचती हूँ दिन में २४ घन्टे से अधिक हुआ करते। जीवन के अंतिम दिनों में हो सकता है इधर उधर भिक्षुक की तरह सभाओं और गोष्ठियों में ही घूमा फिरा करूँ।"

अब ६॥ बज गये थे। अन्धकार घिरने लगा था। सब लोग अपने-अपने घर को चल दिये। मैं रुकना चाहता था, पर महादेवी जी कहने लगीं कि तुम अकेले कैसे जाओगे?

मैंने कहा, "मैं चला जाऊँगा।"

"नहीं भाई, सुनसान सड़क है, दिन अच्छे नहीं, आने की बात तुम्हारी है, पर भेजने का उत्तरदायित्व मुझ पर है, 'आत्मन्' के साथ चले जाओ।"

विवश होकर मैंने विदा ली। महादेवी जी की बात उस समय मुझे कुछ बुरी लगी, पर दो क्षण बाद ही यह सोचकर गद्‌गद् हो गया कि उस बुरी लगने वाली बात के पीछे भी कितना स्नेह था, कितना वात्सल्य, और कितना अपनापन।

प्रगतिशील लेखक संघ की किसी भी बैठक में मैं गया नहीं। पर प्रगतिशील लेखक संघ में काफी संगठन तथा जान है, ऐसा लगा। इस अवसर पर इस संघ के सभी स्तंभ आये थे। आप होते तो सभी बैठकों में जाया जाता।

आप के पत्र के साथ ही 'विजय' का तीसरा अंक मिला। उसमें सबसे अच्छा तो मुझे 'संपादक के नाम पत्रों का उत्तर' लगा। सुश्री कांति त्रिपाठी का गद्य-गीत भी बहुत मार्मिक था।

'विजय' के ये अंक तो काफी अच्छे हैं। आपने महादेवी जी को क्यों नहीं भेजे ?

सश्रद्धा
शिवचन्द्र नागर।

४४

३० ए. बोली रोड
इलाहाबाद
२७।६।४७.

आदरणीय 'मानव' जी,

आपका २५।६ का कार्ड मिला। डा० रमेश वर्मा सोमवार को अपने गाँव चले गये। उन्हें अपने विषय में बड़ी भारी आर्थिक चिन्ता थी, पर उसी दिन Islamic Culture मैगज़ीन में उनके अँग्रेजी के लेख के स्वीकार होने की खबर आ गई। वहाँ से उन्हें सौ सवा सौ रुपया मिल जायगा। ईश्वर को जब किसी से कुछ कराना होता है तो उसे ऐसी स्थिति में डाल देता है कि वह पिस तो जाये, पर मरे नहीं।

मैं यहाँ से ७ अक्टूबर को चल कर आठ को मुरादाबाद पहुँचने की सोच रहा हूँ। अभी तो कई दिन हैं। इस बीच दो पत्र मेरे आप को और मिलेंगे और दो आपके मुझे।

आपने अपने परिचितों और साहित्यिक मित्रों के महादेवी विषयक लेखों की संकलित पुस्तक की योजना के विषय में जो एक बार चाय पर बात उठायी थी, उसका क्या रहा? वह काम इस बीच हो जाये तो अच्छा है।

चाहे आप फिल्म का जीवन ही अपनायें; पर थीसिस का काम तो तब भी होना ही चाहिये। थीसिस का बहुत सा काम तो आप कर चुके हैं। जो अवशेष है वह मैं समझता हूँ जनवरी तक पूरा हो जायेगा। थीसिस का फिल्म से कोई विरोध नहीं है। यह काम तो आप पूरा कर ही डालिये।

लिखने का काम तो होगा ही, पर संध्या को तो कुछ भी काम नहीं हो पाता। हाँ, गीत जैसी चीज़ संध्या को लिखी जा सकती है। संध्यायें तो बैठ कर बात चीत करने के लिये ही हैं। इस बार संध्या-समय क्लब को छोड़ कर आप से बातचीत न हो सकेगी, भला यह किस अपराध का दंड दिया जा रहा है?

इस शनिवार या रविवार को मैं 'साहित्यकार संसद' जाऊँगा।

सावित्री जी के लिये ट्रंक लेता आऊँगा। मनीआर्डर न भेजियेगा। 'रहस्य साधना' की बिक्री का रुपया मेरे पास है।

आजकल ट्रेन में सुना है काफी गड़बड़ है। पत्रों के समाचारों से भी ऐसा ही पता लगता है। लिखिये मुरादाबाद नगर का सांप्रदायिक वातावरण कैसा है?

मैं दो महीने से बँगला पढ़ रहा हूँ। शरतचन्द्र के उपन्यास बँगला में ही पढ़ना चाहता हूँ। 'शेष प्रश्न' आपके पास मिल जायेगा क्या?

सश्रद्धा

शिवचन्द्र नागर

४५

३० ए बेली रोड
इलाहाबाद
२ । १० । ४७

आदरणीय 'मानव' जी,

आज प्रभात में महादेवी जी के यहाँ गया था। वहाँ से लौटने पर आपका ३०।६ का पत्र मिला।

यदि प्रेम को अनुकूल परिस्थितियाँ मिलती हैं, तो प्रेम कहीं भी हो सकता है, अपनी शिष्या से भी। प्रेम किया नहीं जाता, प्रेम हो जाता है, ऐसा मेरा विश्वास है। एक दूसरे को ठीक से समझने का अवसर जितना गुरु और शिष्य को मिलता है इतना और किसी को कदाचित् ही मिलता हो। इसलिये यहाँ प्रेम का पैदा हो जाना और भी अधिक सम्भव है। पर साथ-साथ मेरी धारणा यह है कि प्रेम एक ही व्यक्ति से किया जा सकता है, इसलिये यदि कोई शिक्षक कहीं एक जगह प्रेम में पड़ जाता है और फिर कहीं दूसरी जगह भी, तो मैं उसे गुंडे के अतिरिक्त और कुछ नहीं समझता। मैं ऐसे एक दो शिक्षकों को जानता हूँ जिन्होंने एक से एक सुन्दर लड़कियों को पढ़ाया है पर उनमें से एक से ही कहीं पहले, बीच में, या बाद में प्रेम हो गया और उसी की साधना में उनका जीवन बीत गया। गुरु और शिष्य का सम्बन्ध रक्त का सम्बन्ध नहीं, भाव का सम्बन्ध है। भाई-बहिन माता-पिता, बाप-बेटा ये स्थूल सम्बन्ध हैं। इनमें से दो सम्बन्ध एक साथ नहीं चल सकते, पर गुरु शिष्य का सम्बन्ध इनसे सूक्ष्म है। पति-पत्नी भी गुरु शिष्य हो सकते हैं, भाई बहिन भी गुरु शिष्य हो सकते हैं और प्रेमी-प्रेमिका भी। गुरु और शिष्य का मेरी दृष्टि में केवल इतना अर्थ है कि यदि हमने किसी से कुछ सीखा तो उस क्षेत्र में वह व्यक्ति हमारा गुरु है, हमें उसके प्रति श्रद्धा रखनी चाहिये। इस प्रकार एक व्यक्ति के जीवन में पचासों गुरु आ सकते हैं और गुरु के जीवन में पचासों

शिष्य। यह सम्बन्ध तो दोनों ओर के निर्णय पर आधारित है। मान लो एक लड़की मेरी शिष्य है। मैं उसे शिष्या मानता हूँ, पर वह मुझे गुरु नहीं मानती। फिर यह तो एक ही ओर का निर्णय हुआ। ऐसी अवस्था में क्या किया जाये ?

आपने 'समाज में अव्यवस्था' की बात लिखी है। हाँ, सामाजिक दृष्टिकोण से किसी भी आदमी का व्यक्तिगत कार्य जिसका समाज पर बुरा परिणाम पड़ता है वर्जित हैं। एक शिक्षक या डाक्टर यदि ऐसा काम करता है तो उससे पूरी शिक्षक या डाक्टर जाति पर कलंक लगता है, यह भी मानता हूँ; पर आज का युग व्यक्ति को व्यक्ति की तरह अधिक देखने का है। यदि एक शिक्षक घर-घर की लड़कियों को भ्रष्ट करता है, तो केवल उन महोदय को कोई अपने घर पर नहीं बुलायेगा, न कि शिक्षक जाति पर से ही विश्वास उठ जायेगा।

दूसरी बात आपने 'विश्वासघात' की लिखी है, पर सच पूछिये तो यह विश्वासघात शिक्षकों की और डाक्टरों की प्रेम-कथाओं तक ही सीमित नहीं, बल्कि भारतवर्ष में ९९ प्रतिशत प्रेम-कथायें इसी विश्वास-घात पर आधारित होती हैं, चाहे वह किसी भी रूप में किया गया हो। हमारे समाज में खुले रूप में प्रेम के लिये स्थान नहीं, इसीलिये हमारे यहाँ की अधिकांश प्रेम-कहानियाँ किसी आवरण के पीछे चलती हैं। एक बार सुमित्रानन्दन पंत ने प्रेम पर बातचीत करते हुये यही बात कही थी कि हमारे यहाँ शास्त्र ने या समाज ने प्रेम की आज्ञा कहीं नहीं दी, हमारे यहाँ प्रेम का देवता कोई नहीं, इस पर मैंने कहा काम-देव है तो कहने लगे, "वे तो काम के देवता हैं, प्रेम के नहीं।" उनकी बात सच ही है। हमारे यहाँ नारी को प्रेमिका बनने का आदेश नहीं दिया गया। लड़की को केवल पत्नी बनने का अधिकार है और फिर माता। और तो क्या जिन दो व्यक्तियों का विवाह-सम्बन्ध निश्चय हो गया है पर विवाह संस्कार में एक दो साल का समय है तो उन व्यक्तियों में भी इस बीच प्रेम का व्यवहार ठीक नहीं समझा

जाता। हमारे यहाँ यह बात भुला दी गई है कि प्रेम भी मन की स्वाभाविक माँग है। हमारे यहाँ हज़ारों विघ्नों, हज़ारों बाधाओं और हजारों नियन्त्रणों के बीच में मार्ग निकालना पड़ता है। डाक्टर और शिक्षक की बात छोड़ दीजिये, पर किसी भी व्यक्ति को यदि घर में आने दिया जाता है तो वह इसलिये नहीं कि वह हमारी लड़की या हमारी बहिन से प्रेम करे, पर सब प्रेम-कहानियाँ ऐसे ही चलती हैं। सभी में भारतीय दृष्टिकोण से विश्वासघात रहता है। इस विश्वासघात की डिग्री में अन्तर हो सकता है, पर और कुछ नहीं। इसलिये इस विश्वासघात का दोष केवल शिक्षकों या डाक्टरों पर ही नहीं लगाया जा सकता, बल्कि जो भी प्रेम करता है उसी पर लगाया जा सकता है।

आपने 'मन के निग्रह' की बात लिखी है। कोई भी तटस्थ व्यक्ति यही बात कहेगा, पर वास्तविकता यह है कि जब दो व्यक्तियों में प्रेम का जन्म होता है तो इससे पहले का स्टेज संघर्ष का स्टेज है। उनके मन में निग्रह की बात आती है, अपने मार्ग की बाधाओं पर ध्यान जाता है, अपनी अपनी परिस्थितियाँ देखते हैं, सभी बातें सोचते हैं। यह संघर्ष बहुत दिनों तक चलता है। यदि इस संघर्ष को ठीक से पार कर गये तो बिना भीगे हुये नदी पार कर गये; पर यदि पराजय हो गयी तो फिर डूब गये। उस समय डूबना ही अच्छा लगता है, बहुत अच्छा। तब निग्रह की बात मन में नहीं उठती।

जिस व्यक्ति का मन भरा-भरा है वह हजार सुन्दरियों के बीच विचरण कर सकता है—निर्भय और निश्चिंत देवता की तरह, पर जिसका मन भरा हुआ नहीं, उसको सभी जगह भय है। परिस्थितियाँ मिलने पर प्रेम का कहीं भी जन्म हो सकता है। आखिर शिक्षक और डाक्टर भी मनुष्य हैं, यह बात आप क्यों भूल जाते हैं?

आज सुबह सात बजे मैं साहित्यकार संसद गया था। महादेवी जी अपने कमरे में बैठी हुई अखबार पढ़ रही थीं। प्रभात में समाचार-पत्र आज कल के युग एक आवश्यक साथी हो गया है। मैंने उसके बीच के दो

पन्ने ले लिये और देखने लगा। कुछ ही देर बाद महादेवी जी बाहर चली गईं। दो ही क्षण बाद लीला आई। बोली, "बाहर बुला रही हैं।" मैं बाहर उठकर गया। महादेवी जी ने मुस्करा कर कहा, "देखो भाई हमारी बेल में फूल आ गया।" उन्होंने फूल की ओर इंगित कर कहा। भवन के द्वार पर जो बेल उन्होंने बहुत दिन पहले लगाई थी, वह अब बड़ी होकर बहुत ऊपर तक पहुँच गई थी। और यह फूल उस पर सबसे पहला फूल था। इस फूल के खिलने पर महादेवी जी के मुख पर एक प्रकार का आह्लाद उमड़ा पड़ रहा था। मुझे महादेवी जी की वह बात याद आ गई जो उन्होंने 'यामा' की भूमिका में लिखी है कि जब एक फूल खिलता है तो मुझे ऐसा लगता है जैसे यह फूल मेरे मन में ही खिला हो। फिर उनकी दृष्टि एक गमले पर गई। उसमें लगे हुये पौधे की एक शाखा सूखती जा रही थी। माली से गमला उठा लाने के लिये कहा और देख कर कहने लगीं, "इसकी मिट्टी में कुछ खराबी है मिट्टी बदल दो।"

लता, फूल, पत्तियों से उनका ऐसा ही नाता है जैसे वे उनके विशाल परिवार के सदस्य हों। वे उन सब के नाम जानती हैं। उनकी बातें समझती है और अपने शिशुओं की तरह ही उनका पोषण करती हैं, ऐसा लगता है। मैंने कहा, Symmetry के लिये ऐसी ही लता इस द्वार के दूसरी ओर लगा दीजियेगा।" कहने लगीं—

"यहाँ तो सामने बरामदा बनेगा। यह भी यहाँ से हटानी होगी। कैसे हटायी जायगी?" जैसे उसे हटाने का काम उनसे नहीं हो सकेगा, इस प्रकार उन्होंने कहा और बात है भी स्वाभाविक ही। जो लता उन्होंने लगायी है, उसका हटाया जाना कम से कम उन्हें अच्छा नहीं लगेगा। फिर हम बाहर उस कुंए के पास वाले ऊँचे चबूतरे पर जहाँ पहली बार संध्या को बैठे थे, बैठे गये। उसके नीचे ही एक छोटी सी पोखर में कमल लगा दिये हैं। अभी उन कमलों में फूल नहीं आये। अभी केवल जल पर पात ही पात तैर रहे हैं।

"आप तो इस बीच लखनऊ गई थीं ? रामदास कह रहा था कि तार आया था।"

"हाँ, सरोजिनी नायडू से मिलना था। उन्होंने इधर ही तिथि निश्चय कर दी।"

"संसद् के उद्घाटन का क्या रहा ? सरोजिनी नायडू आयेगीं ?"

"हाँ, मैं तो चाहती थीं वे आयें, पर वे हिन्दुस्तानी की पक्षपाती हैं, इसलिये हमारे यहाँ के और लोग नहीं चाहते। वैसे तो उन्होंने हिन्दी में ही बात की। कहीं कहीं उर्दू के शब्द भी आ जाते थे।"

"उन्हें बुला लिया जाता तो अच्छा ही था। व्यक्तिगत रूप से हिन्दुस्तानी की पक्षपाती होने दीजिये। पर उनके साहित्यिक व्यक्तित्व में तो किसी को कोई सन्देह नहीं।"

"हाँ, यदि उनके हाथ से यह काम होता, तो सारे प्रान्त का ध्यान इस ओर आकर्षित हो जाता ; पर अपने यहाँ के व्यक्तियों की ऐसी सलाह नहीं। ठीक है सब काम सबकी प्रसन्नता से ही ठीक होते हैं।" उनकी बात से यही लग रहा था कि महादेवी जी साहित्यकार संसद की सब कुछ हैं, पर फिर भी Dictatorship में विश्वास नहीं रखती Democracy में रखती हैं। मैंने कहा—

"हिन्दुस्तानी का पक्षपात तो उनकी पार्टी की नीति है।"

"हाँ, भाई राजनीति में तो वीर-पूजा चलती है। सरोजनी नायडू गांधी जी के विरुद्ध विद्रोह नहीं कर सकतीं। यह तो हम जैसों से ही सम्भव है। हम गांधी जी के भक्त भी हैं, उन पर कविता भी लिखते हैं, पर उनका विरोध भी कर सकते हैं। हम से भक्ति में व्यक्तित्व का तो नहीं मिटाया जा सकता" महादेवी जी ने कहा।

"हाँ, यह बात तो ठीक है। वहाँ तो पार्टी की नीति है। सरोजिनी नायडू तो उस दल की सैनिक मात्र हैं जिसके सेनानी महात्मा गाँधी हैं। वह उनका विरोध नहीं कर सकतीं" मैंने कहा। कुछ क्षण हम चुप रहे। महादेवी जी बोलीं—

'इसी के साथ उन्नाव में निराला जी से भी मिल आयी। पता चला था, वे बहुत पागल हो गये हैं। उन्हें कमरे में बन्द रखते हैं। लोगों को मारते-वारते भी हैं। पहले तो वे ऐसा कुछ करते नहीं थे। मैं तो सोचती थी ऐसी दशा में पहचानेंगे भी नहीं, पर नहीं उन्होंने पहचान लिया और कोई ऐसी बात भी मुझे तो दिखाई दी नहीं जो उन्हें बन्द करके रक्खा जाता। सुमित्राकुमारी जी के पति महोदय का स्वभाव कुछ ऐसा ही है। निराला जी से कुछ कह दिया होगा, फिर उनके लिये मारने को दौड़ बैठना कोई आश्चर्य की बात तो नहीं, हँस कर महादेवी जी ने कहा।

"जब निराला जी को वहाँ ठीक वातावरण नहीं मिलता तो वे रहते क्यों हैं?" मैंने पूछा।

"निराला जी कहते हैं कि अन्न का सब जगह बड़ा कष्ट है। अब किसके यहाँ रहा जाये। ये तो जमींदार हैं। गाँव से अन्न आता है। आठ दस आदमी और खाते हैं उसी में मैं भी खा लेता हूँ। उनके यहाँ मेरा खाना कुछ मालूम नहीं होता। और कहीं ऐसा नहीं हो सकता था।"

"हाँ, यह तो बात ठीक है। जमींदारों के अतिरिक्त और तो सब जगह अन्न का बड़ा कष्ट है, इसलिये दूसरी जगह निभना तो कठिन ही था," मैंने कहा। "इतना तो उन्हें करना ही चाहिये। उनकी पुस्तकें भी तो उनकी संस्था से निकलती हैं," महादेवी जी बोलीं।

"निराला जी का वे व्यवस्थित रूप से इलाज क्यों नहीं कराते?"

"व्यवस्थित रूप से क्या इलाज करायें! उनके अनुकूल वातावरण रहे तो वे अधिक कुछ पागलपन की बातें नहीं करते।" फिर हम चुप हो गये। मैंने पूछा—

"पंत जी अभी तो यहीं हैं।"

"हाँ, यहाँ है। उनकी भी 'लोकायन' की योजना चल रही है।"

"पहले तो उन्होंने 'लोकायत' नाम रक्खा था।"

"हाँ; अब बदल कर 'लोकायन' कर दिया है। कह रहे थे 'लो-कायन' के अन्तर्गत ही साहित्यकार संसद की योजना आ जायेगी। नाम 'लोकायन' रहेगा। पर यह कैसे हो सकता है। 'लोकायन' में तो कोई भी योजना जो लोक-कल्याण के लिए हो आ सकती है। पर हमारी संस्था तो लेखकों और साहित्यिकों के जिस उद्देश्य को लेकर चली है, वह बात तो इस नाम से व्यक्त होती नहीं।"

"हाँ, आप जिस उद्देश्य को लेकर चली हैं उसके लिये तो 'साहित्यकार संसद' नाम ही सबसे उपयुक्त है," मैंने कहा "पर 'लो-कायन' का क्या उद्देश्य है?"

"यह संस्था कला और संस्कृति से सम्बन्धित होगी।" इतनी देर में लीला आयी और महादेवी जी से कहा, 'चाय हो गई।' हम लोग उठकर अन्दर चले दिये। रास्ते में वे कहती आ रही थी, "यहाँ बहुत से छोटे-छोटे कुन्ज बनवाऊँगी जिनमें खूब फूल हों। मुझे फूलों वाली जगह बैठना अच्छा लगता है।" इस प्रकार हम अन्दर कमरे में आ गये। वहाँ पांडे जी बैठे एक पुस्तक पढ़ रहे थे। अब खाना-पीना आरम्भ हुआ। मैंने तीन प्याले चाय पी और एक Energy बिस्कुट खाया और फिर अनन्नास के मुरब्बे के साथ एक गरम-गरम पराँवटा भी उड़ाया।

खाना समाप्त होने पर महादेवी जी ने एक अँग्रेजी की मोटी पुस्तक उठायी। उस पुस्तक का नाम था The cultural heritage of india। उसमें बहुत से पेन्टिंग्स थे। उन पर टीका टिप्पणी हुई। उसमें बहुत सी Architectural buildings के नमूने थे। उनमें से 'साहित्यकार संसद' के मुख्य द्वार के लिये Design छाँटा गया और साथ ही कुछ Design छतों और स्तभों के लिए भी निकाले गये।

साढे दस बजे मैं घर आ गया था।

सश्रद्धा

शिवचन्द्र नागर।

४६

३० ए० बेली रोड
इलाहाबाद
३।११।४७
प्रभात

आदरणीय 'मानव' जी,

जब तक मनुष्य केवल भोक्ता रहता है, तब तक उसकी स्थिति उस मनुष्य की सी है जो किसी विशेष रस में डूब गया हो; किन्तु वही भोक्ता जब अपने भोग का दूर से द्रष्टा हो जाता है, तो उसकी स्थिति एक आलोचक की सी हो जाती है – उस मनुष्य की सी जो रस के स्रोत से निकल कर किनारे पर आ खड़ा है। एक दो दिन यहाँ आने पर ऐसी ही स्थिति में मैं पड़ा रहा। मन अपना ही आलोचक हो उठा। पूरा अक्टूबर बीत गया और मैंने कुछ नहीं किया, मुझे अपनी निष्क्रियता पर खीझ हुई और साथ ही पश्चात्ताप भी।

कल प्रभात काल ६।। बजे मैं संसद् गया था। मन में जाने की बात तो ३० ता० से ही थी, पर जाना नहीं हो सका था।

नवोदित सूर्य की कोमल किरणों में अपने घर से संसद् तक की यह सवा मील की पैदल यात्रा ऐसी है कि न तो थकान ही मालूम होती है और न मन ही ऊबता है। सात बजे मैं वहाँ पहुँच गया था। महादेवी जी चाय पीने जा रही थीं। उन्होंने अपना प्याला बना लिया था। चीनी की एक प्लेट में सीताफल रखा था। मैंने हाथ जोड़ कर प्रणाम किया और उनके पास बैठ गया। महादेवी जी एक पतली सफेद धोती पहने थीं और एक सिलहैटी रंग की ऊनी चादर उनके कन्धों पर पड़ी थी। चेहरे से ऐसा लगता था जैसे उनका स्वास्थ्य पहले की अपेक्षा कुछ गिर गया हो। सीताफल की ओर इंगित कर कहने लगीं, "आज एक पेड़ पर यह सीताफल पक गया था।"

"यह सब से पहला पका हुआ सीताफल है?" मैंने हर्षातिरेक में पूछा।

"हाँ, आज सुबह मैंने देखा, कि तोते ने इसे उधर से काट दिया है। मैंने सोचा जरूर पक गया होगा। माली इसे तोड़कर ले आया है।"

"तब तो यह जरूर मीठा होगा। फलों के मामले में पक्षियों को मनुष्यों से अधिक पहचान होती है। चलो इसका आधा भाग मेरे भाग्य में भी था, मैंने हँस कर कहा। उन्होंने नौकर से कुछ और लाने के लिये कहा। अपना चाय का प्याला उन्होंने मेरी ओर बढ़ा दिया, और दूसरा प्याला बनाने लगीं। मैं चाय पीने लगा। उन्होंने प्रश्न किया, "कब आये ?"

"२६ की मध्यान्ह में आ गया था।"

"मानव जी अच्छी तरह हैं ?"

"हाँ, वैसे तो सब ठीक हैं। उनके दो बच्चे थे—प्रभात और राजीव। उनमें से छोटा राजीव जाता रहा। सारे घर में शोक पूर्ण वातावरण छाया था। पर'मानव'जी तो ऐसे समय में भी धैर्य नहीं खोते। दुःख तो उन्हें अथाह हुआ होगा, पर हमने उनकी आँख में आँसू नहीं देखे। गम्भीरता से बच्चे की मृत्यु के बारे में बताते रहे। बातचीत करते रहे।" महादेवी जी कुछ नहीं बोलीं। वातावरण उदास हो गया था। मैंने नीरवता भंग करते हुए कहा; "ऐसे अवसरों पर बहुत कम व्यक्ति ही संयम रख पाते हैं।"

"संयम रखना चाहिये। जो दुःख प्रकाश में आ गया, उसका कुछ मूल्य नहीं रह जाता" महादेवी जी ने कहा।

"मृत्यु को इतने पास से उन्होंने पहली बार ही देखा था। रात के नौ बजे से बच्चे को गोद में लिये बैठे रहे और रात के बारह बजे मृत्यु उसे उनसे छीन कर ले गई।...... मृत्यु का भी कैसा मन को हिला देने वाला दृश्य होता होगा ?" अपनी आँखें फाड़ कर और गम्भीर होकर एक उच्छ्वास भरते हुए महादेवी जी ने कहा, "ठीक वैसे ही होता है जैसे धीरे धीरे उस पार जाते हैं।" उनकी दृष्टि

खिड़की से चमकते हुए गंगा के उस पार बालुकामय तट पर थी। मैंने चाय का एक घूंट भरा और एकटक दृष्टि से उसी ओर देखने लगा। उसी क्षण जैसे मृत्यु के बहुत से दृश्य महादेवी जी की आँखों के सामने आगये हों। बोलीं, "मैंने भी बहुत सी मृत्यु देखी हैं। कुछ लोगों की बड़ी ही शांत मृत्यु होती है और मरने पर उनकी आकृति सौम्य और शांत रहती है; पर बहुतों की मृत्यु बड़ी कष्टपूर्ण होती है तथा मरने पर आकृति विकृत तथा विकराल लगने लगती है। ऐसा लगता है कि मृत्यूपरान्त जीवन में किये हुए सुकृत्य और दुष्कृत्य, शरीर की चेतना निकल जाने पर मुख पर लिखे से रह जाते हैं। उन अंकों को न तो वह छिपा सकता है और न कोई मिटा सकता है," महादेवी जी ने कहा और फिर बोलीं "मृत्यु पर, दुःख तो होता ही है।"

"पर प्रत्येक की मृत्यु पर दुःख नहीं होता।" मैंने कहा।

"बहुत सी मृत्यु हम दूर से देखते हैं, हाँ भाई, मर गया। एक क्षण के लिए उदासी की रेखा सी तो अवश्य दौड़ जाती है; पर इससे अधिक कुछ नहीं।"

"भाई, दुःख तो भाव के संयोग से होता है। अपरिचितों की मृत्यु पर कोई विशेष दुःख नहीं होता, क्योंकि उनसे कोई भाव का सम्बंध नहीं रहा। परिचितों की मृत्यु पर दुख होता है और सगे सम्बन्धियों की मृत्यु पर उससे भी अधिक, क्योंकि उनसे भाव का सम्बन्ध और गहरा रहता है।" महादेवी जी ने कहा। मैं अपना प्याला पी चुका था। मैंने उसे दूसरी बार भरने के लिए महादेवी जी के पास सरका दिया। मैंने पूछा, "पर बहुत से व्यक्ति ऐसे हैं जिनकी संवेदना बड़ी व्यापक हो जाती है। क्या उनको भी अपने पास वाले व्यक्ति की मृत्यु पर अपने दूर वाले व्यक्ति की मृत्यु से अधिक दुःख होता होगा?"

"दुःख तो उतना ही बड़ा होगा, जितना बड़ा उसे आधार मिलेगा। महात्मा गाँधी तो प्राणी मात्र के दुःख से ही दुखी होने वाले व्यक्ति हैं, पर उनके भी जब महादेव देसाई की मृत्यु हुई तो आँसू आ गये। वहाँ भाव

का विस्तृत आधार था। कस्तूर बा की मृत्यु पर उनके आँसू आ गये। वे उनकी जीवन संगिनी थीं। सदैव उनके साथ रही थीं। कितनी अनुभूतियों के संस्मरण उनके साथ जुड़े थे। जब युग का इतना महान् व्यक्ति भी इस अन्तर से नहीं बच पाया, तो हमारी क्या गणना। अन्तर चाहे कितना सूक्ष्म क्यों न हो, पर रहता अवश्य है।" फिर थोड़ी देर रुककर बोलीं, "गुप्त जी को अपने भाई की मृत्यु पर दुःख हुआ। वे उनके प्रेस का काम सँभालते थे, पेपर का, पुस्तकों का समस्त प्रबन्ध करते थे, उन पर भरोसा करके गुप्त जी निश्चिन्त थे। वह व्यक्ति चला गया फिर कभी न आने के लिये। वे उनके भाई थे। उनकी मृत्यु के बराबर दुःख गुप्त जी को मुन्शी जी की मृत्यु पर भी हुआ। जब मुन्शी अजमेरी दफ़नाये जा चुके, तो गुप्त जी गंगा-जल फूल और गंगा रज लेकर कब्र पर पहुँचे। उनकी कब्र पर मिट्टी बिछायी, गंगाजल छिड़का, मंत्र पढ़े और फूल चढ़ा कर अपने घर चले आये। गुप्त जी को अपने सगे भाई की मृत्यु जैसा ही दुःख हुआ। बाहर से इस पर बहुत से विश्वास नहीं करेंगे। पर यह बात ठीक ही है, क्योंकि गुप्त जी के भाई तथा अजमेरी जी अन्तर की एक ही गहराई में उतर गये थे।"

"प्रसाद जी की मृत्यु पर भी गुप्त जी को बहुत दुःख हुआ था।"

"हाँ, हुआ तो था, पर प्रसाद जी से तो केवल इतना ही सम्बन्ध था कि जब गुप्त जी काशी जाते थे तो उनके यहाँ ठहरते थे; पर अजमेरी जी उसी चिरगाँव के रहने वाले थे। दिन रात का साथ था। हिन्दू मुस्लिम संगठन में दोनों ने मिल कर काम किया था। ऐसी स्थिति में परिचित और सम्बन्धी में अन्तर नहीं रह जाता," महादेवी जी ने कहा।

"आप ने ऐसे भी तो एक दो व्यक्तियों की मृत्यु देखी होगी जो बहुत दिनों तक आप के साथ रहे होंगे, जिन्होंने आपके साथ मिल कर काम किया होगा?"

"हाँ, क्यों नहीं। दुःख तो होता ही है पर मेरे साथ अन्तर बहुत सूक्ष्म है। किसी भी व्यक्ति की मृत्यु पर जो परिचित है उससे कम दुःख

नहीं होता।" फिर कुछ क्षण चाय में बिता कर बोलीं, "मेरे साथ कुछ ऐसा हो गया है कि मेरे चारों ओर के व्यक्ति मिल जाते हैं तो अच्छा लगता है। बहुत दिनों तक उनमें से कोई व्यक्ति नहीं मिलता तो विशेष बुरा नहीं लगता। मेरे भाई हैं। पहले थोड़े दिनों में ही ऐसा लगने लगता था कि बहुत दिन हो गये। अब दो दो, तीन तीन वर्ष बीत जाते हैं, पर मन में कोई ऐसी बात नहीं उठती। अपने चारों ओर के व्यक्तियों में कोई बहुत पास है, कोई बहुत दूर, ऐसा भी अनुभव नहीं करती, पर इतनी बात है कि एक सीमा से मैं किसी को आगे नहीं बढ़ने देती।" अब तक मैं दूसरा प्याला और प्लेट की मिठाई साफ कर चुका था। मैं मनमें ही सोचने लगा कि महादेवी जी को अब किसी का मोह नहीं रहा। अब वे निर्लिप्त अवस्थाको प्राप्त हो गई हैं। वे अपने चारों ओर के व्यक्तियों से स्नेह वात्सल्य और दुलार के बहुत ही मीठे सम्बन्ध रखती हैं, पर उस मिठास का वे स्वयं अनुभव नहीं करतीं। ये सब सम्बन्ध उनके व्यक्तित्व के साथ ऐसे ही लगे हुए हैं जैसे एक विशाल कमलदल पर सैकड़ों छोटे बड़े जल-बिन्दु।

सीताफल को मेरी ओर सरकाते हुए महादेवी जी ने कहा, "इसे खाओ।"

"मैं तो इसमें से आधा लूँगा?" मैंने कहा। और प्लेट उनकी ओर बढ़ा दी।

प्लेट में से सीताफल उठाकर वे उसे तोड़ने का उपक्रम करने लगीं। हाथ लगते ही वह टूटने लगा कि तुरन्त उन्होंने उसे प्लेट में छोड़ दिया और बोलीं "भाई, यह काम मुझसे न होगा। नारियल भी मैं स्वयं नहीं तोड़ती।" इस पर मुझे हँसी आ गई। यह बात तो ठीक है कि जगदीशचन्द्र वसु ने वृक्षों में जीवन सिद्ध कर दिया है, पर क्या महादेवी जी को फलों में भी जीवन का आभास होता है? मैं जानता हूँ महादेवी जी स्वयं अपने हाथ से कभी भी फूल नहीं तोड़तीं, पर यदि किसी दिन नौकर ड्राइंग रूम के फूलदान में रजनी-गन्धा या

दूसरे फूल रखना भूल जाये तो क्या वे उससे नहीं कहेंगी। कदाचित् महादेवी जी इन फूलों फलों के मामले में बौद्धों के नियम का पालन करती हैं जिसके अंतर्गत बौद्ध लोग भिक्षा में मिला मांस खालिया करते थे, पर बलि करने का उनके बीच घोर निषेध था।

मैंने सीताफल के दो टुकड़े कर आधा उन्हें दे दिया। बोलीं, "मैं इतना नहीं खाऊँगी।" मैंने थोड़ा सा खाते हुए कहा, "बहुत मीठा है। मैंने पहले ही कहा था न, आप खाकर तो देखिये।"

"मैं बहुत मीठा नहीं खाती।"

"पर यह ऐसा मीठा नहीं जैसी यह बर्फी जिसके एक टुकड़े में ही मन ऊब जाता है।"

"इसमें तो धरती का माधुर्य है न, और इसमें चीनी का?" हँस कर उन्होंने कहा। मैं सीताफल खाता रहा। फिर मैंने दूसरी बात छेड़ी। कहा, "देखिये अपने पेड़ पर यह सीताफल बिल्कुल पक गया था। वह टूट कर नीचे गिर जाता, वहाँ जड़ में पड़ा पड़ा सड़ जाता या कुछ और होता। प्रकृति का विधान तो कुछ और ही था, पर मनुष्य ने उसमें हस्तक्षेप कर उसे अपने लिए उपयोगी बना लिया। आप बतलाइये प्रकृति के विधान में मनुष्य को हस्तक्षेप करना चाहिये था नहीं?"

"नहीं करना चाहिये।"

"मान लीजिये एक फूल है। वह ऐसी जगह खिला है जहाँ उसे कोई देख नहीं सकता। यों फूल को देख कर मन में आह्लाद होता ही है। तो वास्तव में वहाँ उस फूल का कोई उपयोग नहीं। वहाँ खिला है, खिल कर मुरझा जायेगा। न कोई उसका खिलना देखेगा और न मुरझाना। उसे वहाँ से तोड़ कर यदि अपने कमरे के फूलदान में लगा दिया जाये तो वहाँ उसकी अधिक उपयोगिता है। बहुत से लोग उसे देख कर आह्लादित होंगे। अपने छोटे से जीवन में वह बहुतों को सुख दे जायगा।"

"पर यह कैसे पता कि जहाँ वह खिला है वहाँ उसे कोई न देखेगा ? यदि ऐसा है तो फिर तुमने ही कैसे देख लिया ?"

"नहीं, मान लो एक फूल इस 'संसद भवन' के कोने के झुरमुट में खिला है। वहाँ आप की तो दृष्टि पड़ गई पर हर एक तो उधर नहीं जाता।"

"यह बात तो ठीक है, पर मनुष्य उपयोगिता की वजह से ही यह सब कुछ नहीं करता। सुन्दर वस्तुओं पर अधिकार प्राप्त करने की उसमें एक स्वाभाविक प्रवृत्ति है, उसी के वशीभूत होकर वह यह काम करता है।"

"अच्छा, फूल की बात तो छोड़िये। मान लीजिए एक भयावह बन है जिसमें शेर चीते रहते हैं। उसे काट कर एक सुन्दर बस्ती बसाई जा सकती है। तो उसे काट ही डालना चाहिये और काट ही डालते हैं। यह तो मैं मानता हूँ कि उस बन का अब भी प्रकृति की सृष्टि में एक सौंदर्य है और फिर उस बस्ती की अपनी एक अलग सुन्दरता होगी। पर फिर भी उस बन को काटने में कुछ बुरा नहीं लगता, एक फूल को तोड़ने में चाहे कुछ बुरा लगे भी।"

"भाई जैसे जीवों की सृष्टि में चेतना का सबसे अधिक विकसित रूप मनुष्य है, उसी प्रकार वनस्पति की सृष्टि में चेतना का सबसे अधिक विकसित रूप फूल है। छोटे छोटे सैकड़ों जीवों को मनुष्य प्रतिदिन मार देता है, पर मनुष्य क्यों नहीं मारा जाता। ऐसे ही पत्थर का टुकड़ा है बिल्कुल जड़ है। उसके टुकड़े टुकड़े करने में कुछ भी दर्द नहीं होगा, पर एक पुष्प है उसके तोड़ने में मुझे तो ऐसा ही लगता है जैसे किसी के प्राण ले लिये," महादेवी जी ने कहा। यह बात यहीं समाप्त हो गई। सीताफल समाप्त हो गया था। जब मैं होस्टिल में रहा करता था तो वहाँ सीताफल के बीसियों पेड़ थे और जीवन में सैकड़ों सीताफल खाये भी होंगे पर इतने मीठे बहुत कम।

अब मैं महादेवी जी के साथ 'संसद्' के बाह्य भाग में घूमने चला। संसद् के द्वार वाली बेल पर जिसमें उस दिन एक फूल उगा था, आज सैकड़ों फूल थे। जहाँ पहले ऊबड़ खाबड़ जमीन थी, जहाँ अब चारों ओर समतल क्यारियाँ बनी थीं, चलने के लिये बीच-बीच में पटरियाँ। तीन महीने में ही यहाँ रह कर महादेवी जी ने इस स्थान का रूप बदल दिया है। संसद् भवन के सामने वाला मैदान वृत्ताकार है।

इसके नीचे उतर कर दूसरा समतल आरम्भ होता है, जिसमें वर्गाकार खेत से बनाये गये हैं। पटरियों के दोनों ओर फूलों के वृक्ष हैं। मैदान के बीचों बीच सामने नीचे वाले स्तर से ऊपर आने के लिये पैड़ियाँ बनाई गई हैं। पैड़ियों के सामने नीचे वाले स्तर पर Lawn रहेगा।

Lawn के दोनों ओर वर्गाकार क्षेत्र हैं। उनमें कुछ सुन्दर चीजें बो दी जायगीं। Lawn के किनारे किनारे Hedge उगाई जायगी।

Lawn से संसद के सामने वाले भाग में आने के लिये पैड़ियाँ लगीं हैं। पैड़ियों के ऊपर पहुँचने पर दोनों ओर दो नीम के पेड़ हैं। वे ऐसे लगते हैं जैसे अपनी शाखाओं से प्राकृतिक द्वार सा बना रहे हों। महादेवी जी ने वह सब हिस्सा दिखलाया। मैंने कहा कि इन नीम के पेड़ों की शाखायें छँटवा कर यहाँ लोहे का वृत्ताकार द्वार लगवा कर ऊपर लता चढ़वा दीजियेगा, तब बहुत अच्छा लगेगा।"

"हाँ, यह भी ठीक रहेगा," फिर आगे चलकर बताने लगीं।

"ये दो वट-वृक्ष हैं।" दो बड़ की छोटी कलमों की ओर जिनमें से पत्ते निकल रहे थे, इंगित करते हुये महादेवी जी ने कहा, "जब ये बड़े हो जायेंगे तो दोनों की विशाल छाया के नीचे बैठने में बहुत अच्छा लगा करेगा।"

फिर एक तीसरे पेड़ की ओर संकेत कर बोलीं "यह कदम्ब है।" कदम्ब ! मेरे मन में एक अज्ञात उल्लास सा हुआ। वही तो कदम्ब

यमुना के किनारे जिस पर बैठकर श्रीकृष्ण वंशी बजाया करते थे। यह कदम्ब गंगा के किनारे होगा। इसकी छाया में काव्य-गोष्ठियाँ हुआ करेंगी। तब क्या वे दिन लौटे हुए से नहीं लगेंगे? हम चलते रहे। मैं अपने जूते अन्दर ही छोड़ आया था। महादेवी जी भी नंगे पाँव आगे-आगे चल रही थीं। चलती-चलती वे सहसा पीछे मुड़ीं और बोलीं, "तुम जूते पहन आओ।" मैंने कहा, "नहीं मुझे तो ऐसी ओस से भीगी हुई घास पर नंगे पाँव चलना अच्छा लगता है। और किसी पुस्तक में भी पढ़ा था कि इस प्रकार चलने से आँखों की ज्योति बढ़ती है।" इस प्रकार कहता हुआ मैं उनके साथ-साथ आगे बढ़ता रहा। आगे एक कोने में लगे हुए पौधे की शाखा की ओर संकेत कर उन्होंने कहा," देखो इसमें भी फूल खिल आये। इसमें उस पौधे के पत्तों के जुड़े हुये से फूल ही थे। ये हलके लाल गुच्छों में आते हैं। यह फूल-वृक्ष मैंने देखा तो पहले भी था, पर नाम नहीं जानता था। इसलिये मैंने पूछा, "इसका क्या नाम है?"

"इसे वेगन वेलिया (Wagon vallia) कहते हैं। पर हमने इसका हिन्दुस्तानी नाम 'बेगम बेलिया' कर दिया है।" अंग्रेजी नाम का हिन्दुस्तानी परिवर्तन इससे सुन्दर नहीं हो सकता था। आगे बढ़ एक पेड़ की ओर संकेत कर बोलीं, "यह सहजन है। कितना फूला हुआ है?"

इस प्रकार सहजन, नीम, नीबू, सीताफल के पेड़ों के नीचे से होते हुये हम फिर पूर्वीय पार्श्वभाग में पहुँच गये। वहाँ एक गूलर का पेड़ है। उस पर गूलर पके हुये थे। उन्हें देखते रहे। नीचे एक अमरूद की बगिया में एक बुढ़िया बैठी नारियल पी रही थी। महादेवी जी उससे बातें करती रहीं। महादेवी जी प्रत्येक व्यक्ति को बहुत जल्दी पहचान कर उसके स्तर पर उतर कर बातें करती हैं, यही कारण है कि उन्हें रसूलाबाद के गरीब मजदूर, घोसी, कहार और मल्लाह सभी जानते हैं।

फिर हम वहाँ से लौटे। रास्ते में एक बेरी का पेड़ पड़ा। पेड़ छोटा सा ही था, पर वहाँ वह अच्छा न लगता था। उसे देख कर कहने लगीं, "सभी कहते हैं इसे कटवा दीजियेगा, पर इसे कैसे कटवा दूँ!" जैसे उसे कटवा देने में उनका मन दुखता हो, इस प्रकार उन्होंने कहा। मैं कुछ नहीं बोला। आगे एक वर्गाकार क्यारी के कोने में एक वृक्ष सूख गया था। मैंने उसकी ओर संकेत कर कहा, "यह पेड़ सूख गया है।"

"हाँ, इसे अपनी जगह से हटा कर यहाँ लगा दिया था।" फिर कुछ क्षण रुक कर चलती चलती कहती गईं, "मनुष्य को यदि अपनी जगह से हटा दिया जाये तो उसकी भी यही दशा होती होगी?" यह बात जैसे वह अपने से ही पूछ रही हों। "हाँ, ऐसी ही दशा होती होगी।" जैसे उत्तर भी स्वयं दे दिया हो।

फिर हम पश्चिमीय पार्श्व की ओर गये। वहाँ कुछ क्यारियों में गोभी और टमाटर लगे थे। पर अभी उनमें फल नहीं आया था। और कुछ में फूल के बीज बोये गये थे, वे अंकुरों में फूट निकले थे। पौधे हो जाने पर वे वहाँ से उठा कर पंक्तियों में लगा दिये जायेंगे।

फिर हम अन्दर भवन में लौट आये। रास्ते में महादेवी जी यही कहती रहीं, "ये माली कुछ काम नहीं करते। करते हैं तो ठीक से नहीं करते। अब मैं कहीं से Gardening पर कुछ पुस्तकें मँगा कर पढ़ूँगी।"

महादेवी जी Gardening के विषय में बहुत कुछ जानती हैं, पर अपने ज्ञान को पुस्तकों द्वारा पूर्ण करना चाहती हैं। उनकी इस बात से ऐसा लगता था कि महादेवी जी ने खूब पढ़ा है और सभी विषयों पर।

अन्दर आकर गड्डी के लिये वे नौकर को रुपये देने लगीं। तभी मैंने पुस्तकों के ३७ रु० ६ आ० ६ पा० दे दिये। कमीशन की बात

पर पत्र की बात उठी। बोलीं, "मुझे तो पत्र नहीं मिला।" मैंने कहा "मैंने १५ प्रतिशत कमीशन दे दिया है।" "हम तो अधिक दे रहे हैं। बेचारे के साथ अन्याय हो गया।"

"अनजाने में हुआ है, इसलिये अन्याय नहीं।" मैंने कहा

"अबकी बार जब और पुस्तकें लेगा तो जितना दे रहे हैं उससे भी अधिक कमीशन देंगे।" फिर बोलीं, "पता नहीं क्यों मैथिलीशरण जी का भी सादा पत्र कोई नहीं मिलता। केवल रजिस्टर्ड मिलते हैं।"

"मानव जी कह रहे थे कि मैंने एक रजिस्टर्ड पत्र भेजा है। पता नहीं वह आप को मिला या नहीं। वे मेरे साथ ही आते पर उस पत्र के उत्तर की प्रतीक्षा में ही रुक गये।"

"हाँ, वह पत्र तो मिला था, पर इधर मलेरिया पीछा नहीं छोड़ता। मैं उत्तर नहीं दे सकी। अब तुम कब जाओगे?"

"मैं १८ नवम्बर को फिर घर जाऊँगा।"

"तो लौटती बार उनको अपने साथ लेते आना।"

"जरूर लेता आऊँगा।"

मैं अब घर चलने लगा तो बोलीं, "घर क्या करोगे! आज तो छुट्टी है कुछ काम तो नहीं करना।"

"नहीं, काम तो कुछ नहीं।" मैंने कहा।

"तो फिर यहीं रुक जाओ। यहीं खाना खा लेना, जैसा भी मेरे यहाँ बनता है।"

"तो फिर अब मैं नहा आऊँ। मुझे तौलिया दे दीजियेगा।"

"पता नहीं बिना कोर की कोई धोती है या नहीं।"

"मैं कोरदार ही पहन के नहा लूँगा। मैं तो घर पर भी कभी कभी अम्मा की या भाभी की धोती पहन कर नहा लेता हूँ।"

"नहीं रे, घाट वाले हँसेंगे कि देखो इस लड़के ने औरतों की धोती पहन रक्खी है। अच्छा तुम जरा इधर घूमो। मैं आई। थोड़ी देर में वे अन्दर से लौटीं। बोलीं, 'वह बाहर तौलिया और धोती रक्खी है।'

बाहर, एक स्वच्छ तौलिया तथा एक स्वच्छ मर्दानी धोती का आधा टुकड़ा तो नहीं था, पर था बिना कोर का टुकड़ा, रक्खा था। उसे लेकर मैं नहाने चला गया। वहाँ घाट पर सभी पूछने लगे, "गुरु जी के यहाँ आये होंगे?" मैंने कहा, "हाँ, भाई।"

नहाने के बाद मैं लौटा। अन्दर आकर एक शीशी में से तेल डाल लिया। तेल सुगन्धित था। इतनी देर में महादेवी जी आईं। बाल बिखरे देखकर बोलीं, "कन्धा चाहिये।" इतना कह कर अन्दर गईं और थोड़ी देर में कहीं से ढूंढ़ कर एक छोटा सा कन्धा लाईं। वैसे तो मैंने कह दिया था कि मैं हाथ से ही ठीक कर लूंगा, पर उन्होंने कहा, "कन्धा तो है, पर शीशा कोई नहीं।" मैंने कहा, "आप मुझे दीजिये मैं ठीक कर लूंगा" जब मैंने बाल ऊपर को कर लिये तो बोलीं "क्या माँग वाँग भी निकलेगी?"

"मैं निकाल लूँगा।"

" बिना शीशे में देखे ही?"

"मैं अन्दाज से निकाल लूँगा।"

"अच्छा देखें कैसे निकालते हो?"

मैंने हाथ से टटोल कर माँग निकाली कि महादेवी जी तो एक दम बोल पड़ीं,

"अरे! टेढ़ी है यह तो। कंघा मुझे दो मैं निकालती हूँ।" कंघा मैंने उन्हें दे दिया और उन्होंने सिर की माँग ठीक से निकाल दी। फिर बोलीं "एक टूटा हुआ शीशा पड़ा तो था उसे लाती हूँ।" अन्दर चली गईं। थोड़ी देर बाद लौटीं पर शीशा नहीं मिला। बोलीं "शीशा नहीं मिला।"

"बिल्कुल ठीक तो निकल आई।"

"तुम्हें कैसे पता?"

"मैंने हाथ से जो देख लिया है।" मैंने हँस कर कहा।

"चलो सब ठीक है जी। कोई स्वयंवर में थोड़े ही जाना है।

हमारे यहाँ तो कोई शादी ही नहीं करता। आत्माराम कहता है मैं नहीं करूँगा। देखूँ चार-पाँच साल कब तक नहीं करता।"

"शादी की बात तो अभी मेरे मन में भी नहीं और यदि कभी हुई भी तो आप के बिना होगी नहीं। हमारे यहाँ तो महिलायें बारात में जाती ही हैं। आप चलेंगी तो शादी होगी, नहीं तो नहीं।"

"हाँ, चलूँगी, क्यों नहीं चलूंगी ?"

थोड़ी देर के लिये घरेलू वातावरण आ उपस्थित हुआ। मैं एक क्षण के लिये इसी प्रसन्नता में विभोर हो गया कि यदि कभी मेरा विवाह हुआ और उसमें महादेवी जी चलीं, और आप तो होंगे ही, तो कितना अच्छा लगेगा ! सचमुच, बहुत अच्छा !

फिर हम बैठ कर इधर उधर की बातें करने लगे। महादेवी जी पंजाब की Refugee स्त्रियों के लिये कहने लगीं,

"हमारे यहाँ से कुछ लोग उनके कैम्प में गये थे। वहाँ कुछ स्त्रियाँ शिकायत करने लगीं कि हमें यहाँ toilet नहीं मिलता cream Lipstick कुछ भी नहीं। अब इन पंजाब की स्त्रियों को देखिये कि इनका सब कुछ जाता रहा, पर cream और Lipstick का मोह अब भी नहीं छूटा। ऐसी स्त्रियाँ पंजाब के संघर्ष के समय क्या कर सकती थीं ? भला अब-ये लोग यू० पी० में आ गये हैं। देखो, यहाँ कैसा वातावरण उत्पन्न करते हैं।

"इलाहाबाद में 'मीराबाई' चित्र चल रहा है। आपने देखा ?" मैंने पूछा।

"नहीं।"

"अब दूसरा चित्र 'मीरा' आ रहा है। उसे देखियेगा। उसकी बहुत प्रशंसा सुनने में आ रही है।"

"क्या देखूँ, मीरा का रोल किसी ऐसी नाचने वाली को दे दिया होगा जो मीरा के बारे में कुछ भी नहीं जानती होगी।"

"हाँ,यह तो आपकी बात ठीक है। इन Professional Actresses से तो केवल अभिनय की ही आशा की जा सकती है। उसमें उनका शरीर ही काम करता है, पर यदि मन भी साथ हो और प्राणों में भी वैसा ही अनुभव करें, तो वहाँ अभिनय के अतिरिक्त भी कुछ और बात आ जायगी। 'मीरा' में सुश्री शुभलक्ष्मी ने मीरा का पार्ट किया है। वे मदरास के एक सम्भ्रान्त घराने की महिला कलाकार हैं और इनकी लड़की ने बालक मीरा का अभिनय किया है। श्री अमृतलाल ने संवाद लिखे हैं। देखिये कदाचित् मीरा के भावों की हत्या न हुई हो।" मैंने कहा।

"हाँ, जब आयेगा तो देखूंगी।"

इस बीच पांडे जी आगए थे। फिर हम सबने खाना खाया। थोड़ी देर आराम किया। २॥ बज गये थे। मैं घर को चलने लगा। बाहर दरवाजे पर आकर एक गुलाब को देखने लगा। मैंने कहा, "इस पर बीज तो आता है पर इसकी लगती कलम ही है।"

"इसका बीज किसी काम नहीं आता। वह उग नहीं सकता," पांडे जी ने कहा। मैंने पूछा, "तो सबसे पहले गुलाब कैसे उगा होगा?"

"फारस में उगा था।"

"नहीं बीज तो इसका था नहीं, तो सबसे पहला गुलाब कहाँ से आया होगा? इसकी कलम ली गई होगी शायद।" मैंने आगे कहा, "इस फूल की उत्पत्ति किसी एक फूल को दूसरे से cross करके की गई होगी। यही कारण है कि इसकी कलम लगती है, बीज नहीं बोया जाता। रूस में जब गेहूँ की कमी पड़ गई तो सोचा गेहूँ को बोने के लिये हर साल बीज की जरूरत न पड़े, इसलिये गेहूँ के पौधे को खुदरौ घास से cross कर दिया। इससे इस प्रकार के गेहूँ का Invention हुआ कि उसे एक बार बो दिया, कट जाने पर घास की तरह उसकी जड़ों में से फिर उग आया।" फिर क्षण भर रुककर मैंने कहा, "इधर पटरीके दोनों ओर गुलाब लगाइये। बड़ा अच्छा लगेगा।"

"यह अपने यहाँ का फूल नहीं, इसलिये अधिक प्रसन्नता नहीं होती" महादेवी जी ने कहा।

महादेवी जी में इतनी भारतीयता है। पर यदि कोई चीज विदेश की है और वह अच्छी है तो उसे अपने देश की वस्तुओं के बराबर ही स्थान देना चाहिये। इतनी उदारता भी होना ही चाहिये। वह उनमें है, यह मैं जानता हूँ। इसके बाद मैंने विदा ली।

२० वर्ष के जीवन में इस दिन का अलग स्थान है।

सश्रद्धा

शिवचन्द्र नागर

४७

३० ए० बेली रोड

प्रयाग

२८। ११। ४७

प्रभात

आदरणीय 'मानव' जी,

परसों दोपहर मैं यहाँ सकुशल आ गया। तभी से यहाँ कमरे का एकाकीपन बहुत खल रहा है। ऐसा लगता है, जैसे जीवन में केवल सूनापन ही शेष रह गया हो।

कल प्रभात में आठ बजे 'साहित्यकार संसद' गया था। वहाँ महादेवी जी से भेंट हुई। जिस समय मैं पहुंचा, वे कुछ पत्र देख रही थीं और उनका उत्तर लिख रही थीं। उनके श्वेत परिधान से परिवेष्ठित शरीर पर कासनी रंग का ऊनी सालू बहुत ही अच्छा लग रहा था। उनके हाथ से ही ऊपर को किये हुये गहरे काले अस्त-व्यस्त बाल तथा घुटने मोड़ कर बैठने की मुद्रा से सचमुच ऐसा लगता था जैसे किसी मन्दिर में कोई परम साधिका बैठी हो। गंगा प्रसाद जी पांडे भी वहीं विराजमान थे।

"प्रणाम करने के बाद मैं एक ओर जाकर बैठ गया। महादेवी जी आज अधिक बोल नहीं सकती थीं, क्योंकि सर्दी की वजह से उनकी आवाज़ बैठ गई थी। कुशलता पूछने के उपरान्त उन्होंने पूछा,

"तुमने कैसे जाना कि मैं यहाँ हूँ?"

"मैंने मन में सोच लिया था कि आप अवश्य यहाँ होंगी" मैंने कहा। इस पर वे हलका हँस दीं।

चाय पीते-पीते कन्वोकेशन की बात आई। मैंने कहा, "१२ दिसम्बर को हमारा कन्वोकेशन है और १३ को पंडित जवाहर लाल जी का Special कन्वोकेशन होगा।"

"अब सभी यूनिवर्सिटीज़ उन्हें डिग्री दे रही हैं। यहाँ तो जब एक बात चल पड़ी तो फिर सभी वैसा करने लगते हैं। भला वे इन डिग्रियों का क्या करेंगे?"

"उनको डिग्री देकर यह तो स्वयं गौरवान्वित होने की बात है," मैंने कहा।

"इस देश ने साहित्यिकों का सम्मान करना नहीं सीखा। रामचन्द्र शुक्ल को किसी ने डिग्री नहीं दी, जयशंकर प्रसाद को किसी ने डाक्ट्रेट से अभिभूषित नहीं किया और ...

"साहित्यिकों को सम्मान देने का समय भी आयेगा पर अभी नहीं," मैंने कहा और चाय पीने लगा।

पांडे जी अपने घर जाने लगे। पांडे जी की किसी बात पर महादेवी जी ने कहा, "भाई जो परमात्मा पर विश्वास नहीं करता, वह किसी आत्मा पर भी विश्वास नहीं रख सकता। और यदि वह किसी आत्मा पर विश्वास रखता है तो उसे परमात्मा पर भी विश्वास रखना चाहिए।" महादेवी जी की यह बात मुझे बहुत ही अच्छी लगी। यह एक ऐसा विषय है जिस पर बड़ा ही मतभेद है। यदि कोई आत्मा का अस्तित्व मानता है और परमात्मा का नहीं तो यह तो बिल्कुल ऐसे

ही है जैसे धूप का अस्तित्व मानना और सूर्य का न मानना। आप बतलाइये यह बात कहाँ तक ठीक है ?

हम बाहर आये। पांडे जी को विदा कर मैं महादेवी जी के साथ लौट आया। ६ बज गये थे। ६॥ बजे महादेवी जी को महिला विद्यापीठ जाना था। उनसे बातचीत करने पर पता लगा कि निराला जी डलमऊ अपने पुत्र महोदय के पास हैं। उन्होंने महादेवी जी को पत्र द्वारा सूचना दी थी। महादेवी जी उन्हें रांची भेजने का प्रबन्ध कर रही हैं। इधर महादेवी जी १२ नवम्बर को देहली गई थीं और २० को लौटी थीं। मैंने जब कहा कि १५ को तो 'मानव' जी भी देहली में थे, मैथिलीशरण गुप्त पर उनकी Talk थी, तो कहने लगीं, "नगेन्द्र से तो मिली थी, पर उसने तो नहीं बतलाया।"

महादेवी जी देहली मौलाना आज़ाद से मिलीं। जुबिली पर उनके प्रयाग आने की सम्भावना है। बाबू राजेन्द्र प्रसाद से भी मिलीं। उन्होंने 'संसद' के उद्घाटन की बात स्वीकार कर ली है। उद्घाटन 'वसन्तपञ्चमी' के दिन होगा। जैनेन्द्र कुमार जी से भी वे मिली थीं।

महादेवी जी पांच छह दिन में कलकत्ते जा रही हैं। वहाँ से पन्द्रह बीस दिन में लौटेंगी। यह सब दौड़-धूप वे 'संसद' के काम के लिये ही कर रही हैं। 'लोकायन' का उद्घाटन शायद जुबली के अवसर पर होगा।

घूमते घूमते हम एक जगह पैड़ियों पर बैठ गये। मैंने सामने एक डेरा पड़ा देखा। पूछा, "आप यहाँ Refugee camp में गई थीं ?

"अभी तो नहीं। अब तभी जाऊँगी जब दो चार घंटे समय उन्हें दे सकूँ। केवल तमाशा देखने जाना तो उनका अपमान करना है।"

"पर यहाँ तो सुबह शाम Refugee camps में तमाशबीनों की भीड़ लगी रहती है।"

"भाई, इस देश में तमाशा देखने वाले ही अधिक हैं। कोई मर रहा हो तो लोग तमाशा देखने जाते हैं, कोई घायल हो गया हो तो लोग तमाशा देखने जाते हैं, कोई भूखों मर रहा हो तो लोग तमाशा देखने जाते हैं।" महादेवी जी ने उदास होकर कहा।

"आप के यहाँ से शरणार्थियों के लिये कुछ रुपया तो जाता रहा होगा?"

"हाँ, पहले तो बंगाल के शरणार्थियों के लिये रुपया भेज दिया गया था, पर अब तो दोनों जगह की एक-सी समस्या ही है। इसलिये अब यहीं दे रहे हैं।" महादेवी जी ने कहा;

महादेवी जी उठ कर अन्दर जाने लगीं, क्योंकि ६॥ बजने वाले थे। मैंने कहा, "संगम में आप की कविता निकली थी, चित्र का print तो उन्होंने बिल्कुल बिगाड़ दिया।"

"ये लोग छापना जानते ही नहीं। पहले तो उन्होंने उसमें पेपर कौन सा लगाया है। फिर उसके पीछे Advertisement दे दिया। Block ठीक से आया नहीं," महादेवी जी कह कर अन्दर चलने लगीं।

"मैंने उन्हें प्रणाम कर बिदा ली।"

आज उनका गला पड़ा हुआ था। आवाज बैठी हुई थी। ऐसा लगता था जैसे मन भी बैठा हुआ हो। कहा नहीं जा सकता क्यों?

सश्रद्धा
शिवचन्द्र नागर

४८

३० ए० बेली रोड
प्रयाग

आदरणीय 'मानव' जी, ७।१।४८.

आप का पत्र ३।१।४८ को मिल गया था। मेरे पिछले दो वर्ष एक हलके संघर्ष के वर्ष रहे हैं। इस संघर्ष से मुझे थोड़ा सुख

भी मिला है और कुछ शारीरिक कष्ट भी। पर इन वर्षों में मुझे ऐसा कुछ नहीं मिला, जिससे प्राणों की भूख मिटती। मुझे ऐसा लगता है कि प्रेम प्राणों की माँग है और यदि यह पूरी नहीं हो पाती तो प्राण-सरोज मुरझा कर सूखने लगता है। उसे खिलाने के लिये किसी के अधरों की मुसकान चाहिये।

महादेवी जी आ गई हैं। कल मैंने उन्हें सिविल लाइन से लौटते समय ताँगे में रसूलाबाद जाते हुए देखा था। कल मैं उनसे मिलने जाऊँगा।

मुझे तो आप मन से सदैव स्वस्थ लगे। हो सकता है यह मेरी अपनी तीव्रतम अस्वस्थता के कारण हो। उकता जाने का सम्बन्ध मनुष्य के व्यक्तित्व से है। यदि किसी मनुष्य का व्यक्तित्व महान् है, तो आप जितने उसके अधिक सम्पर्क में आयेंगे, उतना ही आकर्षण बढ़ता जायगा, ऐसा मेरा विश्वास है। यह बात मैं अनुभव से ही कह रहा हूँ। महादेवी जी के विषय में भी यह सत्य है और आप के साथ तो है ही।

सश्रद्धा
शिवचन्द्र नागर

४६

२० ए० बेली रोड
प्रयाग
१६।१।४८

आदरणीय 'मानव' जी,

१२।१ का आप का पत्र मिला। आप लखनऊ आ गये। अच्छी ही बात है। मुझे इस बार भी डर लग रहा था कि कदाचित् आप अवसर को टाल दें। मैं सोचता हूँ कि एक व्यक्ति को बहुत दिनों तक एक स्थान में नहीं रहना चाहिये और कलाकार को तो रहना ही नहीं चाहिये।

जीवन में अधिकतर बातें मन के अनुकूल नहीं होतीं, पर कुछ दिनों बाद प्रतिकूलता ही जीवन बन जाती है। यही जीवन का क्रम है और संसार में जीवित रहने के लिये मनुष्य को उसे स्वीकार करना पड़ता है।

नगर आप को सुन्दर लगा है। यदि ऐसा है तो यह आपके जीवन में सौंदर्य के नवीन वातायन खोलेगा, ऐसा मेरा विश्वास है।

जीवन चाहे छोटा हो, पर सुन्दर होना चाहिये। इस सुन्दरता की वृद्धि के लिये आदि काल से मनुष्य प्रयत्नशील रहा है और मेरी धारणा है कि कलाओं की उत्पत्ति के पीछे भी मनुष्य की यही प्रवृत्ति रही है।

समझ लीजिये ये चार वर्ष एक छोटा सा दुःस्वप्न था, समझ लीजिये इस थोड़े समय के लिये आप सो गये थे, समझ लीजिये कि प्रभात से पहले यह रजनी का अन्तिम याम था। जीवन को चार वर्ष पीछे लौटा दीजियेगा।

आपने रस की बात लिखी है। रस की बात सोच कर मेरा मन उदास हो जाता है। आप यह तो कहेंगे कि मैं बड़ा ही निराशावादी हूँ, पर मुझे तो ऐसा लगने लगा है कि संसार में रस कहीं भी नहीं। अपने प्राणों के सार से हमें रस की सृष्टि करनी पड़ती है।

मैं एक बार लखनऊ आऊँगा अवश्य।

रमेश जी की कहानियाँ मैं भेज दूँगा, पर बहुत सी तो इधर-उधर छपने गई हैं। पता नहीं उनकी प्रतिलिपि डा० साहब के पास है या नहीं। मैं उनसे भेजने को लिखूँगा। यदि जल्दी ही प्रकाशन की बात हो तो मैं जल्दी करूँ?

डा० रमेश के रुपये मैंने खर्च नहीं किये। उसी समय अपने एक मित्र के पास जमा कर दिये थे। सोचा था और रुपये आने पर अधिक रुपये एक साथ भेजूंगा, तो अच्छा लगेगा। पर आप कहते हैं तो कल ही भेज दूंगा। आपके रुपयों की ओर से तो अपने पराये का भाव उठ गया है इसलिये खर्च हो जाते हैं। इस सप्ताह में मैंने सबसे अधिक

चित्र देखे हैं—सिंदूर, मिलन, मुलाकात, वीर कुणाल, देवदासी और Rainbow Island. 'राहुल' जी ने अपने पत्र में आपको क्या लिखा है?

सश्रद्धा

शिवचन्द्र नागर

५०

३० ए० बेली रोड

प्रयाग

२२।१।४८.

आदरणीय 'मानव' जी,

आप का २०।१ का पत्र कल संध्या को मिल गया था।

कल यहाँ हलकी-हलकी वर्षा हुई है। हलके सफेद बादलों से घिरा आकाश अच्छा ही लगता है। संध्यायें तो यहाँ की भी सुन्दर होती हैं। गंगा के उस पार गुलाबी बादलों में छिपा हुआ सूर्यास्त यहाँ भी अच्छा होता है। पर यहाँ की संध्यायें सूनी हैं। मुझे तो ढाई वर्ष में यहाँ ऐसा ही लगा है कि इलाहाबाद में रूप की कमी है।

प्रकृति और नारी दोनों ही सुन्दर हैं। कभी कभी ऐसा लगता है जैसे नारी प्रकृति का चेतन स्वरूप है और प्रकृति नारी का विराट रूप। दोनों में ही महान् आकर्षण है।

झुकने या समझौते में विश्वास न करना साहस की बात है, पर सदैव नहीं। कभी कभी प्रतिकूल परिस्थितियों के सामने झुकना पड़ जाता है। तब तो विवशता ही जीवन हो जाती है। जीवन तो सुख-दुख हर्ष-शोक इत्यादि के पलों की एक Whole unity है। यदि आप कुछ सुख के पलों को ही जीवन समझते हैं तो आपकी बात ठीक है, पर ऐसे पल जीवन में कितने आते हैं?

'रुपया ध्येय नहीं केवल साधन मात्र है' यह तो ठीक है, पर आज कल के युग में जीवित रहने के लिये यह एक आवश्यक वस्तु है।

जीवित रहने के लिये ही हमें कभी-कभी मन के प्रतिकूल काम करने पड़ते हैं। ऐसे काम किसे अच्छे लगते हैं, पर अपने ध्येय के लिये साधन जुटाने के लिये हमें मन के प्रतिकूल काम भी करने पड़ते हैं। यदि हमें अपना ध्येय प्रिय है, तो साधन की प्राप्ति के लिये हमें जीवन को धनुष की तरह मोड़ ही देना चाहिये।

'इस के लिये उपयुक्त पात्र' की बात आपने बहुत ही सुन्दर कही है; पर मैं यह सोच कर उदास हो जाता हूँ कि इस विश्व में ऐसे भी कितने ही अभागे होंगे जिनके प्राणों का अगाध रस प्राणों में ही सूख जाता होगा। मैं भी एक ऐसा ही अभागा हूँ।

मुझे आज आपकी वही बात याद आती है कि 'मनुष्य जब जो चाहता है वह उसे नहीं मिलता। मिलता है तब जब उसकी कामना नहीं रह जाती।' 'मंजरी' के प्रथमांक में मेरी एक मुन्शी की अनुवादित कहानी निकली है। उसके अंत में, कलाकारों का परिचय है। मेरे परिचय में सम्पादक ने लिखा है, "आप गुजराती के सफल अनुवादक हैं।" पढ़ कर मन में ऐसा आया कि इसे फाड़ कर फेंक दूँ। मैं कभी भी यह नहीं चाहता था कि मुझे लोग इस तरह से जानें। अब अगले किसी अंक में लीलावती मुन्शी या मुन्शी के अनुवाद के साथ मेरा फोटो भी निकलेगा, पर मैं मन से यह भी नहीं चाहता था कि किसी अनुवाद के साथ मुझे अपने फोटो के प्रकाशन का अवसर मिले। आज चार पाँच पत्रिकायें हैं जो मुझसे अनुवाद माँगती है, पर मैं जो चाहता हूँ, वह नहीं माँगती। मुझे इतना विश्वास अवश्य है कि एक दिन मेरी चाही हुई चीज़ भी ली जायगी, पर तब जब उस के प्रकाशन या विज्ञापन के लिये कोई उत्साह न रह जायेगा। भाग्य की यह विडम्बना सभी कहीं है।

बाल-साहित्य की अपनी दो अनुवादित पुस्तकें मैंने भेजी हैं। स्वीकार कीजियेगा।

शनिवार के प्रभात में मैं स्टेशन पर आपको लेने आऊँगा। महादेवी जी यहीं हैं।

सश्रद्धा
शिवचन्द्र नागर

५१

३०, ए० बेली रोड,
प्रयाग
१।२।४८.

आदरणीय 'मानव' जी,

पत्र तो आपका परसों मिल गया था, पर परसों संध्या से आजतक कुछ भी नहीं हो सकता है। वैसे तो कोई किसी के लिये रुक नहीं सकता, पर ऐसा लगता है जैसे कुछ घंटों के लिये नहीं तो कुछ पलों के लिये गाँधी जी की जीवन-यात्रा की समाप्ति के साथ साथ विश्व का जीवन रुक गया हो।

परसों संध्या को जैसे ही सूरज डूबा मैं घूमने निकल गया था। सवा छह बजे होंगे। एक बंगाली महोदय अपने बँगले से निकले, तेजी से बढ़े, मेरे पास आकर रुक गये और बोले Gandhi ji is dead! Gandhi ji is shot dead! इस पर मेरे मुँह से 'ऐं' शब्द निकला। आँखें फाड़ कर मैंने उनकी ओर देखा, पर तब तक वे आगे बढ़ गये। मैं घर की ओर लौट पड़ा। देखते ही देखते चौराहे पर सैकड़ों आदमी जमा हो गये, सभी एक दूसरे से पूछ रहे थे, क्या यह सच है? सच है क्या यह? जैसे किसी को किसी पर विश्वास न हो।

थोड़ी देर बाद ही यूनिवर्सिटी यूनियन की मीटिंग में मैं गया। सब काष्ठ की प्रतिमा से बैठे थे। इतनी देर में ही अमृत बाजार पत्रिका का पैम्फलैट आ गया। एक व्यक्ति ने उसे सामने दीवार पर लगा दिया। उसमें मोटे मोटे अक्षरों में छपा था, Gandhi ji is no more!

उस समय ऐसा लगा जैसे स्वप्न टूट गया हो और जो कुछ स्वप्न में था वही सत्य में दिखाई दे रहा हो। मेरा सिर नीचे झुक गया और आँखों से आँसू ढुलक पड़े। उस निस्तब्धता में लोगों के सुबकने के स्वर आ रहे थे। सभी रो रहे थे। किसी को कुछ भी कहते न बनता था।

तब से अब तक प्रत्येक पल, सामूहिक तथा व्यक्तिगत शोक, वेदना चिंतन, प्रार्थना और गाँधी जी की चर्चा में ही बीता है। सोचते सोचते ही रात को बारह बजे के आसपास नींद भी आ गई है। फिर ऐसा स्वप्न देखा है कि शांत और गम्भीर गांधी जी प्रार्थना में हाथ जोड़े बढ़े चले आ रहे हैं और हत्यारे ने सामने आकर गोली मार दी है। उसी समय मेरी आँख खुल गई है।

हम लोगों ने अपने जीवन में सबसे महान् सुख और प्रसन्नता का दिवस देखा—१५ अगस्त, और सबसे महान् सामूहिक शोक और वेदना का दिन भी देखा—३१ जनवरी। आने वाली पीढ़ियां शताब्दियों तक ऐसे दिन नहीं देख सकेंगी।

किसी भी युग की सबसे बड़ी ट्रेजेडी यही रही है कि उस युग के महापुरुष को उस युग ने ही नहीं पहचाना।

मुझे ऐसा लगता है कि जैसे मनुष्यता की एक के ऊपर एक सीढ़ियाँ हों। उनमें सबसे ऊपर महात्मा जी पहुँच गये थे और सबसे नीचे था उनका हत्यारा और समस्त विश्व मानवता के इन्हीं दो छोरों के मध्य में है। गाँधी जी की हत्या में इन्हीं दो छोरों का संघर्ष हुआ है। Good और Evil का संघर्ष हुआ है, पूरी मानवता को चुनौती दी गई है।

अब से कुछ महीने पहले एक दिन संध्या की छाया में महादेवी जी से बात करते करते मैंने कहा था, "कलकत्ते में एक आदमी ने गांधी जी पर लाठी से वार किया। मुझे तो ऐसा लगता है कि गांधी जी को और कोई नहीं मारेगा, कोई हिन्दू ही मार डालेगा।"

परसों संध्या को उन्हें एक हिन्दू ने ही मार डाला। यह जाति इतना गिर गई है! कल से अपने को हिन्दू कहते हुये लज्जा आती है!

... ...

आज प्रभात काल में मैं साहित्यकार संसद महादेवी जी से मिलने गया था। उनके बैठने वाले कमरे की कालीन तकिये चांदनी सभी चीजें हटा दी गई थीं। एक शोक का सा प्रत्यक्ष वातावरण छाया हुआ था। महादेवी जी आईं। आज उनकी श्वेत धोती की किनारी गहरी काली थी। उन्होंने अपना कासनी सालू ओढ़ रखा था। चेहरे से ऐसा लगता था जैसे महादेवी जी इन दो ही दिनों में उम्र में पाँच वर्ष बढ़ गई हों। वे आकर बैठ गईं। पांच मिनट तक हम बिल्कुल निस्तब्ध ही बैठे रहे। फिर मैंने साहस कर पूछा,

"कल आप यहीं रहीं या संगम गई थीं!"

"नहीं तीन बजे तक तो मैं वहीं (महिला विद्यापीठ में) रही, पर फिर लड़कियाँ तो संगम चली गईं। मैं यहाँ आ गई। भीड़ में तो शोक व्यक्त नहीं होता। चार बजे मैं नाव में बैठ कर गंगा के पार चली गई थी। संध्या समय तक वहीं बैठी रही," बड़ी दबी हुई आवाज़ में जैसे कोई बीमार आदमी बोल रहा हो, महादेवी जी ने कहा।

"आपको परसों सन्ध्या को ही पता लग गया होगा?"

"मैं धीरेन्द्र जी के यहाँ उनकी लड़की के विवाह में गई थी। वहीं पता लगा। उसी समय मैं चली आई। घर पर आकर रोये धोये, पर इस सबसे क्या होता है।" एक गम्भीर निश्वास छोड़ते हुये उन्होंने कहा।

"हाँ, भीड़ की निस्तब्धता में केवल सुबकने के ही स्वर सुनाई दे रहे थे। सभी रो रहे थे। सबसे बड़ा दुःख इस बात का है कि जिस समय उनकी संसार को आवश्यकता थी, तभी वे हमारे बीच नहीं रहे।"

"पर फिर भाई, ऐसे महान् व्यक्ति का अन्त क्या होता? यह

तो एक महान् अन्त है, एक विशाल अन्त। संध्या का समय था, प्रार्थना में जा रहे थे ध्यान-मग्न, उपवास से और भी पवित्र हो गये थे, और जनता जनार्दन सामने थी। वैसे तो उनको मारना बहुत सहज था, सबसे सहज, और उनके मारने वाले को तो कदाचित् अपने प्राण भी न देने पड़ते, वह तो कहीं इधर उधर घुस कर भी मार सकता था, पर उनका अन्त ठीक ही स्थान पर और ठीक ही समय पर हुआ है। यह तो एक महान व्यक्ति का महान अन्त है। कुछ दिन बीमार रह कर मृत्यु होती, तब भी वह बात नहीं थी; उपवास में अन्त होता, तो संसार यही कहता कि देशवासियों ने बूढ़े की बात नहीं मानी और बूढ़े ने अपने प्राण दे दिये।"

"पर मुझसे तो उस हत्यारे की कल्पना भी नहीं होती। क्या कोई मनुष्य इतना भी गिर सकता है? और यह कैसी बात है कि उनको इसी देश के एक हिन्दू ने मार डाला?"

"यह तो कुछ दिन से लगने लगा था कि उन्हें कोई मुसलमान तो मारेगा नहीं, पर ऐसा लगता था कि हो सकता है कोई शरणार्थी हिन्दू मार दे। यदि कोई शरणार्थी मार देता तो कुछ थोड़ा स्वाभाविक सा भी था. पर अब तो सभी के लिये लज्जा की बात है।"

"हाँ, महात्मा जी और उनका हत्यारा, महानता और लघुता की दो सीमायें थीं, दुनिया यही कहेगी। पर इस व्यक्ति ने देश को दुनिया की दृष्टि में बहुत गिरा दिया है, और इसने उस व्यक्ति पर प्रहार किया जो संसार में किसी का भी शत्रु न था।"

"हाँ, यह प्रतिक्रियावादी शक्तियों ने चुनौती दी है और यदि इन्हें ठीक से न दबाया गया तो ये सिर उठायेंगी," महादेवी जी ने गम्भीर होकर कहा।

"कल आपने साढ़े आठ बजे जवाहरलाल जी तथा पटेल के भाषण सुने थे क्या?"

"नहीं, मैंने कुछ नहीं सुना। उस समय कुछ भी कहने सुनने का मन न था," उदास स्वर में महादेवी जी बोलीं।

जवाहरलाल का तो गला बिल्कुल रुँध गया। वे भाषण तो दे रहे थे, पर शब्द निकलने कठिन हो रहे थे। वे तो बिल्कुल रो रहे थे। पर पटेल वास्तव में लौह पुरुष (Iron man) हैं। वे बोल रहे थे। उनके शब्दों में आन्तरिक व्यथा तो थी, पर उनका न तो गला रुँधा था और न वाणी ही थरथराई थी। ऐसा लगता है पटेल के जीवन में आँसुओं के लिये कोई अवकाश नहीं" महादेवी जी चुपचाप कुछ सोचती रहीं और फिर बोलीं, "दुःख तो सभी को हुआ है।"

"कल ही रात में दस बजे तक दुनिया के बड़े बड़े आदमियों के comments आ गये थे। जार्ज बर्नार्ड शा ने कहा है, it shows how dangerous it is to be too good शा की बात सबसे मौलिक (original) और सबसे practical है। जितने भी comments आये हैं उनमें सबसे बुरी बात जिन्ना ने कही है। उन्होंने तीन जगह हिन्दू शब्द का प्रयोग किया है जैसे उनका और किसी से कोई सम्बन्ध ही न हो।"

"वह कभी भी अपनी परिधि से बाहर नहीं देख सकता," महादेवी जी ने कहा।

"मृत्यु के बाद तो किसी से कितना ही सैद्धान्तिक विरोध क्यों न रहा हो, सब भुला दिया जाता है और अपने विरोधी की कुछ अच्छी बात कहने के लिये मन अपने आप उमड़ता है, पर जिन्ना के comments से ऐसा लगता है जैसे उसका एक एक शब्द बहुत देर तक सोच कर लिखा गया हो।"

इतने में रामदास चाय ले आया। दो दिन से महादेवी जी ने न तो कुछ खाया है और न सोयी हैं। ३१ को मैंने भी उपवास रखा था अब कुछ खाना था। मैंने फिर बात छेड़ी। मैंने कहा,

"अभी देश के साहित्यिकों के comments नहीं आये।"

'साहित्यिक तो अभी रो ही रहा होगा। रोना रुकने पर ही कुछ कहेगा और वह भी एक दो शब्दों में नहीं। कुछ बड़ी बात ही कहेगा।" महादेवी जी को यह बात साहित्यिकों की ओर से थी पर मुझे ऐसा लगा जैसे वे अपनी बात कह रही हों। महादेवी जी गांधी जी की मृत्यु पर कोई बड़ी चीज लिखेंगी ऐसा मेरा अनुमान है।

महादेवी जी ने दोनों प्यालों में चाय बना दी थी। मैंने अपना प्याला उठा लिया। चारों ओर वातावरण में एक गम्भीर उदासी छायी हुई थी। महादेवी जी अधिक गम्भीर हो कर बोलीं,

उनके लिये कोई कमैन्ट (comment) भी क्या दे सकता है। जहाँ से वे अपना काम छोड़ गये हैं; कोई वहीं से उसे आरम्भ करने की बात कहे, जो उनका काम अधूरा रह गया है उसे पूरा करे; यही सबसे बड़ा comment होगा।......फिर कुछ क्षण रुक कर बोली, "मनुष्य को व्यक्तिगत सम्बन्धों के कारण अधिक दुःख होता है। विश्व की एक भारी क्षति हुई है। यह तो दुःख की बात है ही। बापू आधी रात में उठकर भी पत्रों का उत्तर देते थे। हम तो पत्रों का उत्तर भी नहीं दे पाते," महादेवी जी और भी उदास हो गईं।

"आप का तो उनसे पत्र-व्यवहार होगा?" मैंने पूछा।

"हाँ, मैंने उन्हें जितनी बार भी पत्र लिखा है, उन्होंने तुरन्त ही उसका उत्तर दिया है। अभी मैं देहली गयी तो उनसे मिलीं थी। देखकर कहने लगे, "हाँ, मैं जानता हूँ तुम बहुत तूफान करती रहती हो।" इतने में डा० महमूद आ गये। उनको बापू जी ने समय दे रखा था और मैं तो बिना नियत किये हुए ही पहुँच गई थी। मैं उठ खड़ी हुई तो बोले, "अरे, तुम तो चल दीं।"

"अब आप डा० साहब से बातचीत करेंगे न?"

"अच्छा, अभी तो तुम रहोगी। इन्हें तो जाना है। फिर कभी आ जाना," "फिर मैं उतनी घिरी रही कि उनसे मिलना नहीं हुआ और यदि मैं जाती तो वे भाषा का प्रश्न लेकर उलझ पड़ते और उनके

सामने मैं तर्क तो कर नहीं सकती थी।" महादेवी जी के नेत्र आँसुओं से भर गये। उन्होंने अपनी आँखें बन्द कीं और अश्रुबिन्दु नीचे ढुलक पड़े। पलकें बिल्कुल भींग गईं। मैं अपलक उनकी ओर देख रहा था। अपने आँसुओं की ओर से मेरा ध्यान हटाने के लिये बोलीं, "अच्छा, तुम चाय पियो।" मैंने आँखें नीचे झुका लीं और प्याला ओठों से लगा लिया। चाय के दो घूंट पीकर मैंने जैसे ही अपनी आँखें ऊपर उठायीं तो एक हलके, छोटे सफेद रूमाल से उन्होंने अपने आँसू पोंछ लिये थे।

उन्होंने भी थोड़ी चाय पी। मैंने कुछ खाया भी। कुछ मिनटों की निस्तब्धता के उपरान्त मैंने कहा, "शोक और वेदना के अवसर पर गीता से सचमुच बहुत बल मिलता है। महात्मा जी की मृत्यु के बाद से रेडियो में गीता का पाठ आ रहा था और गांधी जी की प्रिय 'रामधुन' पाठ करने वाले की वाणी में एक व्यथापूर्ण कम्पन था; पर फिर भी उसका एक-एक शब्द स्पष्ट था। ऐसे शोक के अवसर पर गीता से महान् बल मिलता है।"

'इसके लिये हम उसके लेखक के ही ऋणी हैं। कौन जानता है युद्ध में यह सब कुछ कृष्ण ने कहा ही होगा। तब से उसमें न जाने क्या क्या जोड़ा गया है। उसकी भाषा भी तब से पाँच सौ वर्ष बाद की लगती है।"

"हाँ, मेरी भी ऐसी ही धारणा है कि कृष्ण और अर्जुन का तो केवल उन्होंने आश्रय लिया है, पर बात व्यास जी ने अपने मन की ही कही है। साहित्यिक तो प्राचीन कथाओं के आधार लेकर अपने ही विचार और दृष्टिकोण सामने रखता है। कौन जानता है कि उर्मिला ने लक्ष्मण से वही बातें कही होगीं जो गुप्त जी ने उसके मुख से कहलवायी हैं। यह तो कलाकार की अपनी कल्पना है जो सच सी लगती है।" फिर मैंने कहा, "कल रेडियो से कबीर की साखी भी हो रही थी। ऐसे समय पर यह सब कुछ अच्छा लगता है।"

"हाँ, मृत्यु का Conception जैसे कबीर की साखियों में मिलता है, वैसा कहीं नहीं मिलता। वही कहार, डोली और चार जनों की बात कही है।'

"कबीर ने मृत्यु को भयावह रूप में नहीं देखा, उसके प्रिय रूप की कल्पना की है।"

महादेवी उठकर अन्दर चली गईं। उनका रूमाल वहीं रह गया था। मैंने उसे अपने हाथ में उठा लिया और देखा, रूमाल का मध्य भाग पूरी तरह आँसुओं से भींग गया था। वे लौटकर आयीं। मैंने पूछा, "आज तो संसद् में मजदूरों का काम बन्द रहेगा ?'

"हाँ, अब तो वसन्त-पंचमी पर भी कुछ न हो सकेगा। जब मन की स्थिति ठीक होगी तभी कुछ होगा। अभी तो मन पर एक पत्थर-सा रखा हुआ है।" अभी तक महादेवी जी ने मुझे ऐसा लगता है, कुछ लिखा नहीं। कुछ लिख चुकने पर ही उनका मन हलका होगा।

फिर आपके विषय में पूछने लगीं, "मानव जी का कोई पत्र आया था क्या ? पता नहीं उनको यहाँ कैसा लगा ?"

"बहुत ही अच्छा लगा। पत्र आया था। लिखा है, वसन्त पंचमी रविवार को ही है न ? तब तो आ सकूँगा। पर अब तो आने की बात ही नहीं उठती।"

"हाँ, मैंने जिनको पत्र लिख दिये थे, उन्हें अभी 'ना' के पत्र लिखूँगी।"

"तीन फरवरी को ७ बजकर ४७ मिनट पर 'मानव' जी लखनऊ रेडियो से बोलेंगे। विषय है 'लेखक और पाठक'। सरकारी नौकरी में तो बिना आज्ञा के न कुछ लिख सकते हैं न कुछ कह सकते हैं। अभी तो उन्हें सहज ही में आज्ञा मिल जाती है। पर जिस दिन संघर्ष आ खड़ा हुआ, उसी दिन वे यह नौकरी भी छोड़ देंगे, मुझे भय लगता है।" और फिर मैंने कहा, "इस व्यक्ति को जीवन से अधिक

सिद्धान्त प्रिय है।" कुछ देर चुप रहकर बोलीं, "अब की बार तो वे इलाहाबाद दूसरी बार आये थे?"

"नहीं तीसरी बार।"

"अब तो पास आ गये हैं। छुट्टियों में यहीं चले आया करें।" "पर आने-जाने में रुपया भी तो बहुत खर्च हो जाता है।" अपने आप ही बोलीं।

"नहीं रुपये-पैसे की बात उनके साथ नहीं उठती। उनका तो ऐसा मन है कि यदि उनके पास हजारों रुपये हों तो वे उन्हें थोड़ी ही देर में बराबर कर दें।"

"साहित्यिक कलाकार तो ऐसा होता ही है" गम्भीर होकर महादेवी जी ने कहा। फिर आपके विषय में बहुत-सी बातें हुईं। आपके अपनी माता जी से कैसे सम्बन्ध हैं? अपनी पत्नी से कैसे? अपने मित्रों से कैसे? अपने शिष्यों से कैसे? इन पर मैंने कुछ थोड़ा-सा प्रकाश डाला। महादेवी जी आपकी बहुत प्रशंसा कर रही थीं। कह रही थीं, "सभी व्यक्ति अपने को चारों ओर से छिपा कर रखते हैं, पर इस व्यक्ति में यह बात नहीं।"

बातचीत के प्रसंग में आत्म-दमन में ही उत्तम कला का सृजन होता है, इस पर बात छिड़ गई थी। कहने लगीं, "विवाह तो केवल वासना के आधार पर ही है। कोई भी जीवन-साथी अपने साथी को चारों ओर से बाँध देना चाहता है। तुमने इधर क्यों देखा? तुमने उत्तर क्यों देखा? तुम कुछ लिख रहे हो या बैठे कुछ सोच रहे हो, वह आया और कान ही खींचने लगा। पर चिन्तन के जो क्षण एक बार आते हैं वे फिर कभी नहीं लौटते। एक ऐसा साथी पाकर जो मुनीम की तरह पल-पल का हिसाब माँगता हो, मैं कल्पना नहीं कर सकती कि कोई कलाकार बड़ी चीज दे सकता है। इस दृष्टि से तो हम भाग्यवान ही हैं ऐसे ही क्षणों से प्रभावित होकर हमने तो पहले ही ऐसी हिसाब-

परम्परा से हाथ जोड़ लिये जिससे मेरे चिन्तन के क्षणों में कोई पहरा न डाल पाये।

"ऐसा साथी तो कलाकार के जीवन में बाधक ही बनता है। यह किसी कलाकार का सौभाग्य ही समझो, यदि वह उसके जीवन में सहायक बन जाय। ऐसा साथी कहाँ मिलता है?" मैंने कहा।

'हमारे यहाँ जो ब्रह्मचर्य का प्रताप बताया गया है उसके पीछे कोई न कोई बात है। सब कुछ यों ही नहीं हैं। जब प्रेम की भावना अन्तर्मुखी हो जाती है, तभी प्रतिभा का विकास होता है। पन्त जी ने संयम से जीवन बिताया है, इसीलिए उनके दर्शन में, उनकी लेखनी में कितना Restrain है।"

महादेवी जी की इस बात से मुझे अज्ञात रूप से बड़ी भारी शक्ति मिल रही थी। दो-तीन महीने से मुझे बड़ा सूना-सूना-सा लगा रहा था। ऐसा लग रहा था जैसे जीवन में कोई बड़ा भारी अभाव हो। जीवन में ऐसा लगने लगा था कि केवल किसी की स्मृति को लेकर ही जीवित नहीं रहा जा सकता। मन के उमड़ते हुए भावों को कोई लेने वाला भी तो हो। एक महीने से मुझे अन्तर में एक तीव्र प्यास का सा अनुभव हो रहा है या शरीर की भूख बढ़ गई है। आज भावावेश में मुझे ऐसा लगा कि मैं मन ही मन जीवन भर अविवाहित रहने की प्रतिज्ञा कर लूँ, पर अभी मुझे अपने ऊपर विश्वास नहीं। किसी को अपने ऊपर ही विश्वास न होना बडी दयनीय बात है। पर मैं सत्य को कभी भी नहीं छिपाता और आप से तो छिपाना भी क्या। तीन-चार वर्ष में मन की इस दुर्बलता से संघर्ष करने का प्रयत्न करूँगा, फिर हो सकता है इस पर विजय पा लूँ। पर अभी कुछ नहीं कहा जा सकता।

महादेवी जी पूछने लगीं, "तुम आजकल क्या लिख रहे हो?"

"अब तो मैं पढ़ ही रहा, हूँ, पर वैसे रेखा-चित्र आरम्भ किये हैं। पूरी पुस्तक में तो लगभग दो वर्ष लग जायँगे।"

"क्यों भाई, दो वर्ष क्यों लग जायँगे ? इन छुट्टियों में पूरी कर दो।"

"यदि केवल यही काम किया जाय तो पूरी हो सकती है, पर पैसे के लिए थोड़ा अनुवाद भी करना पड़ेगा और 'रेखा-चित्र' तो प्रेरणा की बात है। धीरे-धीरे जब-जब मन में भाव उठेंगे, लिखूँगा और अनुवाद तो एक Clerical कार्य है, इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं।"

"हाँ, मन से अच्छी लगने पर यदि किसी कहानी या कविता का अनुवाद किया जाय तो वह बात नहीं होती, पर अनुवाद के लिए ही अनुवाद करने पर तो ऐसा ही हो जाता है।"

"हाँ, ऐसा तो है ही। अनुवाद से मुझे पैसा मिल जाता है, पर पैसा वास्तव में प्रेरणा तो नहीं।"

"हाँ, पैसा तो केवल सुविधा-मात्र है और जो व्यक्ति अपना कुछ लिखता है उसे अनुवाद अच्छा नहीं लगता।"

इसके उपरान्त उठकर हम बाहर आ गये। बाहर घूमते-घूमते संसद् की सीमा पर आकर खड़े हो गये। वहाँ सामने एक पालतू सूअर का दो बड़े-बड़े कुत्तों ने पीछा कर रखा था। उसका पिछला हिस्सा लोहू-लुहान हो गया था। उसे देखते ही महादेवी जी चिल्लायीं, "भाई इसे बचाओ, बचाओ इसको।" मैंने पैरों में इस समय जूते नहीं पहन रखे थे। काँटेदार तार पर पैर रख कर मैं कूदा और उस ओर दौड़ा। कुत्ते भाग गये। स्वयं शोक में डूबे रहने पर दूसरे के दुःख का भान महादेवी जी को रहता ही है।

नौकर ने खाना बना लिया था और महादेवी जी से खाने के लिए कह रहा था पर वे कह रही थीं, "मेरा मन नहीं है। मैं नहीं खाऊँगी। तुम खा लो और बाकी ढक कर रख दो। ताँगा आ गया है, मैं जा रही हूँ।"

मैंने भी कई बार कहा, "दो दिन से आपने कुछ नहीं खाया।

थोड़ा खा लीजिए। पर उन्होंने एक बात नहीं मानी। ग्यारह बज गये थे। मैं उदास घर लौट आया।

सश्रद्धा
शिवचन्द्र नागर

५२

३० ए. बेली रोड
प्रयाग
६। २। ४८

आदरणीय 'मानव' जी,

कभी-कभी मुझे यह जानकर बहुत ही दुःख हुआ करता था कि आज से दो हजार वर्ष पहले ईसामसीह को सूली पर चढ़ा दिया गया था, और इससे पहले सौक्रेटीज के भी विष द्वारा प्राण ले लिये गये थे, पर उस युग की कल्पना कर ही मन सन्तोष कर लिया करता था कि वह युग तो ऐसा ही था, राज्य का शासन एक व्यक्ति की इच्छा से होता था और दुनियाँ की संस्कृति और सभ्यता बहुत पिछड़ी हुई थी। पर आज बीसवीं सदी में भी एक सन्त महात्मा की इस प्रकार हत्या हो सकती है, इसकी कल्पना करना भी कठिन पड़ता था। अब कल्पना सत्य हो गई है तो सत्य में विश्वास भी नहीं होता और अन्तर की गहराई से एक हलकी-सी ऐसी आवाज आती है कि क्या सचमुच इस महात्मा की हत्या कर दी किसी ने? और ऐसा लगता है कि दुनिया दो हजार वर्ष में जरा भी आगे नहीं बढ़ी।

राजनीति में जो स्थान गाँधी जी का था, वही स्थान मैं तो आज के साहित्य में महादेवी जी का समझता हूँ। 'साहित्यकार संसद' मेरे लिये गाँधी जी के 'सेवाग्राम' जैसा ही है। जैसे सेवाग्राम के छोटे छोटे से व्यक्ति को गर्व होता होगा कि उसे बापू का सम्पर्क मिला था, ऐसे ही कभी-कभी जब मैं सोचता हूँ तो मेरा मन अमित आल्हाद से भर उठता है कि इस महान् कलाकार का सम्पर्क पाकर मेरा

जीवन धन्य हो गया। मुझे महादेवी जी का सम्पर्क मिला है, इसका मूल्य मैं अभी नहीं आँक सकता, पर जिस दिन वे हमारे बीच न रहेंगी और सम्पर्क के पल फिर कभी न लौट सकेंगे, उस दिन मेरी प्रत्येक सांस कहेगी कि वे पल अमूल्य थे। अभी भारतवर्ष में साहित्य को Due place नहीं मिली। फिर भी संसद एक दिन यदि प्रत्येक भारतीय का नहीं तो प्रत्येक साहित्यिक का तीर्थ स्थान अवश्य होगा।

'पंत' जी के काव्य में संयम की बात करते हुए कदाचित् महादेवी जी का संकेत उनकी बाद की रचनाओं की ओर था, 'स्वर्ण किरण' और 'स्वर्ण धूलि' की ओर। 'स्वर्ण किरण' को पढ़कर मुझे भी ऐसा लगा है कि इस रचना में संयम भी है तथा भाव-पक्ष की अपेक्षा दर्शन पक्ष अधिक है।

हमारी रशन टीचर मिस केम्प (P. M. Kemph) ने रशन पढ़ाना आरम्भ कर दिया है। बहुत अच्छा पढ़ाती हैं। मैं तो आशा करता हूँ कि डेढ़ वर्ष में भाषा के मार्ग पर वे डाल देंगी। फिर ज्ञान विस्तृत करना परिश्रम की बात है। इस महिला की अवस्था चालीस वर्ष के लगभग होगी। ये अविवाहित हैं। स्वभाव की बहुत कोमल हैं और (Sense of humour) इन में बहुत अधिक है। भारतीय स्त्रियों में (Sense of humour) नहीं के बराबर ही होता है। यूरोपियन नारी की यह एक विशेषता है। जीवन में किसी स्त्री से पढ़ने की मेरी बड़ी इच्छा थी। अब इनसे पढ़ना हो गया है। पढ़ाने में ये काफी परिश्रम करती हैं। जब रशन शब्द मुझसे नहीं बुल पाते तो क्लास के बाद अपने आफिस में बुलाकर बोलना सिखाती हैं। मैं एक दिन इन्हें महादेवी जी से मिलाना चाहता हूँ।

'संसद्' का उद्‌घाटन तो वसन्त पंचमी के दिन होगा नहीं। महात्मा जी के निधन शोक के कारण स्थगित कर दिया गया है। फिर भी आप आइयेगा।

हमारी परीक्षायें ३ मई के लिये स्थगित कर दी गई हैं। मैं एक

दो दिन के लिये लखनऊ आना चाहता हूँ। एसेम्बली का सेशन कब से आरम्भ होगा।

सश्रद्धा

शिवचन्द्र

५३

३० ए० बेली रोड
इलाहाबाद
१५।२.४८.

आदरणीय 'मानव' जी,

आप का १०।२ का पत्र मिला। १२ की प्रभात में यहाँ महात्मा जी को अन्तिम श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिये आस पास से तथा दूर-दूर से अपार जन समूह उमड़ पड़ा था। मुरादाबाद तथा लखनऊ से मेरे एक दो परिचित भी आये थे। बांदे से सुश्री शकुन्तला सिरोठिया की बड़ी बहिन आई थीं। उस दिन सुबह को आपकी भी प्रतीक्षा की, पर मैं जानता था आप आयेंगे नहीं, क्योंकि आपको भीड़ अच्छी नहीं लगती।

१२ ता० को उषाकाल से ही यहाँ आकाश में हलके-हलके श्वेत बादल छा गये थे। जैसे स्वर्ग में देवतागण इस संत का स्वागत इन श्वेत पुष्पों के पाँवड़े बिछा कर रहे हों। जिस मार्ग पर उनकी अस्थियों का जलूस जाने वाला था, उस पाँच मील लम्बे मार्ग के दोनों ओर जनता आ खड़ी हुई थी। जब रथ मार्ग से गुजरा, तो सभी ने दोनों ओर से पुष्प वर्षा की। फिर जनता संगम की ओर उमड़ पड़ी। अनेकों व्यक्ति घुटनों घुटनों पानी में दूर तक चले गये। मैं भी पानी में दूर तक चला गया, क्योंकि मुझे महात्मा जी की अस्थि ले जाने वाली नौका का स्नैप लेना था। मैं पानी के बीच में खड़ी हुई एक नौका पर चढ़ गया। इतने में उसी पानी में अपने कपड़े सँभाले कुछ महिलायें आईं। इनमें से कुछ बहुत सुन्दर थीं और एक दो तो

असाधारण। वे आईं और उनमें से एक ने मुझे हाथ बढ़ा कर ऊपर लेने के लिये कहा। मैं जरा झिझका पहले, पर फिर एक दूसरी लड़की ने हाथ बढ़ा दिया। वे सभी मेरा हाथ पकड़ कर ऊपर चढ़ गईं। नौका के दूसरे किनारे पर जाकर अस्थि ले जाने वाली नौका देखने लगीं। मैं भी उनके पीछे जा खड़ा हुआ। दूर गंगा-यमुना की धारा में जाती हुई उस श्वेत नौका को, जब वह आँखों से ओझल होने लगी तो, उन सभी ने आँखें बन्द कर हाथ जोड़ लिये। मेरे भी हाथ अपने आप जुड़ गये। सब ने मन ही मन श्रद्धांजलि अर्पित की और एक ने व्यथा से टूटे स्वरों में कहा, "बापू जी अमर थई गयाँ" (बापू जी अमर हो गये)। फिर मैंने इनसे थोड़ी सी बातचीत की। ये गुजराती महिलायें बम्बई से महात्मा जी को अपनी अन्तिम श्रद्धांजलि अर्पित करने आयीं थीं। अच्छा, नाव पर यदि मेरी जगह आप होते और वे इसी प्रकार सहज भाव से अपने हाथ बढ़ा कर पकड़ने के लिये कहतीं, तो आप क्या करते? आप तो नारी को स्पर्श देते नहीं। मैंने वल्लभभाई पटेल को पहली बार देखा। एक ओर खादी के कुर्ते पर गले में एक चद्दर डाले बैठे थे, गम्भीर, शांत और कुछ उदास, बिल्कुल बिना हिले-जुले। इनका चमकदार विशाल भाल है, सिर सपाट तथा गर्दन मोटी है, मूँछे दाढ़ी तो ये रखते ही नहीं, रंग इनका गेहुँआ है। इनकी उम्र ७८ वर्ष है, पर मुश्किल से ६० वर्ष के लगते हैं। इनके मुख की गम्भीरता भयानक है। ये कदाचित् ही हँसते हैं। अपने विरोधी को अपने व्यक्तित्व से ही सहमा देने वाला व्यक्ति है यह। सचमुच ये लौह पुरुष हैं।

परसों मैंने 'कल्पना' देखी। बहुत दिनों से इसका शोर सुन रक्खा था। इलाहाबाद में आज इसका पहला ही दिन था। इसे देखकर मुझे ऐसा लगा, जैसे इसके पात्र नृत्य में ही अभिनय करते हों। इसके पात्र जो कुछ मुँह से कहते हैं उसे इस प्रकार नहीं कहते जैसे हम जीवन में देखते हैं, पर उसके साथ मुँह के शब्दों, शरीर के अंगों का एक

Rythm सी होती है। समाज, संस्कृति, राष्ट्रीयता सभी पर इसमें प्रकाश डाला है और सभी के दोषों पर व्यंग्य किये हैं। कथा-सूत्र पूरी तरह समझ में नहीं आता। अलग अलग बहुत सी बातें हैं पर वे सब एक कथा में किस प्रकार पिरोयी हैं, यह पता नहीं लगता। जीवन में, घटनायें तो Hap hazard way में होती हैं;पर कलाकार अपनी कृति में उन्हें एक क्रम दे देता है। इस प्रकार का क्रम मुझे इसमें नहीं दिखाई दिया। ऐसा लगता है कि उदय शंकर को अपने जीवन की घटनाओं के प्रति इतना मोह है कि वे सभी कुछ दे देना चाहते हैं। एक दो बंगाली गाने भी हैं। वे मुझे अच्छे लगे। पर बाकी गाने तो कविताएँ हैं। मुझे अधिक अच्छे तो नहीं लगे। इसमें संदेह नहीं कि नृत्यकलाविदों के लिये यह एक महान कलाकृति हो सकती है, पर जो नृत्य की ए. बी. सी. भी नहीं जानते उनके लिए तो यह समझ के बाहर की वस्तु है।

अपनी रशन अध्यापिका से मेरा अभी पूरा परिचय नहीं हुआ। अब मैं प्रयत्न करूँगा। जब आप आयेंगे, तो आप का परिचय मैं उनसे जरूर कराऊँगा। इसी सेशन में Zamidari Abolition Bill एसेम्बली में पेश होगा। जिन दिनों इस पर बहस हो, उन्हीं दिनों मैं एसेम्बली देखना चाहता हूँ। प्रबंध कर दें।

डाक्टर रमेश आये थे। आपकी बहुत प्रशंसा कर रहे थे। वे कल चले गये हैं। मैंने एक दिन उनसे बात-बात में आपका हाल में बताया हुआ प्लौट उन्हें सुना दिया। उसी प्लौट को लेकर उन्होंने एक कहानी 'लेखक' शीर्षक से लिखी है। अपनी इधर की लिखी हुई नई कहानियों में वे उसे अपनी सर्व-प्रिय कहानी बता रहे थे। पर कह रहे थे यह कहानी 'मानव' जी की है और बिना उनकी आज्ञा के प्रकाश में नहीं लाऊँगा। मैंने भी वह कहानी सुनी है। अच्छी लिखी है, पर मेरे मतानुसार अभी उसमें (Climax) वैसा नहीं आया, जैसा आ सकता था। वे उसे फिर ठीक कर रहे हैं।

आप मुरादाबाद कब जायेंगे? होली के अवसर पर यहाँ आइयेगा?

सश्रद्धा
शिवचन्द्र नागर

५४

३० ए० बेली रोड
इलाहाबाद
२।३।४८

आदरणीय 'मानव' जी,

आपकी पहुँच का कार्ड ता० २७।२ की संध्या को ही मिल गया था। आपके इस पत्र की प्रतीक्षा परसों से थी। कल न मिलने पर मेरे मन में आपके अस्वस्थ होने की आशंका उठी थी। जिस समय मैंने आपको विदा किया था, तभी मुझे लग रहा था कि आप के शरीर के (Tissues) अन्दर से विश्राम के लिये आकुल हैं, पर आप उन्हें अपने मन के कठोर संयम से बाँधे हुए थे। इससे यही लगता है कि जो प्रकृति की माँग है वह पूरी होनी चाहिये, नहीं तो वह अपनी पूर्ति का कोई दूसरा मार्ग खोज लेती है। जब तक मेरा यह पत्र मिलेगा, आशा है आप स्वस्थ हो चुकेंगे।

आपने अपनी अस्वस्थता में भी अपने पत्रों के अनुपात के अनुसार कदाचित् यह एक काफी लम्बा पत्र लिखा है। इससे पता लगता है कि लिखने को कितना था! इस सब के पीछे एक महान् शक्ति कार्य कर रही है जो अस्वस्थ दशा में भी आपको काम करने के लिए प्रेरित करती है। बीमारी में पत्र लिखने में तो कष्ट ही होता है, प्रिय जनों के पत्र मिलने पर शान्ति मिलती है और ऐसे में प्रिय जनों की समीपता से सुख मिलता है। दिन भर तो आपको कमरे में अकेले रहना पड़ता होगा?

यहाँ २८।२ को श्रीमती सुभद्राकुमारी जी के फूल आये थे। दस बजे सुबह उस दिन 'संसद' की ओर से साहित्यिकों का एक समूह 'संगम' गया था। महादेवी जी भी 'संगम' पैदल ही गई थीं और अस्थि-विसर्जन क्रिया के उपरान्त चार बजे सभी लौट आये थे। मैं तो इस सब में सम्मिलित नहीं हो सका, पर मुझे इस बात का पांडे जी से पता लग गया था। उसी दिन ७॥ बजे, मैं महादेवी जी से मिलने गया था। भक्तिन ने अन्दर पूछकर बताया, "अब तो मैं लखनऊ जाने की तैयारी कर रही हूँ, लौटकर आने पर ही बात होगी।" मैं समझता हूँ महादेवी जी उसी दिन लखनऊ के लिये रवाना हो गईं थीं और अभी वहीं हैं भी।

मेरे महादेवी जी के साथ आने की तो बात ही नहीं उठती। मैं अभी उस परिधि में दूर तक नहीं हूँ।

आशा है अब तक आप की भेंट महादेवी जी से हो भी गई होगी। जब वे लखनऊ से लौट आयेंगी, तो मैं उनसे मिलूँगा और आपकी बात उनसे कहूँगा। एक बार महादेवी जी ने भी इसी आशय की बात कही थी। उन्होंने कहा था कि "हमारा तो मानव जी से पुराने ढंग से ही पत्र-व्यवहार होगा।"

आज मैंने अपनी रशन टीचर को महादेवी जी की 'दीपशिखा' दी। एक बार हाथ में लेने पर उन्हें उसे छोड़ने को ही मन नहीं कर रहा था। वे सभी चित्र देखती गईं। कविता तो वे समझती नहीं, क्योंकि हिन्दी नहीं जानतीं, पर चित्रों की भाषा समझने वाला हृदय उन्हें प्राप्त है। चित्र उन्हें बहुत पसन्द आये। एक दो कविताओं का Central Idea भी मैंने उन्हें बताया था। आज समय कम था। किसी दिन निश्चिन्तता से बातचीत होगी। हिन्दी के प्रसिद्ध उपन्यासों तथा कहानी संग्रहों की सूची भी मैंने उन्हें दे दी है। इस सूची में महादेवी जी के 'अतीत के चलचित्र' और 'स्मृति की रेखायें' दोनों हैं। मिस

कैंप इस सूची को यूगोस्लाव गवर्नमेंट की Information Magazine में भेजेंगी। कुछ का इसमें से अनुवाद भी होगा।

हिन्दी भाषा के ज्ञान में मिस कैंप संतोषजनक प्रगति कर रही हैं। इनको ड. ठ. ढ. भ. घ. ध. के बोलने में कठिनाई होती है। यह शायद इसी लिये है कि रशन भाषा में ह की ध्वनि नहीं है। सबसे अधिक कठिनाई उन्हें ड़ की ध्वनि में होती है। इस ध्वनि के अभ्यास में वे थक जाती हैं। थोड़ी हँसी भी रहती है, उस समय जब बार बार प्रयास करने पर भी वे नहीं बोल पातीं। यदि ऐसे ही चलता रहा तो वे बच्चों की हिन्दी की पुस्तकें दो तीन महीने में ही समझने लगेंगी।

आप के गीत कब से रेडियो पर सुनने को मिल सकेंगे।

सादर

शिवचन्द्र

५५

३० ए. बेली रोड
इलाहाबाद
६।३।४८.

आदरणीय 'मानव' जी,

कल संध्या को मैं महादेवी जी के यहाँ गया था। भक्तिन से पता चला कि उनकी तबियत खराब है। हलका सा ज्वर आ गया है। मैं एक सहज सा उल्लास लिये गया था, यह सुन कर कुछ उदास हो गया। महादेवी जी से मिलने की आशा तो बिल्कुल जाती रही थी, पर फिर भी भेंट हो ही गई।

रोग-शैया से उठ कर, वे धीरे-धीरे कमरे में आईं। सोफे पर बैठते ही, मैंने तो केवल उनके स्वास्थ्य की बात ही पूछी थी कि उसका बहुत संक्षिप्त सा उत्तर देकर कहने लगीं, "मैं मानव जी से बहुत नाराज़ हूँ। एक तो वे स्टेशन पर नहीं आये, दूसरे मैंने उन्हें दो बार

फोन कराया, पर वहाँ से दोनों बार यही उत्तर मिला कि काउंसिलस रेजीडेंस में इस नाम का कोई व्यक्ति नहीं रहता।"

सुन कर मुझे थोड़ी हँसी आई। मैंने कहा, "यहाँ से जाने के बाद ही से वे बीमार हैं। फिर भी वे स्टेशन गये थे। आप मिलीं नहीं।

"नहीं भाई, यदि गये होंगे तो वे ठीक समय पर नहीं पहुँचे होंगे। मैंने स्टेशन पर इधर-उधर देखा भी था और फिर बाहर आने पर मुझे दोबारा भी अन्दर जाना पड़ा, क्योंकि कुली ने एक कन्डी छोड़ दी थी और उसी समय विद्यावती कोकिल भी मिलीं। 'मानव' जी को कुछ देर हो गई होगी। ट्रेन तो बिल्कुल ठीक समय पर पहुंच गई थी। पर फिर सम्पूर्णानन्द जी की कार आगई। मैं जल्दी ही चली गई।"

"फोन से भी उनका पता नहीं लगा?"

"हाँ, पहले तो मैंने सम्पूर्णानन्द जी के यहाँ से फोन कराया था। फिर दूसरे दिन मुझे टंडन जी के यहाँ रहना पड़ा। वहाँ उनके पी० ए० ने फोन से मालूम किया। रेजीडेंस से पता चला कि यहाँ इस नाम के कोई व्यक्ति नहीं रहते। भले ही स्टेशन पर न आये हों, पर मैं तो घर जाती और चकित कर देती। कोई काम ही कराना होता, तो मैं उन्हीं से कराती। आखिर अपने से छोटे काम करते ही हैं!" जरा हँसकर उन्होंने कहा। आज वे हँस तो रही थीं, पर हँसी अन्तर से आ नहीं रही थी। आज वे अस्वस्थ थीं, अतः बातचीत का स्वर भी कुछ धीमा और भारी था।

महादेवी जी ने आपको फोन करने के लिए कहा तो अवश्य होगा, पर वे स्वयं तो फोन पर बातचीत करती नहीं, इसलिये उनकी ओर से जिसने यह काम किया होगा वह इस व्यर्थ के काम में क्यों Interest लेने लगा?

मैंने कहा, "पर उनका तो २७ नम्बर है।"

"नम्बर तो मुझे याद नहीं और उनके श्वसुर का नाम भी मुझे नहीं पता था। मैं समझती हूँ वहाँ इसीलिये इनका पता नहीं लगा क्योंकि कमरा तो इनके श्वसुर के नाम पर ही Allot होगा।"

"यह भी खूब रहा, जब वे स्टेशन पर आपको खोजने गये तो आप नहीं मिलीं और जब आपने फोन पर उन्हें खोजा तो वे नहीं मिले।"

"हाँ, हुआ तो ऐसा ही। हम तो 'मानव' जी से अभी तक बहुत नाराज़ थे। पर अब नहीं हैं। आज ही उन्हें पत्र लिख देना।" महादेवी जी ने कहा।

मैंने उनसे रेडियो पर अपने गीतों को दे देने की बात कही थी। यह भी कहा था कि Selection या तो आप ही कर दीजियेगा और यदि आपको मानव जी पर विश्वास हो तो वे कर देंगे। और अब तो 'मानव' जी वहाँ हैं ही, इसलिये आपके गीतों की Tuning में भावों की हत्या का भी कोई भय न रहेगा। यह उत्तरदायित्व वे ले लेंगे।" सुनकर पल भर रुकीं। फिर बोलीं,

'भाई, उन पर विश्वास क्यों नहीं है, और मैं तो स्वयं Selection कर भी नहीं सकती। वे ही कर देंगे।"

"प्रारम्भ में पचास गीत जायेंगे और वे भारतवर्ष के सभी स्टेशनों से Broadcast होंगे।"

" 'मानव' जी ठीक छाँट देंगे। यह काम स्वयं ठीक से हो भी नहीं सकता। अपने लिखे हुए में से स्वयं छाँटना यह कुछ स्वाभाविक सा भी नहीं लगता है।"

इस पर मैंने हँस कर कहा, "आपके 'आधुनिक कवि' पर ही 'मानव' जी कह रहे थे कि "क्या गीत छाँटे हैं?" और जब आपके १०० गीतों के अँग्रेजी में अनुवाद होने की बात थी, तब भी यह अधिकार वह अपने लिये ही चाहते थे।" फिर दो पल रुककर मैंने कहा," जब आप के गीतों में इतना कोमल मधुर संगीत है तो उसका

परिचय जनता को होना ही चाहिये। हमारी रशन टीचर अभी हिन्दी न के बराबर ही समझती हैं, पर मैंने आज आप की एक कविता 'आँसुओं के देश में' सुनाई तो सुन कर कहने लगीं कि it Has a Good deal of music. इसी बात के सिलसिले में मैंने उनसे आपका 'महा संगीत' वाला Suggestion बताया और उसकी योजना स्पष्ट की। सुन कर उन्हें अन्तर से तो बहुत अच्छा लगा, पर आन्तरिक उल्लास की रेखाओं को हलकी गम्भीर स्मिति में दबाते हुए बोलीं,

"हमारे सामने तो यह होगा नहीं और हम करने भी नहीं देंगे।" उनके कहने से मैं इतना ही कह सकता हूँ कि यदि किसी दिन आपका संसद में रहना हुआ और आपने निश्चित रूप से अपने हाथों इस योजना का भार सँभाला, तो महादेवी जी 'ना' नहीं कर सकेंगी। पर 'रवीन्द्र संगीत, के समान 'महा संगीत' की सृष्टि संभवतः अभी दूर की बात है। आज तो मुझमें इसलिये विजय का गर्व और उल्लास है कि रेडिओं वाले कह-कह कर थक गये और महादेवी जी ने स्वीकृति नहीं दी; पर आपके थोड़े से प्रयास से ही उनके गीत जनता को Air पर सुनने को मिल सकेंगे।

अच्छा तो अब आप Contract Farm भिजवा दीजियेगा। महादेवी जी मौलाना आजाद से मिलने एक दो दिन में दिल्ली जाने वाली हैं। यदि वे न गईं, तो मैं शीघ्र भेज दूँगा।

आज बात करते-करते महादेवी जी कह रही थीं, "हमारे साथ तो कुछ ऐसा है कि यह कुछ पता ही नहीं लगता कि किसी के साथ कितना सम्बन्ध है। किसी से दस मिनट की बातचीत में भी उसे वैसा ही लगता है, और एक घन्टे की बातचीत में भी। एक-दो दिन का सम्बन्ध हुआ तो बहुत ही हो गया, कुछ और अधिक दिन हो गये तो उससे भी अधिक। Formality की प्राचीर हमसे नहीं खींची जाती।"

"Formality न रखते हुए सब सम्बन्धों को यथास्थान बनाये रखना भी तो बड़ा कठिन है," मैंने कहा।

"भाई, हमको तो ऐसा कुछ लगता नहीं। हाँ, एक सीमा है उससे आगे तो किसी को बढ़ने नहीं देते।"

"पर आपके साथ तो बात यह है कि एक आदमी जो आपके साथ बहुत दिन रहा है और फिर वह कहीं चला जाये और बहुत दिनों तक न मिले, तो वह आपको याद तो आता नहीं?"

"नहीं, याद क्यों नहीं आता! बहुत दिन हो जाते हैं तो कभी-कभी उसके बारे में जानना चाहते ही हैं।"

महादेवी जी के मस्तिष्क में कालिदास के ऋतुसंहार तथा मेघदूत के अनुवाद करने की योजना है। पर कह रह थीं, "कहीं-कहीं बीच में ऐसे स्थल आये हैं कि आज का पाठक उन्हें अश्लील कहेगा, क्योंकि संस्कृत का कवि जहाँ शृंगारिक हुआ है तो फिर घोर शृंगारिक ही हो गया है और उन स्थलों पर पहुँच कर तो हमारी बुद्धि भी कुंठित हो जाती है। तब अनुवाद कैसे हो? बुद्धि उन्हें ग्रहण ही नहीं कर पाती। सोचती हूँ उन्हें छोड़ दूँगी।"

"उन स्थलों का Sublimation कर दीजियेगा और या फिर Twist कर दीजियेगा," मैंने कहा।

"Sublimation तो उनका हो नहीं सकता, और कुछ करूँगी। कालिदास की यह बात कुछ समझ में नहीं आती कि 'कुमार-सम्भव' प्रारम्भ से ही इतना सुन्दर काव्य है पर अन्त में जाकर घोर शृंगार और वह भी शिव और पार्वती का। कालिदास एक तो स्वयं शैव थे, इससे भी उन्हें ऐसा नहीं करना था फिर दूसरे शिव पार्वती तो जगत के माता-पिता हैं।"

"इससे ऐसा लगता है कि कालिदास मन से शृंगारी थे। उन्हें कहीं उसको अभिव्यक्त करने का स्थल न मिला होगा। वहाँ खोज लिया। दूसरे ऐसा लगता है लिखते समय कालिदास ने उनमें देवत्व की भावना स्थापित नहीं की। मनुष्यों की तरह ही देखा होगा।"

बात करने में महादेवी जी कुछ कष्ट सा अनुभव कर रही थीं; अतः मैं उठ बैठा और विदा ली। चलती बार फिर बोलीं, "मुझे तो 'मानव' जी पर गुस्सा आ रहा था, पर अब उन्हें पत्र लिख देना कि हम उनसे नाराज नहीं हैं।"

आपका पत्र भी अभी मिला है। आप अस्वस्थ हैं फिर भी काम पर जाते हैं। यह ठीक नहीं। और फिर वह काम मन के अनुकूल भी तो नहीं। इससे तो स्वास्थ्य के निरन्तर गिरते जाने की ही सम्भावना है। आपको यह काम छोड़ना ही पड़ेगा। मुझे ऐसा लगता है कि मनोनुकूल काम में शक्ति का क्षय नहीं होता बल्कि और शक्ति मिलती है। किसी भी काम के लिये शरीर तो सबसे पहला साधन है। आप उसका तिरस्कार कर काम न कीजिये। आपकी अस्वस्थता की बात सुनकर कल कांति त्रिपाठी भी बहुत दुःखी हो रही थीं और मैं सोचता हूँ मेरे उठकर चले आने पर उन्होंने आपको पत्र लिखा होगा।

मेरा तो अपना ऐसा अनुभव है कि रोग से मुक्त होने पर नवीन और सुन्दर विचार अवश्य उठते हैं। रोग से मुक्त होने पर जब हम उठते हैं तो मन और जीवन कुछ हल्का-हल्का सा लगता है और ऐसा लगता है जैसे हम एक नवीन और ताजी शक्ति लेकर उठे हों। मैं पाँच साल से बीमार नहीं हुआ और एक डेढ़ साल से मेरे जीवन में कोई बड़ी सुख की या दुःख की घटना भी नहीं हुई। अब मैं जीवन की और शरीर की इस समरसता से सचमुच बिल्कुल ऊब गया हूँ।

आपने अपनी बीमारी की हालत में यह दूसरा पत्र लिखा है। यह पत्र मुझे सबसे अच्छा लग रहा है। पता नहीं क्यों आपके अधिकतर पत्रों में मुझे ऐसा लगा है कि आप के भाव उमड़ कर तो अंकित हुए हैं, पर समय की कहूँ, संयम की कहूँ, या नियन्त्रण की, कि हलकी सी झिलमिली आ गई है, पर इन दोनों पत्रों में ऐसा लगता है कि ऐसी बात यहाँ कुछ नहीं। ये सीधे ही मन से आये हैं। ये दोनों पत्र और पत्रों की अपेक्षा अधिक मधुर हैं, अधिक कोमल। इससे मुझे

लगता है बीमारी में व्यक्ति अधिक कोमल, अधिक मधुर हो जाता होगा।

सश्रद्धा
शिवचन्द्र

५६

३० ए० वेली रोड
इलाहाबाद
११।३।४८

आदरणीय 'मानव' जी,

पत्र लिखे हुये, मैं समझता हूँ कुछ अधिक दिन तो मुझे नहीं हुए, पर आज लगता है, जैसे बहुत दिन हो गये हों।

६।३ की रात को डा० रमेश आ गये थे। ७।३ को उनके साथ संध्या समय महादेवी जी से भेंट हुई। आज महादेवी जी पहले से अधिक स्वस्थ थीं। राजनीति पर बातचीत छिड़ गई। कहने लगीं, "आज कोई किसी भी नौकरी के लिये जाये, उससे यह पूछा जाता है कि आप जेल गये हैं या नहीं? आया कि जेल जाने का और उस काम का किसी भी तरह कोई कार्य कारण सम्बन्ध नहीं होता। वैसे तो अब भी जो पार्टी Power में आती है, तभी वह अपने व्यक्तियों को ऊपर खींचती है; पर किसी की शक्ति का जहाँ सर्वोत्तम उपयोग हो सके, वहाँ हो तो अच्छा रहता है। यह तो जेल जाने की बात रही। फिर वे पूछते हैं आप खद्दर पहनते हैं? अब कदाचित् वे आगे बढ़ें तो ऐसा भी पूछने लगेंगे कि आप क्या खाते हैं? वैसे यह माना खद्दर पहनना अच्छा है, पर हम क्या पहनते हैं और क्या खाते हैं, यह बताना स्वयं इतनी छोटी बात है कि कोई भी आत्म-सम्मान वाला व्यक्ति बताना पसन्द नहीं करेगा।" यह तो आप जानते ही हैं कि जब महादेवी जी बोलती हैं तो धारा-प्रवाह बोलती हैं और अपनी बात

पूरी सुना देने से पहले 'हाँ' 'हूँ' के अतिरिक्त दूसरे को और कुछ बोलने का अवकाश नहीं देतीं। एम० एल० ए० लोगों की चर्चा करते हुये उन्होंने कहा, "ये लोग खद्दर-खद्दर तथा और दूसरे सिद्धान्तों के लिये चिल्लाते तो हैं पर बहुत से एम०एल०ए० ऐसे हैं कि बाहर तो वे अश्वय खद्दर पहनते हैं, पर घरों में वे ही रेशमी वस्त्र, तथा विदेशी साड़ियाँ चलती हैं। उनकी पत्नियां लिपस्टिक तथा पौडडर का प्रयोग अब अधिक साहस से करने लगी हैं। उनके यहाँ कोई मिलने जाये तो उसको अब पहले से भी अधिक कठिनाइयाँ होने लगी हैं। इतनी बात अब और आगे बढ़ी है कि पहले किसी सिपाही को या अर्दली को चपत मारने जैसा छोटा काम नहीं करते थे, पर अब यह भी होने लगा है।"

"हां, एसेम्बली में किसी ने कहा तो था कि अलीगढ़ में जिस Minister ने सिपाही को चपत मारा, वास्तव में देखा जाये तो वह चपत महात्मा गांधी के मुँह पर मारा गया था," मैंने कहा।

"हाँ!"

इसके बाद एक छोटी सी घटना हो गई। एक व्यक्ति जिसके पैरों में जूता नहीं था, सिर पर टोपी नहीं थी, कपड़े फटे थे, वहाँ आया। गिड़गिड़ा कर कहने लगा, "दो दिन से भूखा हूँ, मुझे कुछ काम चाहिये।" मैं बाहर उठकर गया मैंने धीरे से पूछा, क्या काम कर सकते हो ?. बोला, बाबू ! रोटी बना सकता हूँ। "महादेवी जी ने उसे ऊपर बुला लिया। उसकी याचनापूर्ण करुण दृष्टि को महादेवी जी सहन नहीं कर सकीं। चुपचाप अन्दर गईं। कुछ मुट्ठी में लायीं और उसके फैलाये हाथ पर खोल दी। कदाचित चाँदी का एक रुपया उन्होंने इसे दे दिया था। अपने सोफे पर बैठते हुये एक ठंडी लम्बी साँस भर कर बोलीं, "इतने में पता नहीं इसका पेट भर जायगा या नहीं ?"

"हाँ, इस समय तो भर ही जायेगा," मैंने कहा।

रुपया लेकर वह धीरे धीरे चला गया। क्या वह जानता था कि यह रुपया उसे कितने बड़े हाथों से मिला है?

पर इस घटना से ऐसा लगता है कि इस दुनिया में सभी के आँखों के आँसू नहीं पोंछे जा सकते। यदि कोई अपने जीवन को दूसरे के आँसू पोंछने में ही लगा दे तो इस प्रकार एक क्या सहस्त्रों जीवन आँसुओं में डूब जायेंगे, पर संसार के आँसू नहीं पुछ सकते।

फिर हम चले आये।

× × ×

आजकल डा० रमेश "अजान की आवाज" एक छोटा उपन्यास लिख रहे हैं। उन्होंने मुझे उसका कथानक सुनाया था। कथानक में बहुत जान है। पूरे उपन्यास में उन्होंने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है कि नारी के जीवन में शरीर का सम्बन्ध ही सब कुछ नहीं, उसके मन, प्राण और जीवन का सम्बन्ध शरीर के सम्बन्ध से बहुत ऊँचा है। यदि कोई नारी पूर्ण मन और प्राणों से किसी व्यक्ति को अपने को देना चाहती है तो वह इसीलिये त्याज्य नहीं कि वह पहले किसी को शरीर दे चुकी है। मैंने उनसे कहा कि भाई, इसका समर्पण इस प्रकार करदो To the abducted women. उन्हें यह काफी पसंद आया है। इसके पूरे हो जाने पर इसके प्रकाशनके लिये कुछ प्रबन्ध करना होगा।

× × ×

मिस कैंप से अब कभी कभी काफी बातचीत हो जाती है। हिन्दी में उनके पढ़ने की गति पहले से बढ़ गई है। उच्चारण भी पहले से ठीक होगया है। हाँ, मैंने उनको यह सुझाया था कि आप यहाँ प्रयाग में हैं तो यहाँ के बड़े बड़े कलाकारों से मिल लीजिये और उनका एक एक इन्टरव्यू अपनी Slovin भाषा में लिखकर अपने देश के पत्रों में भेजिये और इसमें मैं आपकी आवश्यक सहायता करूंगा। उन्हें यह सुझाव पसन्द आया। यदि हो सका तो उनकी इस Series का आरम्भ श्रीमती महादेवी जी से ही होगा।

एक दिन मैं उन्हें महादेवी जी की रहस्यवादी प्रणयानुभूति के विषय में कुछ बतला रहा था तो वे बोलीं, "अंग्रेजी में सबसे बड़ा रहस्यवादी कवि william Blake है। उन्होंने उसके Works का संग्रह मुझे पढ़ने को दिया है। कहीं-कहीं Blake के अपनी ही कविता के साथ Illustrations भी हैं। मैंने Blake की कवितायें पढ़ीं। पढ़ कर मुझे तो ऐसा लगा कि उनका रहस्यवाद का Conception वह नहीं, जो हमारे यहाँ है। उनके यहाँ प्रकृति की ओर थोड़ा सा भी Devotional attitude रहस्यवाद के अन्तर्गत आ जाता है कदाचित्।

एक दिन वे मुझसे पूछने लगीं, "तुम क्या करोगे रशन पढ़ कर" मैंने कहाँ, "मेरी हार्दिक इच्छा रशा जाने की है। क्या आप मेरी इस ओर कुछ सहायता कर सकती हैं?" बोलीं, "आप हमारे देश चलिये। वहाँ मैं इतना कर सकती हूँ कि जब तक आप वहाँ रहेंगे आप Yugoslav Gov. के अतिथि बन कर रह सकेंगे।" अब वे भी मुझे Russian भाषा जल्दी जल्दी पढ़ाना चाहती हैं। उन्होंने मुझे घर पर आगे पढ़ने के लिये एक पुस्तक दी है। उसे मैं पढ़ रहा हूँ।

... ...

आज संध्या को महादेवी जी से फिर भेंट हुई थी। आज वे प्रसन्न थीं। ऐसा लगता था जैसे अब वे पूर्णतया स्वस्थ हो गई हों। एक दो दिन में वे देहली जाने वाली हैं। प्रांतीय गवर्नमेंट ने संसद को कुछ देने का बचन तो दिया है, पर क्या और कैसे दिया जायगा और कब, यह कुछ नहीं कहा जा सकता।

'पंत' जी ने संसद और लोकायन के मिलाने की बात फिर उठायी है, पर महादेवी जी कह रही थीं कि भाई, हमारी और उनकी योजना मेल नहीं खाती। वहाँ लोकायन में तो एक रंगमंच रहेगा, एक संगीत सिखाने वाला रहेगा, एक नृत्य सिखाने वाला रहेगा, अभिनय हुआ करेगा, दिन रात लड़के लड़कियों का रिहर्सल चला करेगा, हम तो ऐसी जगह थोड़ी सी देर भी नहीं ठहर सकते। हमारे यहाँ जिस दिन

ऐसा होने लगा कि उसी दिन हम तो अपना बिस्तर उठाकर चल देंगे। इस दृष्टि से तो हम पुरातनवादी हैं। यहाँ प्रयाग में इतने संगीत-सम्मेलन होते हैं, हम कहीं कभी नहीं जाते। यदि किसी को हमें महान् दंड देना हो तो वह हमें ऐसी जगह बिठा दे। कहीं किसी पूजा के से वातावरण में शान्त संगीत हो रहा हो, तो कुछ अच्छा भी लगता है। 'पंत' जी तो उदयशंकर के कला-केन्द्र में रह चुके हैं। उनसे तो यह सब निभ जाता है, पर हम से नहीं हो सकता। मैथिलीशरण जी गुप्त हैं। वे तो कह रहे थे कि संसद वाले मंदिर पर एक टीन डलवा दीजियेगा। मैं तो जब आया करूंगा तो वहीं रहा करूंगा। अभिनय और रंगमंच की बात सुनकर वह भी चुप रह गये। हमारे तो साथी भी हमारी ही तरह पुरातनवादी हैं।"

इसी बीच रघुवंश जी तथा बेलजियम के हिन्दी रिसर्च स्कालर श्रीयुत कैमिल बुल्के आगये और थोड़ी ही देर बाद पं० इलाचन्द्र जी जोशी भी। थोड़ी ही देर पहले महादेवी जी मुझे एक पत्र लेकर श्री बुल्के के पास भेज रही थीं, पर आज वे दो महीने बाद स्वयं ही खिंच आये। आज दोपहर से वे उनके पास पत्र भेजने को सोच रही थीं। व्यक्ति के सच्चे संकल्प में अवश्य ही बल होता है। आप तो संकल्प की शक्ति में विश्वास भी रखते हैं। महादेवी जी कोई Positive विश्वास तो नहीं रखतीं, पर उनकी बहुत सी बातों से ऐसा पता अवश्य लगता है कि उनके संकल्पों में बल है।

श्री बुल्के पश्चिमी यूरोप की लगभग सभी भाषायें जानते हैं। Latin और Greek का उन्हें विशेष ज्ञान है। भारतवर्ष में वे बहुत वर्षों से हैं। Missionary के रूप में काम करते हैं। हिन्दी में उन्होंने इलाहाबाद यूनिवर्सिटी से एम० ए० किया है। जर्मनी में दो वर्ष दर्शन का अध्ययन किया है। फ्रेंच Prose और जर्मन Poetry की वे बहुत प्रशंसा कर रहे थे। वे कह रहे थे कि Germans मित्र बहुत अच्छे होते हैं। इस पर मैंने उनसे पूछा कि यह बात तो Contradictory है कि जब वे मित्र

बहुत अच्छे होते हैं तो वे इतने निष्ठुर क्यों होते हैं। इस पर वे बोले, "सचमुच वे मित्र बहुत अच्छे होते हैं, पर वे अपने राष्ट्र की तुच्छता सहन नहीं कर पाते। जहाँ उनकी राष्ट्रीय भावना को चोट पहुँचती है, वहीं वे निष्ठुर हो जाते हैं। उनका देश सबसे अच्छा है, उनका देश महान है, यही उन्हें अच्छा लगता है। एक बार एक जर्मन से मेरी बातचीत हुई। उसने पूछा, "आप कहाँ के रहने वाले हैं?" मैंने कहा, "मेरा तो एक छोटा सा देश है—वेलजियम।" तो वह गर्वपूर्ण स्वर में बोला, "हाँ, हम समझते हैं।"

इस प्रकार आठ साढ़े आठ बजे तक हम बैठे रहे। चाय पी और महादेवी जी के विशेष आग्रह से श्री बुल्के को एक परावठा भी खाना पड़ा।

श्री बुल्के कह रहे थे कि यहाँ के व्यक्ति जब एक जगह मिल जाते हैं तो और जगह की तो बात छोड़िये Library में भी जोर जोर से बातें करते हैं। मैं एक कान से तो कम सुनता ही हूँ; तब तो ऐसा लगता है अच्छा होता दूसरे कान से भी कुछ कम सुनता होता। इसके लिये वे कलकत्ते की Royal Asiatic Society की प्रशंसा कर रहे थे कि वहाँ के शांत वातावरण में बैठना बहुत अच्छा लगता है। महादेवी जी भी कह रही थीं कि "रायल एशियाटिक सोसाइटी' में जाकर तो हमें भी प्रसन्नता हुई।"

हम लगभग दो घन्टे बैठे रहे। मैं श्री बुल्के को नाम से तो जानता ही था, पर वैसे कभी परिचय नहीं हुआ था। उन दो घन्टों में भी परिचय की बात बिल्कुल नहीं उठी। वास्तव में देखा जावे तो परिचय की बात बड़ी ही महत्वपूर्ण है। विदेशों में यह प्रतिदिन की सभ्यता का अंग समझा जाता है, पर भारतवर्ष में ऐसा बिल्कुल नहीं। मैंने श्री बुल्के के साथ एक टेबिल पर बैठ कर चाय पी तथा खाया पर हमारा एक दूसरे से परिचय नहीं हुआ। महादेवी जी के यहाँ से लौटने पर जब एक चौराहा आया और हम बिदा लेने लगे तो श्री

बुल्के ने चुपके से मुझसे कान में पूछा, "आप का क्या परिचय है ?" मैंने अपना परिचय दिया। अपना पता २ एडमौस्टन रोड बताते हुये श्री बुल्के ने हम लोगों से बिदा ली।

••• ••• •••

आपने अपने स्वास्थ्य के विषय में कुछ नहीं लिखा, पर पत्र से ऐसा लगता है कि अभी आप अस्वस्थ ही चल रहे हैं। परसों मैं लखनऊ आ ही रहा था, पर कदाचित् अब आना नहीं होगा। परीक्षाओं के बाद ही आऊँगा। कल बँधा बधाया बिस्तर खुल गया। परीक्षा का भय मेरे मन में बैठ गया है।

मैं तो स्वयं इस बात में विश्वास करता हूँ कि आदान-प्रदान की सफलता असफलता दूसरे पक्ष की स्वीकृति तथा अस्वीकृति पर ही निर्भर है। पर महादेवी जी अपनी ओर के आदान में दूसरे पक्ष की स्वीकृति की आवश्यकता नहीं समझतीं। जब ऐसी बात है तो फिर महादेवी जी के आदान-प्रदान किसी भी व्यक्ति के साथ बिना उसके जाने हुए भी चल सकते हैं।

विदेशों की अपेक्षा भारतीय समाज बहुत Rigid है। यह समाज व्यक्ति को इतना बाँध देना चाहता है कि उसके व्यक्तिगत पलों पर भी उसका अक्षुण्ण अधिकार हो। यही कारण है कि अपना समाज दो व्यक्तियों के सूक्ष्म सम्बन्धों पर भी अपनी मुद्रा लगा देने के पक्ष में है।

आपने चाय कम कर दी है। किस लिये ?

सश्रद्धा
शिवचन्द्र

५७

३० ए० बेली रोड
इलाहाबाद
१३।३।४८
रात्रि

आदरणीय 'मानव' जी,

इस समय मन बहुत भरा-भरा है, बहुत डूबा-डूबा-सुख में, उल्लास में, गर्व में। जीवन की समरसता में सुख की लहरें सी उठ खड़ी हुई हैं और उन्हीं पर पैरता हुआ मैं यह पत्र लिख रहा हूँ। सोचता हूँ क्या लिखूँ और कैसे लिखूं। वैसे तो महादेवी जी से मैं भी बीसियों बार मिला हूँ, दूसरों का मिलना भी देखा है, पर आज की भेंट का पूरा वातावरण मुझसे व्यक्त नहीं हो सकेगा। ऐसा मुझे विश्वास भी है और भय भी।

जिस दिन मिस पी० एम० कैंप से मेरी बातचीत भी नहीं हुई थी, उस दिन मैंने आपको लिखा था कि एक दिन मैं उन्हें श्रीमती महादेवी वर्मा से मिलाना चाहता हूँ। पर यह सुख का दिन इतनी जल्दी आ जायेगा इसकी मैंने स्वप्न में भी कल्पना नहीं की थी। यह मैं जानता हूँ कि इस दिन को इतनी जल्दी लाने में आपकी बड़ी भारी अव्यक्त प्रेरणा रही है। मेरे आपके सम्बन्ध ऐसे हैं कि यदि मैं शब्दों में अपना आभार व्यक्त करूं तो अच्छा न लगेगा। मैं जो कुछ कहना चाहता हूँ उसके लिये शब्द नहीं मिलते। मैं समझता हूँ, मौनता ही उसके लिये उपयुक्त अभिव्यक्ति है। मैं अभी महादेवी जी के यहाँ से सुश्री कैंप को उनके निवास-स्थान पर पहुँचा कर लौटा हूँ।

संध्या के बीत जाने पर जिस समय हलका-हलका अँधेरा हो चला था, उस समय हम उनके ड्राइंग रूम में पहुंच गये थे। आज वहाँ आत्माराम भी थे।

कमरे में जैसे ही हमने प्रवेश किया, महादेवी जी ने सोफे से उठ कर सुश्री केम्प का स्वागत आगे बढ़ कर किया। हम सामने वाले बड़े सोफे पर बैठ गये। बैठते ही मैंने सुश्री केम्प से अंग्रेजी में कहा।

"श्रीमती वर्मा ने भारतवर्ष की धरती पर अंग्रेजी न बोलने की प्रतिज्ञा ले ली है; पर यदि कभी वे किसी दूसरे देश गईं तो उसी देश की भाषा में बोलना चाहेंगी, आशा है आप को इसमें कोई आपत्ति न होगी।"

इसके बाद सुश्री केम्प अपनी टूटी-फूटी हिन्दी में जो समय के अनुसार तो बहुत अच्छी थी बोलने लगीं। उन्हें यह जानकर प्रसन्नता ही हुई।

महादेवी जी की बातों को मैं उनसे अंग्रेजी में Interpret कर रहा था। मैं महादेवी जी का Interpreter था यह कहते हुए तो मुझे भय लगता है, क्योंकि महादेवी जी को Interpret करना बहुत कठिन है। इसके बाद मैंने आत्माराम जी का Introduction कराया। परिचय के बाद महादेवी जी ने सुश्री केम्प से पूछा,

"आपको यहाँ इलाहाबाद में कैसा लगा?"

"अच्छा लगा," हिन्दी में ही जवाब देते हुये सुश्री केम्प ने कहा।

"आप तो हिन्दी बोल लेती हैं। आप जल्दी ही हिन्दी सीख लीजियेगा।"

"ऊं हूँ"

"मैं भी रशन भाषा सीखना चाहती हूँ।" मेरी ओर को संकेत करते हुए बोलीं, "मुझे तो यह सिखायेगा, पर पहले यह तुमसे सीख तो ले।"

"अच्छा।"

"दो ही ऐसे देश हैं जहाँ मैं जाना चाहती हूँ। रशा और चाइना।"

"रशा मैं समझी, पर चाइना क्यों ?" हिन्दी में सुश्री केम्प ने कहा। मैं स्वयं को उनका हिन्दी का गुरु कहते हुए भी लजाता हूँ। पर वे ठीक से हिन्दी समझ रही थीं और बोल भी रहीं थी, यह अप्रत्याशित ही था। बोल वे रहीं थीं और प्रसन्नता मुझे हो रही थी।

"चाइना की बड़ी पुरानी संस्कृति है।"

"पर चीन तो एक बहुत बड़ा देश है। आप उसके किस भाग में जायेंगी, और वहाँ तो Dialects भी बहुत हैं ?" मिस केम्प ने अँग्रेजी में कहा।

जहाँ तक हो सकेगा सभी जगह। भारतवर्ष भी तो बहुत बड़ा देश है और यहाँ भी तो बहुत सी Dialects हैं," महादेवी जी बोलीं। यह बात यहीं समाप्त हो गई। धर्म पर बात चल पड़ी। किसी ने उनसे पूछा, "आपका क्या धर्म है ?"

"कोई नहीं !"

"तो आप इसमें विश्वास करती हैं कि धर्म अफयून है ?" आत्माराम जी ने पूछा।

"बिल्कुल ऐसे नहीं पर कुछ ऐसे ही। धर्म अफयून है पर यह आवश्यक नहीं कि प्रत्येक के साथ यह हो ही।"

"तो आप दर्शन से क्या समझती हैं !"

"Common man को ठीक से समझना ही दर्शन है।"

"हाँ, Common man की Feelings के Sum total से ही तो दर्शन का निर्माण होता है," महादेवी जी ने कहा।

"क्या आप समझती हैं कि परिवार Abolish हो जाना चाहिये !" आत्माराम जी ने पूछा।

"हाँ, यदि परिवार समाज को दबाता है (Suppresses) तो इसे समाप्त कर देना चाहिये।"

'प्रत्येक घर का अलग-अलग किचिन हो, और सब सामान जुटाये यह सब ठीक नहीं। इसमें बड़ा भारी समय का Waste होता है।"

"किचिन सिस्टम नही होना चाहिये," आत्माराम जी ने कहा। इस पर वे बोली, "हाँ बात तो ठीक है, पर यदि ऐसा प्रबन्ध हो सके। सिद्धान्त बना देना आसान है, पर उनके प्रयोग बहुत कठिन हैं।"

"मैडम आपकी Hobby क्या है ?"

"कोई नहीं ?" उन्होंने संक्षेप में उत्तर दिया।

"अरे भाई, इतनी दूर से यहाँ आई हैं यह क्या कम Hobby है," महादेवी जी ने कहा।

"नहीं मैं किसी Hobby मे विश्वास नहीं रखती। जब कोई प्रतिदिन की बात हो जाती है तो यह भी भार ही लगने लगती है," सुश्री कैंप ने कहा।

"इनको पढ़ने की Hobby है। ये Eastern Europe की सभी Slovin भाषाये जानती हैं। इसके साथ अँग्रेजी और फ्रेंच बोल सकती हैं। ग्रीक और लेटिन का अच्छा ज्ञान है और जर्मन भी जानती है," मैंने कहा।

"जानती तो सभी हैं। पूछना तो यह है कि क्या नहीं जानतीं?" महादेवी जी ने कहा। मैंने महादेवी जी के हास्य को उन्हें समझाया, समझ कर बोलीं हँसते हुए, "सचमुच, में कुछ भी नहीं जानती।"

"पर रशन भाषा तो संस्कृत से कुछ मिलती है ? मिलती है या नहीं ?" महादेवी जी ने पूछा।

"हाँ बहुत जगह मिलती है। संस्कृत की तरह लगभग सभी क्रियायें अन्त में त् मे समाप्त होती हैं जैसे भवति, भवतः, भवन्ति। उत्तम पुरुष मे जैसे संस्कृत में क्रियाओं में म् हो जाता है, जैसे भवामि भवाव भवामः ऐसे ही रशन में उत्तम पुरुष के साथ क्रियाओं में म् अन्त मे

आजाता है। बहुत से शब्द भी मिलते-जुलते हैं जैसे द्वार के लिये ड्वेर, दिन के लिये द्येन, दान के लिये Dan इत्यादि। मैंने कहा।

"तब तो हमें जल्दी ही आ जानी चाहिये, "महादेवी जी ने कहा।

"आप तो संस्कृत जानती हैं। संस्कृत से तो कठिन यह नहीं। इसकी लिपि तो अँग्रेजी जैसी ही है। भाषा कुछ अँग्रेजी से कठिन है" मैंने कहा और फिर सुश्री केंप की ओर मुड़ते हुए बोला, "महादेवी वर्मा ने अपनी एम. ए. डिग्री संस्कृत में ली है और प्राकृत पर भी आपका अच्छा अधिकार है। वैसे गुजराती और बंगला भी जानती हैं और हिन्दी की तो आप कवयित्री हैं ही।"

"हूँ, अच्छा।"

"महिला विद्यापीठ की प्रिंसिपल हैं।"

"यह क्या है?" मिस केंप ने पूछा।

"यह महिलाओं के लिये यूनिवर्सिटी की तरह ही शिक्षा-संस्था है। जब हमने अपना एम. ए. संस्कृत में पास किया था तो हमने संस्कृत भी अँग्रेजी के माध्यम से पढ़ी थी। जब हम एम. ए. पढ़ कर बाहर आये, तो मन में ऐसा था कि एक ऐसी संस्था हो जो हिन्दी के माध्यम से शिक्षा दे। उस समय तो अँग्रेजी के विरोध में हिन्दी की बात कहना बहुत बुरा समझा जाता था। तभी से इस संस्था में हिन्दी माध्यम द्वारा शिक्षा दी जा रही है," महादेवी जी ने कहा।

"इसमें कहाँ तक शिक्षा दी जाती है।"

"एम. ए. तक।"

"क्या क्या विषय हैं?"

"साहित्य, इतिहास दर्शन, तथा संगीत चित्रकला इत्यादि।"

" आपको Text Books मिल गईं?"

"हाँ कुछ तो मिल गईं, कुछ हमने लिखीं तथा दूसरों से लिखवायीं।"

"आप यहाँ कितने वर्षों से हैं?" मिस कैंप ने पूछा। महादेवी जी के बजाय मैंने उत्तर देते हुए कहा, "चौदह वर्ष से।"

"और यह शिक्षा-संस्था कब से है?"

"बाइस वर्ष से," महादेवी जी ने उत्तर दिया।

"यह तो बहुत अच्छा है। इसके विषय में मुझे बिल्कुल पता नहीं था। इस विषय में मैं और भी जानना पसन्द करूंगी।"

"क्यों नहीं,"

"इसमें कितने विद्यार्थी हैं?"

"चार सौ। पर सभी परीक्षायें अखिल भारतीय हैं और प्रतिवर्ष १५०० के लगभग लड़कियाँ इसमें बैठती हैं।"

"इसमें लड़के नहीं पढ़ते?"

"नहीं। उत्तरी भारत में स्त्रियों की यह सबसे पहली यूनिवर्सिटी होगी, इसका यूनिवर्सिटी-एक्ट बन रहा है," मैंने कहा।

"वास्तव में यह है तो अब भी यूनिवर्सिटी ही; पर नाम से अभी यूनिवर्सिटी नहीं है," आत्माराम जी ने कहा।

इसके बाद महादेवी जी ने उनसे चाय के लिए पूछा

"चाय तो पियोगी न?"

'ऊं, हूँ' हिन्दी में ही संकोच के साथ उत्तर देते हुए उन्होंने कहा। महादेवी जी चाय के लिये अन्दर जाने लगीं। मैं उठ कर उनके पास गया और बतलाया कि सुश्री केम्प बिना चीनी और बिना दूध की चाय पीती हैं।"

इस बीच जितनी देर में महादेवी जी अन्दर से लौटीं मैंने सुश्री केम्प को उनके कमरे के चित्र दिखलाए।

१. यह बङ्गाल के अकाल का चित्र है। इसमें दिखाया है कि अन्नपूर्णा और शस्य श्यामला भूमि के निवासी भोजन की कमी के कारण अस्थि-पंजरों में परिणत हो गये हैं।

२. यह दीप शिखा है। इसमें उन्होंने अपने को दीप शिखा की तरह Devotional mood में व्यक्त किया है।

३. यह उषा का चित्र है। रात विदा ले रही है, उषा जा रही है। आप इसके Colouring को कैसा पसन्द करती हैं?"

"It is very fine and delicate." उन्होंने कहा।

४. यह कादंबिनी है। इन्द्रधनुषी इसके परिधान हैं और विद्युत इसने अपने प्राणों में छिपा रखी है।

५. यह हिमालय है-शांत और महान् हिमालय।

इसके बाद महादेवी जी आ गईं। कुछ मिनटों बाद आत्माराम जी आए। उनके हाथ में दीपशिखा के सभी Original चित्र थे। उन्होंने उन्हें सामने वाली मेज पर रख दिया। इन सब चित्रों को वे इससे पहले दीपशिखा में देख चुकी थीं। पर इस समय उन्होंने फिर सबको एक एक कर देखा। उन छपे हुये चित्रों से ये Original इतने अधिक सुन्दर हैं कि 'दीपशिखा' में देख लेने के उपरान्त भी उन्हें देखना नया सा ही लगता है। मैंने उन्हें प्रत्येक चित्र का थोड़ा-थोड़ा भाव बतलाया।

"घिर गई घटा अधीर" चित्र पर वे पूछने लगीं, "यह क्या है? यह घटा कैसे है!"

"ये सभी चित्र Symbolic हैं। हमारे यहाँ घटा स्त्रीलिङ्ग है। इसीलिये इसमें घटा को श्याम परिधानों से युक्त नारी चित्रित किया है।

"पर इस पर लिखी कविता से इसका क्या सम्बन्ध है?"

"प्रत्येक कविता की किसी एक विशेष पंक्ति को लिया गया है और उसे चित्र में Illustrate किया गया है," महादेवी जी ने कहा।

फिर उन्होंने सभी चित्र देखे। उन्हें सबसे अच्छा चित्र "सब बुझे दीपक जला लूं" लगा। और जो चित्र उन्हें अच्छे लगे वे ये हैं:

१. तुम्हारी बीन ही में बज रहे हैं बेसुरे सब तार।

२. रे, तू धूल भरा ही आया।

३. धूप सा तन दीप सी मैं। इस चित्र में नारी की मुद्रा उन्हें बहुत पसन्द आई। मैंने कहा, "यह भारतीय नृत्य की एक मुद्रा है।"

"अच्छा!" उत्सुकता पूर्वक उन्होंने कहा, जैसे भारतीय नृत्य के विषय में जानने की इच्छा उनके मन में जगी हो।

चौथा चित्र उन्हें वह पसन्द आया जिसमें एक स्त्री वीणा पर अँगुली रखे उसके तार मिला रही है।

पाँचवा चित्र जो उन्हें बहुत अच्छा लगा वह था जिसमें नेत्रों में केवल आँसू उमड़े हुये हैं, बहे नहीं। उसे देख कर कहने लगीं, "Such a calm face and tears."

६. जिस चित्र में हाथ मृणाल तंतुओं तथा काँटों से बँधे हुए हैं, वह बहुत पसन्द आया। यह चित्र आपको भी बहुत पसन्द है न?

फिर इतने में चाय आ गई। हम लोग चाय पीने लगे। मैंने मिठाई और नमकीन की ओर संकेत करते हुए कहा,

"आप इन चीजों के नाम जानती हैं?"

"नहीं।"

"इसे दालमोठ कहते हैं। आप दाल तो जानती हैं न?"

"हाँ,"

"बस उसी के आगे मोठ और लगा दीजियेगा—दाल मोठ।"

"और यह पेठा है। हमारे यहाँ एक वेजिटेबिल पैदा होती है, उसी से यह मिठाई बनाई जाती है। इसमें बहुत रस है, आपको यह बहुत पसन्द आयेगी।"

"नागर तुम को सब कुछ बहुत जल्दी सिखा देगा," महादेवी जी ने हँसकर कहा।

"यह तो मैं जानती हूँ कि ये मुझसे अच्छा पढ़ाते हैं," मिस केम्प ने कहा।

चाय पीने के उपरान्त, मैंने कमरे में रखी हुई मूर्तियों को बताते हुए कहा, "ये भगवान कृष्ण हैं। ये महात्मा बुद्ध हैं। ये महात्मा

गाँधी हैं।" कोने की ओर मुड़ते हुए मैंने कहा, "ये रवीन्द्रनाथ टैगोर हैं, ये पं० जवाहरलाल नेहरू। ये हिन्दी के महाकवि प्रसाद हैं। ये अब जीवित नहीं। ये देवी सरस्वती हैं।" ऊपर दीवार में लकड़ी के standपर रखी हुई प्रतिमा की ओर संकेत करते हुए मैंने कहा, "वे ईसा मसीह हैं।" यह देखकर उन्होंने तुरन्त महादेवी जी से प्रश्न किया,

"तो आप Theosophist हैं?"

"नहीं"

"तो फिर? इन सबसे तो यही पता लगता है।"

"नहीं, केवल इतना ही कि कोई एक ऐसा विशेष धर्म नहीं जो मुझे अच्छा लगता हो," महादेवी जी ने कहा।

"ठीक ऐसा ही मैं भी समझती हूँ।"

"आदमी को केवल अच्छा होना चाहिये, मैं तो इसी को धर्म समझती हूँ। यदि एक अच्छा आदमी हमेशा अच्छा रहता है तो मैं उसे धार्मिक समझती हूँ" महादेवी जी ने कहा।

"बिल्कुल ठीक।" जैसे महादेवी जी ने मिस केम्प के मन की बात कह दी हो।

इतने में भक्तिन चाय देने आई। मैंने उसकी ओर संकेत करते हुए बताया, "यह महादेवी जी की सबसे पुरानी परिचारिका है। श्रीमती वर्मा ने अपने 'अतीत के चलचित्रों' में इसका Pen sketch दिया है। एक बार एक हिन्दी के बड़े प्रसिद्ध कवि श्रीमती वर्मा से मिलने आये थे। उन्होंने इससे कहा कि श्रीमती वर्मा ने तो भक्तिन, तुझे अमर कर दिया। इस पर इसने सहज भाव से उत्तर दिया, "तभी तो मैं नहीं मरती।"

"बहुत सुन्दर जवाब। बहुत सुन्दर जवाब।" हँसते हुए सुश्री केम्प ने कहा

"जवाब तो वह हमेशा ही सुन्दर देती है।" इस बीच भक्तिन कुछ कह रही थी। मैंने महादेवी जी से पूछा, भक्तिन क्या कह रही

है तो उन्होंने बताया कि वह यह कह रही है, "इनकी चाय में तो कुछ भी खर्च नहीं होता, न चीनी न दूध।"

"हाँ, हाँ," कहकर मिस केम्प को बहुत हँसी आई।

"स्मृति की रेखाओं में इसका मिसेज़ वर्मा द्वारा खींचा हुआ रेखा-चित्र भी है। इन दोनों पुस्तकों में महादेवी जी के संस्मरण हैं।"

"क्या बचपन के?"

"पूरे जीवन के हैं। उम्र की कोई ऐसी सीमा नहीं। मैं आपको वह पुस्तक दिखाऊंगा," मैंने कहा।

"आपको कविता अच्छी लगती है?" महादेवी जी ने पूछा।

"हाँ, बहुत अच्छी लगती है।"

"केवल अच्छी ही नहीं लगती, बल्कि आप तो लिखती भी हैं," मैंने कहा।

"अच्छा, तब तो बहुत अच्छी बात है।"

"पर मैं पांच साल में एक कविता लिखती हूँ।"

"पर आप तभी तो लिखती हैं जब आपका मन इतना उमड़ आता है कि आपको ऐसा लगने लगता है कि अब बिना लिखे नहीं रहा जा सकता।"

"हूँ।" सुश्री केम्प ने कहा।

"तब तो लिखा ही जाता है और तब अच्छा भी लिखा जाता है और जल्दी ही लिख भी लिया जाता है," महादेवी जी ने कहा और फिर अपने चित्रों के लिये बताया कि इन चित्रों में कोई भी ऐसा चित्र नहीं जिसमें बीस मिनट से अधिक लगे हों। इसके बाद उठ कर अन्दर गईं।

मुझसे इस बीच सुश्री केम्प कहने लगीं, "हमको बहुत देर तो नहीं हो गई। मैं तो यही भूल गई कितना समय बीत गया और श्रीमती वर्मा के बैठने की कितनी सीमा है, मैं यह भी नही जानती।"

"नहीं, आप चिन्ता न कीजिये। वे बहुत बैठने वाली हैं और उन्हें तो आपके साथ अच्छा ही लग रहा है।"

"यह तो मेरा सौभाग्य है" उन्होंने कहा। इतने में महादेवी जी आ गईं। हम तीन चार मिनट ही और बैठे कि मिस केम्प विदा लेने के लिये उठीं। महादेवी जी ने उनकी ओर बढ़ कर उन्हें अपनी 'यामा' और 'अतीत के चलचित्र' भेंट किये। सुश्री केम्प गद्गद् हो गईं। अपलक और प्रसन्न मुग्ध नेत्रों से केवल उनकी ओर देखती रह गईं। उनके मुँह से एक भी शब्द नहीं निकला, जैसे अनुभूति निश्चल हो गई हो।

मैंने उन्हें छोटी वाली पुस्तक का नाम बतलाया "यह 'अतीत के चलचित्र' है। और बड़ी की ओर संकेत करते हुये कहा, "इसका नाम आप स्वयं पढ़िये।" उन्होंने पढ़ा "या...मा..."और फिर जैसे वे आत्म-विमुग्ध अवस्था से आत्म-चेतना की अवस्था में आई हों, इस प्रकार बोलीं।

"Mrs. Verma I will say that it is by accident that the best poem in our literature is 'Yama' written by Igniyato-witch."

"आप के यहाँ 'यामा' का क्या अर्थ है," मैंने पूछा।

"The dark pit."

"और हमारे यहाँ इसका क्या अर्थ है!" मैंने पूछा। मैंने उन्हें इसका अर्थ कई दिन पहले बताया था। वे जैसे भूल गई हों, ऐसे उन्होंने माथे पर अंगुली रखी। एक क्षण भर को कमरे में शांति रही और फिर उनके मुँह से एकदम एक शब्द निकला Night. सब के मुखों पर प्रसन्नता की स्मिति की रेखायें दौड़ गई। और मेरा मुख उल्लास और गर्व से खिल उठा। हम कमरे के बाहर निकले। महादेवी जी ने मुझसे पूछा "कैसे जाओगे?"

"सिविल लाइन्स से तांगा ले लेंगे," मैंने कहा।

"नहीं, मैं यहीं मँगाये देती हूँ न।" मैंने यह बात सुश्री कैंप से कही और उनको अन्दर चलने के लिये कहा। वे अन्दर जाकर बेंत वाली कुर्सी पर बैठ गईं। अब उन्होंने सामने दीवार के Paintings पर दृष्टि डाली और पूछा। आत्माराम जी ने बतलाया, "यह बुद्ध निर्वाण है। यहाँ राजकुमार बुद्ध अपनी पत्नी और अपने नवजात शिशु के अन्तिम दर्शन कर रहे हैं।" "और ऊपर ? .." महादेवी जी ने बतलाया, "ये सब लोग भगवान बुद्ध के जन्म-दिवस का उत्सव मना रहे हैं।"

मिस केंप ने अपना चमकदार लाल फ्रेम का चश्मा निकाला। उसे लगा कर पास आकर देखा। बोलीं, "बहुत अच्छा है। बड़ा परिश्रम करना पड़ा होगा।"

हरी साड़ी में सुनहरे बालों वाला उनका श्वेत मुख बहुत अच्छा लग रहा था और उस पर लाल फ्रेम का चश्मा उनके मुख के गांभीर्य तथा सौंदर्य को भी बढ़ा रहा था।

चित्र में केले के पेड़ की ओर संकेत करते हुए आत्माराम जी ने कहा, "आप इस वृक्ष को जानती हैं ?"

"हाँ, यह केले का पेड़ है।"

"यह हमारे यहाँ बड़ा auspicious समझा जाता है।"

"अच्छा ! हमारे यहाँ नहीं होता।"

"आपको कैसा लगता है ?"

"मुझे बहुत अच्छा लगता है। एक बार मैंने इसे बेलग्रेड में खरीदा था। एक रुपये में एक मिला था। और इसे खरीदना Luxury समझा जाता था। मैं केवल तीन ही खरीद सकी।" वे इसी से संबधित कोई बात सुना रही थीं कि इतने में बिजली का Fuse उड़ गया और कमरे में घोर अन्धकार छा गया। आज तो वैसे भी अन्धेरी रात थी। महादेवी जी उसी अंधकार में अन्दर चली गईं। मैंने उन्हें जाते नहीं देखा, पर थोड़ी देर बाद वे एक हाथ में Candle लिये तथा दूसरे

हाथ से उसकी लौ को हवा से बचाते हुए अन्धकार को चीरती हुई धीरे धीरे अन्दर आईं और उन्होंने अपनी जलती हुई मोमबत्ती भगवान बुद्ध के चरणों में रख दी। इतने में ताँगे वाला ताँगा ले आया था। हम कमरे से बाहर निकले। कमरे से बाहर निकलते ही अत्यंत भावपूर्ण ढङ्ग से सुश्री केंप ने कहा : If I Forget every thing, I would never forget this Candle flame. मैं सोचता हूँ उस समय इससे सुन्दर Remark कदाचित् ही कोई हो सकता था। बाहर तक महादेवी जी आईं। सुश्री केंप ताँगे में बैठ गईं। महादेवी जी ने पूछा,

"अच्छा अब कब आओगी?"

"जब आप आने को कहेंगी।"

फिर मेरी ओर मुड़ कर महादेवी जी ने कहा, "अब इनको किसी दिन साहित्यकार संसद् लाना। नाव में चलेंगे।" मैंने सुश्री केम्प को समझाया।

बड़ी ही प्रसन्नता से हँसते हुए मिस केम्प ने फिर कभी आने के लिये कहा। महादेवीजी ने अपने दोनों हाथ उनके हाथों में डाल दिये। यदि उस समय कोई कैमरामैन होता और उस समय का Snap ले लिया गया होता, तो ऐसी प्रसन्न मुद्रा में विदा की ऐसी सुन्दर अभिव्यक्ति कम ही चित्रों में मिल पाती। हमारे तो मन में और विदाओं की तरह महादेवी जी की यह विदा भी अंकित हो गई है। भारतीय विदा तो विषादपूर्ण होती है और पाश्चात्य समाज में विदा हँस कर दी जाती है। यह इसी प्रकार की एक बहुत सुन्दर विदा थी। मैं सुश्री केम्प के पास बैठ गया। तांगे वाले से चलने के लिये कहा और सबने सब को हाथ जोड़ दिये।

कुछ दूर तक हम किसी से कुछ भी नहीं बोले। थोड़ी देर बाद जैसे स्वप्न से जगी हों इस प्रकार सुश्री केम्प ने पूछा, "मुझे तो समय का भी ध्यान नहीं रहा।"

"अधिक नहीं, पौने नौ बजे हैं।" मैंने कहा और फिर महादेवी जी के लिये कहने लगीं, "She is so sweet. And she is very simple and most unassuming. I liked her very much" उन्होंने कहा, फिर रास्ते में मुझसे पूछने लगीं, "To what political party does she belong ?"

"किसी भी राजनीतिक संस्था से उनका सम्बन्ध नहीं," मैंने कहा, "और उनका ऐसा विचार है कि कलाकार राजनीति में अपने व्यक्तित्व को नहीं मिटा सकता। फिर भी किसी भी ऐसी संस्था से जो देश के कल्याण की ओर उन्मुख है, उनकी सदैव सहानुभूति रही है और रहती है। सन् ४२ के आन्दोलन को कुचलने के लिये जब ब्रिटिश पुलिस ने यहाँ के आस पास के गाँवों को नष्ट कर दिया था, तो उनके व्यथित परिवारों को इन्होंने निरन्तर सहायता पहुँचाई है, यह इसलिये नहीं कि वे काँग्रेस की सदस्या थीं, बल्कि इसलिये कि व्यथितों को किसी प्रकार भी सहायता पहुँचाना वे अपना धर्म समझती हैं।"

क्योंकि महादेवी जी ने अपनी बातचीत के बीच भारतीय स्वतन्त्रता के विषय में कहा था, "हमको स्वतन्त्रता मिल तो गई पर कोई महान् क्रान्ति नहीं हुई। जब तक कोई ऐसी क्रान्ति नहीं होगी, तब तक यहाँ अमीर गरीब के बीच का इतना महान् अन्तर समाप्त नहीं होगा।" इसी से उन्होंने कहा, "But she has her sympathies with the Leftists, because she was talking of revolution."

"वे सामाजिक और आर्थिक क्रान्ति की बात कर रही थीं, राजनीतिक क्रान्ति की नहीं।" मैंने उत्तर दिया। सुश्री केंप ने कहा।

"I will never forget this evening but all its credit goes to you Mr. Nagar; and I am very grateful to you that you have not lost your patience with an old lady like me. Don't you feel boring with me—an old lady ?"

नहीं, नहीं, आप कैसी बात कर रही हैं! मैं तो इसे अपना सौ-

भाग्य समझता हूँ कि मैं आप के सम्पर्क में आया। आप को लगता है कि मुझे कष्ट हुआ है, पर मैं तो आपको अपने यहाँ के कलाकारों और उनकी कला से परिचय कराना अपना नैतिक कर्तव्य और गौरव-पूर्ण अधिकार समझता हूँ।"

"But Mr.Nagar, will you tell me what you intend to do after your study."

"अध्ययन के उपरान्त मैं विदेशों में भ्रमण करना चाहता हूँ। रूस के विषय में पढ़कर मुझे ऐसा लगा है कि यह सब से रहस्यपूर्ण देश है। इसलिये सर्व प्रथम मैं वहीं का भ्रमण करना चाहता हूँ और फिर मैं वहाँ के निवासियों, उनकी कला और उनकी संस्कृति के विषय में कुछ लिखना चाहता हूँ।"

"But in what language will you write—in Gujrati, in Hindi or in English ?"

"मैं हिन्दी में लिखूंगा।"

"Mr. Nagar, what is your age ?"

"इक्कीस वर्ष।"

"Considering your age you have written a lot, from which year are you writing ?"

"मैंने सोलह वर्ष की उम्र से लिखना आरम्भ किया था।"

"You have flowered earlier."

सुश्री केंप ने मुस्कराते हुए कहा और फिर श्रीमती वर्मा की उम्र पूछी।

"वे इस होली पर (२४ मार्च १९४८ को) ४१ वर्ष की हो जायेंगी। पर क्या मैं आपकी उम्र जान सकता हूँ ?"

"I am about 30."

"आप की जन्मतिथि क्या है ?"

"2nd August 1909."

अब घर आ गया था। हम ताँगे से उतरे। सुश्री केंप अपने बैग में से रुपया निकाल कर देने लगीं। मैंने कहा, "मुझे देने दीजिये।"

"No, you are my student".

"इस हिसाब से आप भी तो मेरी विद्यार्थिनी हैं। चलिए, किसी को भी नहीं देना चाहिये," मैंने हँसकर कहा। इस बात पर उन्हे भी हँसी आ गई। मैने यह बात हँसी मे ही कही थी पर वह सत्य ही हो गई। ताँगे वाले ने किसी से भी नही लिया। वह कहने लगा, "मै कुछ भी नहीं लूँगा, उन्होने मना कर दिया है।" तांगा चल दिया। एक क्षण के लिये मैं उदास सा हो गया। यह वही श्वेत घोड़े वाला तांगा था, जिसमें महादेवी जी हमेशा ही बैठती है। पर आज इसका हांकने वाला वह सफेद दाढ़ी वाला बूढ़ा न था। मैने देखा उसके बिना उस सफेद घोड़े की शोभा आधी रह गई थी।

मैं अन्दर कमरे मे गया। प्रकाश में "यामा" और "अतीत के चलचित्र" मैने उनके सामने रख दिये। उन्होने यामा का प्रथम पृष्ठ उलटा। उसके भीतर लिखा था : प्रिय बहिन, सुश्री पी० एम० केम्प को, सस्नेह, महादेवी वर्मा।" मैने उन्हें बतलाया कि इसमें लिखा है :

To, my dear sister Miss p. m. Kemp.

With love

Mahadevi verma.

Indeed, she is very sweet. She has got a very sweet and clear voice. I feel I would have spoken Russian as she speaks Hindi.

"वे सदैव ही ऐसी धारा-प्रवाह और स्पष्ट हिन्दी बोलती हैं।"

"ये देसांका मेक्सिजमोविच कौन हैं?" मैंने पूछा।

"She is the greatest living poetess of my country. She is my friend. I will show Mahadevi Verma's book to her.

"अवश्य दिखलाइये, यामा तो आप के पास है ही, और जब आप युगोस्लेविया जाने लगें तो 'दीपशिखा' मुझसे ले लीजिये।"

"Yes, I will like it."

फिर उन्होंने डा० हसन से अपने वहाँ जाने की बात कही। डाक्टर हसन ने पूछा, "मैं तो उन्हें जानता नहीं, पर वे आप को कैसी लगीं?"

"She is lovely"

"What do you mean by lovely ?" asked Dr. Hasan.

"She is lovely, not beautiful."

इस पर जरा मुस्कराते हुए डा० हसन ने पूछा,

"But what is the difference between lovely and beautiful."

"She is not fashionable, she is simple, lovely, I mean to say she has got a lovely soft serene and intelligent face."

महादेवी जी के लिये एक विदेशी के मुँह से इतने सुन्दर Tributes सुन कर किस हिन्दी भाषा भाषी को प्रसन्नता नहीं होगी ? आज मुझे प्रसिद्ध जापानी कवि डा० नागूची की बात याद आ रही है जिसने महादेवी जी से मिलने के उपरान्त किसी व्यक्ति के पूछने पर कि वे आप को कैसी लगीं, कहा था, "She is like the river Ganges"

डा० नागूची के Remark में प्राच्य दार्शनिकता तथा आध्यात्मिकता है, सुश्री केम्प के Remark में पाश्चात्य भौतिकता के दर्शन होते हैं। यदि इन दोनों Remarks को एक जगह मिला दिया जाये, तो मैं समझता हूँ थोड़े ही में महादेवी जी के बाह्य और आन्तरिक दोनों व्यक्तित्व आ जायेंगे।

उसी समय सुश्री केम्प ने 'यामा' में 'अपनी बात' की दो पंक्तियें पढ़ीं; "यामा में मेरे अन्तर्जगत के चार यामों का छायाचित्र है। ये याम दिन के हैं या रात के यह बताना मेरे लिये यदि असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है।" मैंने उन्हें इसका अर्थ समझाया। उसी समय घड़ी ने ९ बजाये। मैंने घर के लिये विदा ली।

घर पर आते ही मैं पत्र लिखने बैठ गया था और इस समय रात के तीन बजने वाले हैं।

सश्रद्धा

शिवचन्द्र

३० ए० बेलीरोड
इलाहाबाद
१६।३।४८

आदरणीय 'मानव' जी,

आप का १४। ३ का पत्र मिला।

धीरे धीरे बहुत सी घटनाओं से मेरा भी यह विश्वास कुछ दृढ़ सा होता जा रहा है कि आत्म-बल की और संकल्प बल की शक्ति महान् है। २१ ता० रविवार की संध्या को महादेवी जी ने सुश्री केम्प को नौका विहार के लिये निमंत्रित कर रखा है। मेरे मन में यह बात उठी थी कि उस संध्या को आप भी हमारे साथ होते तो कितना अच्छा लगता। अब तो आप होगें ही। होंगे न?

सुश्री केम्प आज रात को कलकत्ता जा रही हैं। वे वहाँ से रविवार को ही लौटेंगी। यदि किसी विशेष कारण वश वे न लौट सकीं तो तार से सूचना देने को कहा है। पर आप अवश्य आइये।

कलकत्ते से उन्होंने मेरे लिये एक अच्छी सी रशन डिक्शनरी तथा एक ग्रामर लाने के लिये कहा है। कितनी अच्छी हैं वे।

आज मैंने उनसे उनके यहाँ की महान् कवयित्री सुश्री टेसांका मेक्जिमोविच का चित्र माँगा। कहने लगीं, "दिखाऊंगी' पर इस समय तो यह समझ लो कि वे खूबसूरत तो नहीं हैं, पर बिल्कुल श्रीमती वर्मा जैसी हैं। उनका चेहरा बिल्कुल श्रीमती वर्मा से मिलता है और रंग तुम से।"

"क्या सभी महान् लेखिका श्रीमती वर्मा जैसी ही होती हैं?" मैंने हँसकर पूछा।

"क्यों!"

"मैंने पर्ल एस बक का चित्र देखा है। उनका चेहरा भी श्रीमती वर्मा से काफी मिलता है।"

"हाँ, चेहरा कुछ मिलता तो है पर (Pearl S. Buck) इनसे कुछ मोटी अधिक हैं," सुश्री केम्प ने कहा।

इसके बाद मैंने उनसे पूछा, "आपके देश में यदि कोई लड़की अविवाहित रहती है तो क्या समाज उसे आश्चर्यपूर्ण दृष्टि से देखता है ?"

"बिल्कुल नहीं।"

"पर हमारे यहाँ तो ऐसी लड़की बड़ी असाधारण समझी जाती है और लोग उसके बारे में बहुतेरी अफवाहें भी उड़ा देते हैं।

"ये अफवाहों वाली बात तो सभी जगह है।" इसके बाद उनसे भारतवर्ष में प्रचलित तथा उनके देश में प्रचलित विवाह प्रणालियों पर बातचीत हुई। इसी बीच में वे हँस कर कहने लगीं,

"क्या तुम मेरे विचार से आदर्श विवाह जानते हो ?"

"मैं जानना पसन्द करूँगा।"

"मेरे विचार से किसी भी (Ceremony) की आवश्यकता नहीं है और न मैं यही समझती हूँ कि दोनों व्यक्ति एक घर में ही रहें। बस केवल इतना हो कि वे स्वतन्त्रता से एक दूसरे से मिल जुल सकें। किसी भी प्रकार का बन्धन तो गति को कुण्ठित ही करने वाला है।"

"मैं भी बिल्कुल ऐसा ही चाहता हूँ।" मैंने कहा।

फिर मैंने अपना गीत "मुझे एक विश्वास मिला है।" का अनुवाद अंग्रेजी में सुनाया। उसका दूसरा (Stanza)

"चाँद मुझे मिल सका नहीं,
पर ज्योत्स्ना का उपहार मिला है,
फूल मुझे मिल सका नहीं,
पर मधुर गन्ध का प्यार मिला है।
मुझे प्राण में एक अपरिचित,
पुलकन का आवास मिला है।

सुन कर कहने लगीं It is a fine expression, you are romantic, Nagar.

फिर उनसे कोई मिलने आ गये। यह सुन्दर बातचीत यहीं समाप्त हो गई।

... ...

मैं लखनऊ अवश्य आता, पर यह समझ लीजिये कि मैं आ ही नहीं सका। आप आइये, मैं रविवार के प्रभात में प्रयाग स्टेशन पर आऊँगा।

... ...

कल मैं पूरे दिन भर और रात भर नहीं पढ़ सका। कल एक विशेष घटना हो गई। घटना तो सुख की है और हो सकता है कि वह इस शव-से जीवन में फिर जीवन ला दे, हो सकता है जो एक अध्याय समाप्त सा ही हो गया था और जिसके आगे अब उसमें और कुछ भी जुड़ने की सम्भावना न थी, उसका अब दूसरा अध्याय आरम्भ हो। वैसे तो इस घटना का सम्बन्ध जीवन से ही है, पर विशेषतया इसका सम्बन्ध अबसे लगभग चार साल पहले की एक घटना से है। अब तो मैं अपनी ओर से पहले किसी भी लड़की को पत्र नहीं लिखता, हाँ उत्तर दे देता हूँ। पर तब मैंने एक रात को एक पत्र कई बार लिखा और फाड़ा। फिर अन्त में लिख ही डाला। अगले दिन मैंने एकान्त में वह सुन्दर लिफाफा उनके सुन्दर हाथों में दिया। उनकी भ्रकुटि वक्र हो गई। उन्होंने अपने सुन्दर मुख को ऊपर उठाया जो क्रोध में और भी अधिक सुन्दर लग रहा था और दोनों हाथों से वहीं मेरे सामने पत्र को बिना पढ़े हुए ही उसके चार टुकड़े कर दिये और बिना कुछ कहे सुने वहाँ से चली गईं। पत्र तो मैंने उन्हें इसीलिये लिख कर दिया था कि मेरी उनकी एक साल की जान पहचान थी, बातें भी होती थीं और इसीसे मुझे ऐसा विश्वास सा हो गया था कि वे मुझे प्रेम करती हैं। मैं तो अब भी यदि यह बात झूठी भी है, यदि यह केवल अब भी

धोखा हो तो भी मैं तो उसे सच ही समझना चाहता हूँ। मुझे तो अब भी ऐसा ही विश्वास है। उसके बाद कभी-कभी एक दूसरे को देख लिया करते थे। कल यूनिवर्सिटी से जब मैं कमरे में घुसा तो उन्हीं का एक लिफाफा मुझे कमरे में पड़ा हुआ मिला। उन्होंने इसमें एक आवश्यक काम के लिये लिखा था। मैंने उसका उत्तर तो भेज दिया है, पर मन यह कह रहा था कि चार साल पहले जो उन्होंने मेरा लिफाफा फाड़ दिया था उसके टुकड़े भी उसमें रख कर भेज देता। उसके टुकड़े मैं घर ले आया था और कहीं ठीक से उन्हें रख भी दिया था, इतना मुझे याद है। आपको मेरी मूर्खतापूर्ण भावुकता पर हँसी आयेगी कि एक बार उन्होंने "देखिये हमारे बाग में कैसे गुलाब खिलते हैं" कह कर जो गुलाब का फूल दिया था उसे मैंने अपने Pastle Colour के खाली डिब्बे में उठा कर रख दिया था। एक बार भाई साहब आकर बोले, "तुम्हारी अलमारी बड़ी गन्दी रहती है इसे साफ नहीं करते ?" मैंने कहा, "हो जायेगी।" पर वे कहाँ मानने वाले थे। अगले दिन जब में कालिज गया तो उन्होंने अलमारी की उधेड़ बुन की। यह खोल, वह खोल। उस फूल की सूखी पत्तियाँ भी झाड़ू मार कर बाहर फेंक दी। जब पता लगा तो बहुत दुःख हुआ। यह बचपन का प्रेम समझिये, क्योंकि १७ वर्ष की उम्र भी क्या ? आज ऐसा लगता है कि बचपन के प्रेम में इतनी Intensity नहीं होती, जितनी भावुकता, आदर्शवादिता और मूर्खता होती है।

आप मेरी इन बातों को बचपन की बातें समझते होंगे; पर आपके अतिरिक्त मेरे पास ऐसा कोई मन नहीं जिसमें मैं अपने मन की धरोहर रख सकूँ।

सश्रद्धा
शिवचन्द्र

५६

३० ए. बेली रोड
इलाहाबाद
२४।३।४८

आदरणीय 'मानव' जी

आप २१।३ की प्रभात में आये थे और रात में ही चले गये। एक नाटक सा कर चले। सोचता हूँ कभी-कभी बहुत सी घटनाओं का सौंदर्य उनके जल्दी समाप्त हो जाने में ही है। क्या आपका उस दिन का आना और जाना भी एक ऐसी ही घटना थी? यदि वह दिन आज में बदल जाता तो और भी अच्छा था। आज आप यहाँ होते!

परसों मिस केम्प कलकत्ते से आ गई थीं। उनसे महादेवी जी के विषय में बातचीत हुई। मैंने उन्हें बताया कि उनका नाम महादेवी क्यों रखा गया। मैंने बताया कि उनके परिवार में तीन पीढ़ियों से कोई लड़की नहीं थी, देवी देवताओं की बड़ी मानता के बाद इस होली के त्यौहार (देवी की पूजा) के दिन उनका जन्म हुआ। इसलिये उनके दादा ने इनका नाम महादेवी (The great goddess) रखा। मैंने उन्हें बताया कि महादेवी जी का जन्म अंग्रेजी तिथि के अनुसार २४ मार्च को हुआ था और हिन्दी पत्रे के अनुसार होली के त्यौहार पर हुआ था। उनके पिता जी अंग्रेजी तिथि पर उनका जन्म दिन मनाते थे और उनकी माता जी हिन्दी तिथि पर। पर अब की बार बहुत वर्षों बाद दोनों तिथियाँ फिर एक ही दिन आ पड़ी हैं। यह accidental coincidence है। तो सुश्री केम्प ने उत्तर दिया था,

"Sometimes it is accident which makes the things beautiful. It is all by accident that sometimes sky looks beautiful and sometimes not."

फिर उन्होंने महादेवी जी को उनके जन्म-दिवस पर कुछ भेंट में देने की बात छेड़ी। वे कहने लगीं,

"On such occasions in our country we present a bouquet of fresh flowers, but here we must present her some thing substantial. What should I present, Nagar ?"

"कोई भी चीज जिसमें आपकी भावनायें, आपके विचार, आपके देश की संस्कृति व्यक्त हो सके और साथ ही जो श्रीमती वर्मा को भी प्रिय हो।"

"Exactly so. This must be the nature of any present."

आज संध्या को महादेवी जी के यहाँ जाना ही था।

छह बजे मैं सुश्री केम्प को लेने के लिये उनके निवास-स्थान पर गया, क्योंकि छह बजे ही जाना निश्चय हुआ था। सात बजे तक हम काफी पीते रहे। ७॥ बजे हम रवाना हुए और पौने आठ बजे तक हम महादेवी जी के यहाँ पहुँच गये। नौकर से पूछने पर पता लगा कि महादेवी जी डाक्टर के यहाँ गई हैं। आध घन्टे के भीतर भीतर उनके आने की भी सम्भावना थी, इसलिये, हम उनके ड्राइंग रूम में बैठ गये। मिस केम्प पूछने लगीं,

"Why has she gone to doctor ?"

"सम्भवतः बीमार हैं।"

"Then I am very sorry" सुश्री केम्प ने कहा।

मैं भी चुप हो गया। यह दुःख की ही बात है कि महादेवी जी बीमार रहती हैं। पिछले वर्ष की अपेक्षा इस वर्ष वे कम बीमार रही हैं। ईश्वर करे आगे के वर्षों में भी निरन्तर ऐसा ही क्रम रहे। पर लखनऊ के बाद से ही उनका शरीर और मन गिर सा गया है। आज के दिन डाक्टर के यहाँ जाने की बात तो सचमुच विषादपूर्ण ही थी।

२० मिनट तक प्रतीक्षा के उपरान्त महादेवी जी आ पहुँची। अपने सोफे पर आकर बैठ गईं। आज वे बिल्कुल थकी-थकी सी लग रही थीं। इसलिये आज अधिक देर तक उन्हें बैठाना तो सचमुच अन्याय ही होता।

महादेवी जी ने सुश्री केम्प से पूछा,

"आप कलकत्ते से कब आयीं?"

"कल।" उन्होंने कहा।

"नहीं Day before yesterday यानी परसों आईं," मैंने कहा।

"हाँ, परसों" अपने को ठीक करते हुए उन्होंने कहा।

उस दिन रविवार की सन्ध्या को तो आप बहुत याद आईं। वहाँ सब कवि लोग इकट्ठे हुए थे। सब ने अपनी अपनी कवितायें recite कीं। Father Bulkey ने अपनी वेल्जियम भाषा में एक कविता सुनाई। आप होतीं तो रशन भाषा में सुनातीं।"

'I rememder one epic poem in Russian. I would have recited that' सुश्री केम्प ने कहा।

"अब की बार जब कभी होगा तो आप भी आयेंगी।" महादेवी जी ने कहा।

"हूँ।" हिन्दी में ही सुश्री केंप बोलीं। फिर कुछ क्षणों की शांति के उपरान्त मैंने पूछा, "क्या डाक्टर के यहाँ आप अकेली ही गईं थीं? अभी आपकी तबियत ठीक नहीं हुई!"

"नहीं, भाई, मैं दवाई वाले डाक्टर के यहाँ नहीं गई थी, यहाँ विद्यापीठ के जो डाक्टर हैं, वहाँ गई थी। अब तो वर्ष की समाप्ति होती है न? तो सब हिसाब करना रहता है और हिसाब में मैं हमेशा से कमजोर रही हूँ। हाई स्कूल तक भी अरिथमेटिक मुझे कभी अच्छा नहीं लगता था। जब teacher कक्षा में black board पर सवाल करती होती थी, तो मैं कविता की एक पंक्ति लिख कर दूसरी पंक्ति सोचती

रहती थी। कभी पकड़ भी ली जाती थी, तो डाट ही खाने को मिलती थी, क्योंकि कविता करना तो कुछ अच्छी बात नहीं समझी जाती। यदि किसी टीचर को पता भी लग जाये कि कक्षा का कोई विद्यार्थी कविता करता है तो उसे क्लास में हँसी का पात्र ही बनना पड़ता है। कभी कभी ऐसा भी होता कि टीचर मुझे (black board) पर सवाल करने के लिये बुला लेती, तो मैं वहाँ जाकर कुछ ऊटपटांग करने लगती थीं। interest व्याज तो हमें कभी आया ही नहीं, फिर compound interest (सूद दर सूद) की बात ही क्या ? गणित में हम सबसे अच्छे नहीं रहे, पर फिर भी अपनी कक्षाओं में प्रथम ही आते रहे।" मैं महादेवी जी की पूरी बात सुश्री केंप को interpret करता गया। सुन कर बोलीं,

The same was the case with me; I never felt interested in Arith. And when I became a teacher I had to teach Arith besides other subjects. Then in the class. I was a bit ashamed. I believed, How can I well teach a subject, which I myself never knew." सुश्री केंप ने कहा। फिर पूछा, What subjects do you teach here Mrs. Verma ?"

"Literature only"

"मेरे साथ कोई ऐसी बात नहीं, अधिकतर तो साहित्य ही रहता है, पर दर्शन, तथा तर्क शास्त्र (Logic) के क्लास भी ले लेती हूँ।"

"If you will allow me, Mrs. Verma I would like to attend your lectures next year"

"पर जब आप क्लास में होंगी तो मेरी समझ में नहीं आता कि मैं पढ़ाऊँगी या हँसूंगी," महादेवी जी ने कहा।

"I won't disturb you. I will quietly sit on the back benches and listen to you. Mrs. Verma you speak so clearly and distinctly, that next year I will be able to follow you, I believe."

इस पर महादेवी जी बोलीं,

"हाँ, क्यों नहीं। आप बहुत जल्दी हिन्दी समझने लगेंगी।" इसके बाद कुछ क्षणों की निस्तब्धता के उपरान्त महादेवी जी ने सुश्री केम्प से पूछा, "चाय तो आप पियेंगी ?"

"नहीं, नहीं।" हिन्दी में ही सुश्री केम्प ने उत्तर दिया।

"क्यों, आज तो होली का त्यौहार है और दूसरे हमारा जन्म दिन है। आज तो विशेष रूप से हमें चाय पिलानी चाहिये।" महादेवी जी ने कहा।

"हम लोग अभी चाय पीकर आ रहे हैं। शायद इसीलिये ये मना कर रही हैं। आज इन्होंने मुझे भी बहुत कुछ खिला पिला दिया।" मैंने कहा।

"क्या खिला-पिला दिया भाई ?"

"यही काफी, टोस्ट और पपीता।" मैंने कहा।

"क्या ?" सुश्री केम्प ने मेरी ओर मुड़ कर पूछा।

यही कि आज संध्या को आपने मुझे बहुत खिला दिया।

In quantity it was little Mr. Nagar. But no doubt I entertained you on international basis. Balken coffee, English Toast and indian Papitas.

इस पर बहुत हँसी रही। महादेवी जी चाय का ठीकठाक करने के लिये अन्दर चली गईं।

इस बीच सुश्री केम्प कहने लगीं कि मैं तो श्रीमती वर्मा को Congratulate करना भी भूल गई। आज श्रीमती वर्मा कुछ थकी हुई सी लग रही हैं। वे बीमार भी हैं। डाक्टर के यहाँ गई थीं। अब हमें अधिक देर नहीं बैठना चाहिये। मैंने समझाया कि वे दवाई वाले डाक्टर के यहाँ नहीं गई थीं, तो उन्हें प्रसन्नता ही हुई। मैंने पहले भी

और कितनी ही बातों में देखा है और मुझे ऐसा लगा है कि ये पश्चिम के लोग जब किसी से भी मिलने जाते हैं तो उसकी सुविधा का सब से अधिक ध्यान रखते हैं। हमारे यहाँ यह बात कम पायी जाती है। आज महादेवी जी थकी हुई सी लग ही रही थीं।

अन्दर महादेवी जी को कुछ देर लग गई। इसके बाद तुरन्त ही शीघ्र गति से आईं और बोलीं,

"माफ करना, मुझे कुछ देर हो गई। यहाँ तो इतना बड़ा परिवार है कि कोई न कोई आता ही रहता है और मेरे यहाँ कोई ऐसा नियम नहीं कि किसी समय मुझसे कोई न मिल सके। यहाँ बड़ी बड़ी दूर से विद्यार्थी आये हुये हैं। बहुत से ऐसे हैं जिनका वर्ष में एक बार ही लौटना होता है। अब उनको एक मा तो चाहिये न।"

"But where do these students live?"
सुश्री केम्प ने पूछा।

"इनके लिये होस्टिल का प्रबन्ध है। सामने होस्टिल की वह बिल्डिंग है।" मैंने सामने विद्यापीठ के छात्रावास की ओर संकेत करते हुये कहा।

"यहाँ बहुत दूर-दूर से छात्रायें आ जाती हैं—आसाम से, बंगाल से, मालाबार से, महादेवी जी ने कहा।

"और मैंने एक बार आप से 'साहित्यकार संसद' के विषय में कहा था आप को याद है।" सुश्री केम्प से मैंने पूछा।

"हाँ इस संस्था के पास एक अच्छी बिल्डिंग है। उसके चारों ओर काफी जमीन है और गंगा तट पर यह एक रम्य स्थान पर स्थित है। और आप को बड़ी भारी प्रसन्नता होगी यदि मैं आप से एक रहस्य का उद्घाटन कर दूँ तो।"

"What secret Mr. Nagar?"

"यही कि श्रीमती वर्मा ही इसके मूल में रही हैं।"

"भाई, इतना झूठ तो न बोलो," विनीत भाव से हँस कर महादेवी जी ने कहा।

"Of course, with others."

मैंने कहा, यद्यपि श्रीमती वर्मा सत्य को स्वीकार नहीं कर रही हैं, पर वास्तव में रही हैं वे ही सदैव इस संस्था के मूल में। इन्होंने ही इस विचार को जन्म दिया, इन्होंने ही योजना बनाई और इन्होंने ही दूसरे साथी साहित्यिकों के साथ मिल कर उसे कार्य रूप में परिणत किया।"

"मैं सोचता हूँ अब मैं झूठ नहीं बोल रहा हूँ।" महादेवी जी की ओर मुड़ कर मैंने पूछा। "महादेवी जी चुप हो गई और दो तीन क्षणों के उपरान्त बोलीं, "हाँ, इतना तो ठीक है।"

... .

फिर शिक्षा पर कोई बात सुश्री केम्प ने छेड़ी। जहाँ तक मुझे पता लगा है सुश्री केम्प को शिक्षा सम्बन्धी बातों से विशेष प्रेम है। वे शिक्षा की विभिन्न Techniques जानना चाहती हैं। किन किन विषयों की कहाँ शिक्षा होती है, कितनी और किस तरह की, कहाँ शिक्षित संस्थायें हैं और किस देश में कितने शिक्षित है, किस वर्ष से बच्चों की शिक्षा आरम्भ होती है आदि सब बातों के प्रति उनमें विशेष जिज्ञासा है। और धर्म सम्बन्धी बातों के प्रति उन्हें चिढ़-सी है। वे Progressive हैं। Conservative लोगों से उन्हें घृणा है।

शिक्षा की बात छिड़ी। उन्होंने बताया कि रुस में तो एक प्रकार से शिक्षा जन्म के साथ ही आरम्भ हो जाती है।

मैंने कहा, "पर वहाँ शिक्षा की अवधि तो बहुत लम्बी है।"

"How ?"

"यही कि graduation के बाद Doctorate के लिये कितने ही वर्ष लगते हैं। ३ वर्ष तो Aspirant फिर २ वर्ष

Candidate और फिर ३ वर्ष Doctorate। वहाँ तो Doctorate लेना धैर्य की ही बात होगी?"

"Everywhere it is so!"

"नहीं, मैं समझता हूँ लन्दन में तो Doctorate लेना बहुत आसान है। यहाँ से एम० ए. करने के उपरान्त लोग वहाँ जाते हैं और दो वर्ष में डाक्टर होकर लौट आते हैं।"

"जाने से पहले वे एक दो वर्ष यहाँ तैयारी कर लेते हैं। खोज का काय तो सभी जगह परिश्रम का है," महादेवी जी ने कहा और फिर इसी विषय को आगे बढ़ाते हुये बोलीं, "भारत वर्ष में प्राचीन काल में जो भी किसी एक विषय को पकड़ता था, उसी में अपना समस्त जीवन लगा देता था, चाहे वेदान्त हो, तर्क हो, व्याकरण हो या साहित्य। पर फिर उस विषय को अंतिम सीमा तक पहुँचा भी देता था। हमारे यहाँ जिस विषय में हजारों वर्ष पहले मनीषी जो कह गये हैं, इतने वर्षों तक भी हम उसमें कुछ नहीं जोड़ पाये।"

"But what about science? Has it not developed?"

सुश्री केंप ने पूछा।

"मैं जिन मनीषियों की बात कर रही हूँ, उन्होंने तो विज्ञान के अस्तित्व को ही नहीं माना, इसलिये उसमें जोड़ने घटाने की बात ही नहीं उठती।" अब बात छिड़ गई थी और सुश्री केंप तथा महादेवी जी दोनों के बातचीत के ढंग से ऐसा लग रहा था कि थोड़ा तर्क चलेगा, पर अन्दर किसी महिला ने महादेवी जी को बुला लिया। वे उठ कर चली गईं।

इतने में लीला तथा एक और दूसरी महिला ने चाय इत्यादि ला दी। महादेवी जी अभी नहीं आई थीं। मैंने इतनी देर सुश्री केंप को आज के अपने भारतीय भोजन से परिचय कराया।

"यह मीठी गुंजिया है जो विशेष रूप से इसी त्यौहार पर तैयार

की जाती है। यह नमकीन गुंजिया है, ये नमकीन सेव हैं और यह तो आप जानती ही हैं—दालमोठ।

यह दही गुंजिया है, इसमें अन्दर मेवा है, और खट्टे दही में इसे डुबो दिया गया है।" इतने में महादेवी जी आ गईं। वे आते ही बोलीं, "मुझे देर हो गई। मलावार से जानकी देवी आ गई हैं।" मैंने पूछा, "ये कौन हैं?"

"इन्होंने यहीं से हिन्दी में एम० ए० किया। दस बारह साल तक मेरे साथ रही हैं। अब सतना में हैं।" मैंने सुश्री केम्प को बतलाया।

अब हम लोगों ने खाना आरम्भ किया। महादेवी जी ने केवल एक प्याला चाय पी। जब सुश्री केम्प दही गुंजिया खाने लगीं, तो महादेवी जी ने पूछा, "यह आपको कैसी लगी?"

"It is just like a Russian di h o: sour milk."

इसके बाद जानकी देवी भी आ गईं। मैंने सुश्री केम्प से परिचय कराया। श्रीमती जानकी देवी का लगभग दो वर्ष का एक बच्चा भी था। उसे मैंने अपनी गोद में उठा लिया। सुश्री केम्प भी उसके कोमल हाथों को चूम कर अपने गालों से उनका स्पर्श कर उसके साथ खेलने लगीं, बातचीत करने लगीं। कमरे की सभी चीजों को, मूर्तियों को, चित्रों को, वह कुतूहल भरी दृष्टि से देखता था और फिर जैसे उनका रहस्य समझ गया हो, इस प्रकार गर्दन हिला देता था। वह बार बार मेरी ओर को आता था। इस पर हँसकर सुश्री केम्प ने पूछा,

"Why this baby is so."

"शायद पिछले जन्म में हम दोनों का कुछ सम्बन्ध रहा होगा," मैंने हँस कर जवाब दिया। सभी बहुत हँसते रहे। इसी हँसी के बीच हम उठकर खड़े हुए। कमरा शान्त हो गया। बड़ी गम्भीरता से सुश्री केम्प उठीं। उठकर महादेवी जी की ओर बढ़ीं और फिर एक चमकते

हुए कवर वाली सुन्दर अंग्रेजी की मोटी पुस्तक उनकी ओर बढ़ा दी। उस पुस्तक पर बड़े सुन्दर अक्षरों में लिखा हुआ था: Mother— Maxim Gorky. और फिर महादेवी जी के हाथों में देते हुए बोलीं, "I forgot to congratulate you on your birth day." और फिर एक क्षण के उपरान्त ही "On this auspicious day I am presenting you "Mother", because we have something of mother in us." महादेवी जी ने उसे अपने हाथों में ले लिया। उनकी उल्लासपूर्ण हँसी बिखर पड़ी। उन्होंने अपने शीशे की टेबिल पर रखे हुए पुष्पदान में से दो कुमुद-कलियाँ उठाकर सुश्री केम्प को दीं और कहा, "इन्हें आप रख लीजिये। सुबह होने तक ये खिल जायेंगी।" एक प्रकार सुश्री केम्प और श्रीमती वर्मा दोनों ने ही एक दूसरे को उपहार दिये। मैं थोड़ी सी इन उपहारों की कहानी आप को बतला दूँ। Maxim Gorky सुश्री केम्प का सर्वप्रिय लेखक है। ६५ भाषाओं में इस लेखक की पुस्तकों का अनुवाद हो चुका है। वैसे तो अँग्रेजी में इस पुस्तक के और भी अनुवाद हैं। पर यह अनुवाद अमेरिका से अभी बड़े सुन्दर ढङ्ग से प्रकाशित हुआ है। इसको उपहार में देते हुए सुश्री केम्प ने Russian भाषा में ही सब कुछ लिखा था। सबसे पहले उन्होंने रशा के प्रसिद्ध लेखक पुश्किन का एक quotation लिखा था जिसका अर्थ होता है, "Hundred times blessed is one who has dedicated one's life to some faith." मैं समझता हूँ महादेवी जी के लिये इस अवसर पर इससे सुन्दर बात नहीं कही जा सकती थी। इसके बाद उन्होंने रशन में ही लिखा था

"To my sweet friend
Mahadevi Verma
On her birth day
24/3/48
Allahabad.

महादेवी जी ने विदा के समय उन्हें कुमुदिनी की कलियाँ दीं।

जब सुश्री केम्प आयी थीं, तो उन्होंने महादेवी जी के गुलदस्ते में रखे हुए इन फूलों के विषय में उनसे पूछा था। उन्होंने बताया था, "ये कुमुदिनियाँ हैं, कमल की एक Variety, कमल मुझे फूलों में सबसे प्रिय है और हमारे तो देश का यह National flower सा ही है। हमारे यहाँ काव्य में, चित्रों में Architecture में सभी जगह कमल मिलता है। इस फूल का सम्बन्ध हमारी प्राचीन सभ्यता और संस्कृति से है।" तो सुश्री केम्प ने कहा था "I like it very much. It has got a very delicate, lively and fine colour."

विदा के समय महादेवी जी ने वे ही दो कुमुदिनी की कलियाँ उन्हें भेंट में दीं और कहा, "प्रभात होने तक ये खिल जायेंगी।" इससे महादेवी जी का जीवन के प्रति आशावादी और उल्लासपूर्ण दृष्टिकोण प्रकट होता है। हिन्दी संसार के लिये यह सुख और सौभाग्य की ही बात है। मुझे तो ऐसा लगा कि जैसे वे कलियों के रूप में अपनी आशाओं के विषय में ही कह रही हों कि अभी रात है, सुबह होने तक ये खिल जायेंगी। महादेवी जी का उनके खिलने में विश्वास है। यही बहुत कुछ है। जीवन में विश्वास से बड़ी और कोई शक्ति नहीं।

सश्रद्धा

शिवचन्द्र नागर

६०

२० ए. वेली रोड

इलाहाबाद

५।४।४८

आदरणीय 'मानव' जी,

आपका १। ४ का पत्र परसों मिल गया।

आपने अपने पत्र में महादेवी जी की अंग्रेजी में बातचीत न करने वाली नीति से मतभेद प्रकट किया है। उनकी ऐसी बातें यहीं समाप्त नहीं हो जाती। युग की आधुनिकता उन्हें अच्छी नहीं लगती पर

उनकी बहुत सी बातें युग की आधुनिकता को लिये हैं। उन्हें इसी बीसवीं सदी ने पैदा किया है पर वे कहती हैं "हम तो भाई पुरातनवादी हैं।" ऐसे ही Apparently उनमें बहुत से Contradictions हैं। पर जहाँ तक उनके आन्तरिक व्यक्तित्व की बात है, वहाँ उसमें कहीं कोई Contradiction नहीं।

उनके कुछ सिद्धान्त हैं। सिद्धान्त एक व्यक्ति की व्यक्तिगत सी ही धारणा है। सिद्धान्त के विषय में तर्क भी नहीं किया जा सकता, क्योंकि सिद्धान्त एक Faith की बात है। मेरा तो ऐसा विचार है कि सिद्धान्त किसी का कितना ही ridiculous क्यों न हो, हमें उसका आदर ही करना चाहिये। सिद्धान्त को मैं व्यक्ति के प्राणों में डूबी हुई एक पवित्र वस्तु समझता हूँ। भाषा के सम्बन्ध में भी उनका ऐसा ही सिद्धान्त है। वे कहती हैं कि विदेशियों को हमारे देश में आकर हमारे देश की भाषा बोलनी चाहिये और यदि हम उनके देश में जायँ तो हमें उनके देश की। यह सिद्धान्त निस्संदेह एक अच्छा स्वप्न है। वास्तविकता में तो यह परिणत नहीं हो सकता, क्योंकि विश्व तो क्या किसी एक continent में ही इतनी भाषायें हैं कि एक व्यक्ति यदि केवल भाषायें ही सीखने लगे तो अपने जीवन काल में नहीं सीख सकता। दूसरे जब भारतवर्ष अंग्रेजों का गुलाम था तब तक तो अंग्रेजी के Boycott की बात समझ में भी आती थी, पर अब नहीं।

मिस केम्प ने Mother पुस्तक जो महादेवी जी को उनके जन्म दिवस पर भेंट की है उस पर सब कुछ रशन भाषा में ही लिखा। महादेवी जी की प्रतिक्रिया ही है यह। यदि उनके साथ कोई रशन का Interpreter होता तो, यह प्रतिक्रिया यहाँ तक बढ़ सकती थी कि वे रशन में ही बात करतीं।

कोई भी सम्बन्ध हो, मेरा ऐसा विचार है कि abruptly अस्तित्व में नहीं आता। भाव का धीरे-धीरे उत्कर्ष होता है। स्वाभाविक क्रिया तो यही है और इसी प्रकार पैदा हुए सम्बन्ध कुछ स्थायी भी होते हैं।

महादेवी जी के साथ ऐसी बात नहीं। उनके लिये भाई बहिन सम्बन्ध ऐसे ही हैं जैसे किसी को नाम दे दिया 'राम' 'श्याम' इत्यादि। उन्होंने सैकड़ों आदमियों को 'भाई' कहा होगा। यह बात सच ही है कि 'यह भाई शब्द अब उनके हृदय में कोई अनुभूति नहीं जगाता।' पर जिनको यह संबोधन दिया जाता है उनके साथ यह बात नहीं। उनमें से अधिकांश तो उसमें इतने डूब जाते हैं कि कदाचित् ही निकल पाते हों। वास्तव में बात यह है कि भारतीयों के लिये सम्बन्ध-भाव की appeal सब से अधिक होती है, इसलिये 'भाई' 'बहिन' ये शब्द महादेवी जी ने साहित्य-तन्त्र की नीति के दो अस्त्र बन गये हैं। पर जिस दिन उनकी भेंट मिस केंप से हुई थी उस दिन वे ये भूल गईं थीं कि ये अस्त्र पाश्चात्य व्यक्तियों के लिये नहीं। उन्होंने मिस केंप को लिखा 'प्रिय बहिन' पर मिस केंप ने तो उसे स्वीकार नहीं किया। उन्होंने लिखा To, my Sweet friend.

आशा-निराशा के विषय में मेरा दृष्टिकोण यह है कि कुछ सम्बन्ध तो केवल Diplomatic ही होते हैं। वहाँ तो दोनों ओर से अभिनय होता है। दोनों ओर से कूटनीति चलती है। जिसकी कूटनीति भी विजयिनी हो जाये। ऐसे सम्बन्धों की तो बात छोड़िये। पर कुछ सम्बन्ध भाव के सम्बन्ध होते हैं, निश्छल सम्बन्ध होते हैं। मैं उनकी बात कहता हूँ। ऐसी जगह हमें कोई भी आशा या अपेक्षा रख कर नहीं जाना चाहिये। प्रतिदान मिलेगा, यह नहीं सोचना चाहिये और यदि स्वयं कुछ मिल जाये तो उसके प्रति अकृतज्ञ नहीं होना चाहिये। हमारा तो महादेवी जी से ऐसा ही सम्बन्ध है।

मैंने महादेवी जी से 'मंजु लता' की बात सुनाई थी। मैंने कहा "उस लड़की की उम्र ११ वर्ष है, पर उसकी चेतना विशेष प्रबुद्ध हो गई है।" तो उन्होंने पूछा "कैसे?" मैंने कहा, "उसके उत्तर बड़े विलक्षण होते हैं। उदाहरण के लिये उसके भाई के जितने भी परिचित हैं सभी को वह भाई कहती है। 'मानव' जी को भी भाई कहने लगी।

एक दिन उन्होंने हँसी-हँसी में पूछा, "अच्छा मंजु, तेरे इतने भाई हैं, तो फिर तू मुझे भाई बना कर क्या करेगी ?" उसने तुरन्त उत्तर दिया, "वे सब तो भाई हैं ही, पर आप मेरे अलग के भाई हैं।" महादेवी सुन कर ज़रा हँसी, फिर अवाक् हो गईं।

२१ मार्च वाला काम कल हो गया है। इस काम में देरी मेरी ओर से नहीं हुई, फिर भी ऐसा लगता है जैसे कुछ भी देने से पहले वे व्यक्ति के धैर्य की परीक्षा लेती हों। हस्ताक्षर उनके सभी स्थानों पर हो गये हैं। खाली जगह मैंने नहीं भरी। ठीक से आप ही उन्हें भर दीजियेगा।

आजकल बहुत दिनों से मेरे पास पैसा नहीं है। अब घर से भी नहीं आयेगा। ४० रु० की आवश्यकता है। ११ ता० तक किसी भी तरह भेजियेगा।

सुश्री केंप बनारस गईं थीं। वहाँ कोई accident हो गया है। शायद एक दिन के लिये मुझे बनारस जाना पड़े।

आपका आफिस नैनीताल कब जा रहा है ?

सश्रद्धा

शिवचन्द्र नागर।

६१

३० ए० बेली रोड

इलाहाबाद

१२।४।४८

आदरणीय 'मानव' जी

आपका ७।४ का पत्र मिला और रुपया भी।

हिन्दी साहित्य के लिये यह सौभाग्य की ही बात है कि अब साहित्य प्रेमी जनता को महादेवी जी के गीत air पर सुनने को मिल सकेंगे।

कान्ट्रेक्ट फार्म पर हस्ताक्षर करके जब महादेवी जी ने उन्हें मुझे दिया तो मैंने उन्हें हाथ में लेते हुए कहा, "अब तो आप भी एक रेडियो खरीद लीजियेगा।"

"हमारे गीत आ रहे हैं, इसलिये हम एक रेडियो खरीद लें, तब तो हमें धन्य है," महादेवी जी ने कहा।

"अच्छा, आप न सुनियेगा, हमारे लिये ही खरीद दीजियेगा।" मैंने हँस कर कहा।

उत्तर में बोली, "आप लोग कहें तो साहित्यकार संसद में एक रेडियो खरीद लेंगे।"

चलती बार कहने लगीं, "मानव जी को लिख देना कि ऐसे फार्म रेडियो विभाग से पहले भी आ चुके हैं। पर वे तो कहीं रद्दी में ही चले गये होंगे। अब की बार उन्होंने फँसा दिया है। और अब तो हस्ताक्षर हो ही गये।"

मिस केम्प के बायें हाथ का Shoulder Blade का Dislocation तथा Elbow का Fracture हो गया है। वे कलकत्ता अस्पताल में हैं।

पत्र की देरी के लिये क्षमा कीजियेगा। श्री बुल्के जी का पत्र कल ही संध्या को उनके यहाँ पहुँचा दिया था।

सश्रद्धा
शिवचन्द्र नागर

६२

३० ए० बेली रोड
इलाहाबाद
२६।४।४८

आदरणीय 'मानव' जी,

आपका २२।४ का पत्र परसों मिल गया था।

आजकल आप अपने छोटे से परिवार के साथ सुखी और प्रसन्न हैं, यह प्रसन्नता की ही बात है। मैं तो दुःख और संघर्ष को सुख की भूमिका ही समझता हूँ। ईश्वर करे यह सुख किसी बड़े सुख की भूमिका हो। सुख दुःख की छोटी-छोटी लहरों के बीच ही जीवन बुद्बुद् अपने मार्ग पर गति से बढ़ता रहे, इसी में लगता है जीवन का सौंदर्य है, और यदि उसमें कहीं से बाहर का प्रकाश प्रतिबिंबित होकर उसे सतरंगी शोभा प्रदान कर दे तो सौभाग्य ही समझना चाहिये।

भारतवर्ष के प्राचीन मनीषी निस्संदेह कलाकार तो थे, पर दार्शनिक अधिक थे और साथ ही अंतमुर्खी व्यक्ति भी। उन्होंने अपने अन्तर में ही सुख और सौंदर्य की खोज की, बाहर नहीं। वह एक दृष्टिकोण ही कहा जा सकता है। संसार में चरम सत्य तो कुछ भी नहीं।

मुझे ऐसा लगता है कि कलाकार की प्रतिभा एवं कला के विकास के लिये आन्तरिक संघर्ष की आवश्यक है, पर उसको बाह्य सुविधायें सब प्रकार की मिलनी चाहिये। वह सुखी होना चाहिये—सामान्य मनुष्यों की अपेक्षा अधिक सुखी।

श्री बुल्के का पता २ एडमौंस्टन रोड, इलाहाबाद है। वे ६ मई तक प्रयाग छोड़ देंगे।

महादेवी जी कल कहीं गई हुई थीं, इसलिये उनसे भेंट नहीं हो सकी। आज उनके पिता जी यहाँ आये हुये हैं। इस बार वे उनके साथ ही रामगढ़ जायेंगी।

'रहस्य साधना' की प्रतियाँ नहीं रहीं। कम से कम दस प्रतियाँ पत्र के देखते ही भेज दीजियेगा।

सश्रद्धा
शिवचन्द्र नागर

६३

३० ए० बेली रोड
इलाहाबाद
६ । ५ । ४८

आदरणीय 'मानव' जी,

अभी अभी मैंने महादेवी जी का चित्र रजिस्ट्री से भेजा है। कल संध्या को मिल सका था, इसी से देरी हो गई है। पर यह अत्यधिक प्रसन्नता की बात है कि मिल गया। संपादक को लिख दीजियेगा कि ब्लाक बन जाने पर लौटा दे।

आजकल कभी-कभी बड़ी निराशा-सी हो जाती है जैसे अपना ही जीवन भार सा हो गया हो। कभी कभी मन में ऐसी भावना उठती है कि कोई ऐसा व्यक्ति मेरे पास होता जिससे मैं अपने मन की बात कह सकता।

आजकल मेरे पास पैसा भी नहीं है। २० रु० आपको भेजने होंगे।

सश्रद्धा
शिवचन्द्र

६४

३० ए. बेली रोड
इलाहाबाद
१७।५।४८.

आदरणीय 'मानव' जी,

परसों परीक्षायें समाप्त हो गईं। प्रसन्नता केवल इतनी है कि घुटन के वातावरण से बाहर साँस लेने का अवकाश मुझे मिल गया है। जिन परिस्थितियों में यह परीक्षा दी गई है, उसकी स्मृति जीवन-पट पर अंकित दुःख की रेखाओं में एक रेखा को और जोड़ने वाली है। फिर भी मैं उसे भुला देना ही चाहता हूँ।

महादेवी जी से आप की यह भेंट छोटी ही है—ऐसी ही जैसे किसी जाते हुए यात्री से सम्भव हो सकती है, पर सुन्दर है।

आपको बातचीत में Laconic pith होता है और वह इतनी संतुलित होती है कि उसमें से एक भी शब्द न तो निकाला जा सकता है और न जोड़ा जा सकता। महादेवी जी कुछ कहती हैं कुछ नहीं कहतीं, जो नहीं कहतीं उसके लिये संकेतों से काम लेती हैं। इसे उनकी बातचीत में रहस्यवादी प्रवृत्ति कह सकते हैं। उनकी बातचीत की दूसरी विशेषता यह है कि जो वे कहती हैं उसका आशय कभी-कभी साधारण व्यक्ति की पकड़ में नहीं आता। बातचीत में भी उनकी अभिव्यक्ति की शैली एक प्रकार मौलिकता लिये होती है। भारतवर्ष में तो बातचीत की कला को अभी कला ही नहीं मानते। यदि किसी पाश्चात्य प्रदेश में महादेवी जी होतीं, तो आलोचक इस कला के क्षेत्र में जो उन्होंने अपनी शैली दी है उसका Recognition करते और उचित मूल्यांकन भी। बातचीत की कला में आप दोनों ही व्यक्ति विलक्षण हैं। मैंने आप दोनों से अगल अलग बातचीत की है। कभी कभी मन करता है कि कला अथवा साहित्य पर आप दोनों की बातचीत मैं सुनता और आप दोनों को यह पता न होता कि मैं सुन रहा हूँ।

क्या स्टेशन पर पांडे जी से आप की भेंट नहीं हुई? वे भी तो साथ थे। उनकी कोई चर्चा आपने पत्र में नहीं की।

मैं तीन चार जून तक लखनऊ आऊँगा।

सश्रद्धा
शिवचन्द्र

६५

३० ए. बेली रोड
इलाहाबाद
२४।७।४८.

आदरणीय 'मानव' जी,

२१।७ की प्रभात में ही मैं सकुशल पहुँच गया था। विश्व-

विद्यालय के खुलने के पहले दिनों में घूमने फिरने की परेशानियाँ प्रति वर्ष अनिवार्य सी ही हो गई हैं। ऐसा लगता है कि इनका स्थान भी अध्ययन के कार्यक्रम का ही एक भाग है। यह जीवन भी खानाबदोशी का सा है। अप्रैल के अन्त में अपने अपने डेरे उखाड़ देने पड़ते हैं, जुलाई में फिर से घर बनाना पड़ता है। घर बनाना सचमुच कठिन काम है।

मेरा मन गिरा-गिरा सा है। कभी कभी लगता है मैं यहाँ कहाँ आ गया जहाँ कोई भी अपना नहीं। चारों ओर देखने से ऐसा लगता है कि सभी इस ओर प्रयत्नशील हैं कि कोई अपना हो।

मस्तिष्क और शरीर कुछ भी काम नहीं कर रहे। प्राणों की विद्युत जैसे खींच ली गई है। यह एक वर्ष मैं हँस कर काटना चाहता हूँ, पर अन्तर से हँसी आती नहीं। सभी तरह मैं बहुत थक-सा गया हूँ।

२१।७ की सन्ध्या को मैं महादेवी जी के यहाँ गया था। महादेवी जी स्वस्थ और प्रसन्न हैं। वैसे वे कहती हैं, "हमारा शरीर सच्चे अर्थों में व्याधि-मन्दिर है।" इस पर मैंने कहा, "चलिए, व्याधियों ने भी सुन्दर स्थान को अपना मन्दिर बनाया है।"

सुश्री केम्प भी आ गई हैं। अपने पाकिस्तान के अनुभव बता रहीं थीं। कह रही थीं वहाँ के निवासियों का सांस्कृतिक स्तर यहाँ के निवासियों से बहुत नीचा है, शिक्षा का प्रसार बहुत कम हो पाया है और सब से बड़ा आश्चर्य मुझे यह लगा कि वहाँ Pro-English और Pro-American feeling अधिक मात्रा में विद्यमान है।" फिर जब मैंने वहाँ के Natural environment की बात पूछी तो कहने लगीं, "वह एक शुष्क और नीरस स्थान है, जब कि यहाँ आजकल चारों ओर हरियाली ही हरियाली दृष्टिगोचर होती है। वहाँ एक भी हरा तिनका दिखाई नहीं देता था।"

सश्रद्धा

शिवचन्द्र

६६

२० ए० बेली रोड
इलाहाबाद
१६।८।४८.

आदरणीय 'मानव' जी,

उस दिन १६।८ की रात को हम आपको विदा कर चुपचाप लौट आये थे। विदा की उदासी का एक अपना सौंदर्य है। भीड़ में वह उदासी हल्की हो जाने से सौंदर्य भी हल्का हो जाता है। फिर भी जाने क्यों किसी भी स्नेही को मुझे अकेले ही विदा करना अच्छा लगता है।

अगले दिन प्रभात में मैंने सुश्री केंप से कहा, "मेरे लखनऊ वाले कवि-मित्र 'निराधार' के लेखक कल यहाँ आये थे। तीन बजे के लगभग हम आप के यहाँ भी गये थे; पर उस समय आप सो रही थीं; अतः वे लौट गए।"

"Why did you not wake me up, Nagar ?

"मैं तो चाहता था, पर मेरे मित्र ने आपको गहरी नींद में जगाने के लिये मना कर दिया। वे कहने लगे, "अगले महीने मैं फिर आऊंगा। तब मिलूँगा।"

"Mr. Nagar ! you would have held me by the shoulder and jostled me as to wake up."

"वे किसी दिन फिर आयेंगे।"

"Let us hope so."

"वे अपनी पुस्तक 'महादेवी की रहस्य साधना' की एक प्रति आपके लिये छोड़ गये हैं। मैं उसे आपके पास कल या परसों अवश्य पहुँचा दूंगा।"

"Oh, thanks." सुश्री केंप ने कहा।

आज सुश्री केंप से 'रक्षा-बन्धन' के त्यौहार, इसके आशय और इसके सामाजिक महत्त्व पर भी कुछ बातें हुई थीं। यह सुन कर उन्होंने कहा था कि उनके देश में भी इसी प्रकार का एक त्यौहार होता है। यह एक सुन्दर त्यौहार है। कोई स्त्री जिसे अपना भाई बना लेती है, उस भाई को उस बहिन की सदैव रक्षा करनी होती है और फिर वह उस बहिन के परिवार में विवाह भी नहीं कर सकता। इस पर मैंने हँस कर कहा "मिस केंप, पहली शर्त तो ठीक है पर दूसरी बहुत कठिन है।"

इस पर वे भी हँस दी थीं और १७।८ की वह भेंट उसी हँसी के साथ साथ समाप्त हो गई थी।

आज १६।८ को रक्षा बन्धन का त्यौहार था। यहाँ मेरी एक-दो छोटी मुँह-बोली बहनें हैं। उन्होंने मुझे कल संध्या को ही निमंत्रण दे दिया था। वहाँ भोजन कर, मैं सुश्री केंप के यहाँ चला गया। सुश्री केंप भी भोजन कर ही चुकी थीं। उनसे साहित्यिक वार्तालाप आरम्भ हो गया। आज उन्होंने एक रूसी कविताओं की पुस्तक निकाली। वहाँ के एक आधुनिक प्रसिद्ध कवि सामिनोव की कविता उन्होंने मुझे समझाई और समझाने से पहले बताया कि ये कवितायें उसी प्रकार की हैं जैसे तुम्हारे मित्र की 'निराधार' की कवितायें हैं। उस रूसी कविता के अन्दर जो संगीत, ताल और भाषा का सौंदर्य था उसे तो मैं अभी समझ नहीं सका, पर भाव मैं लिख रहा हूँ। इस कविता की Theme इस प्रकार है।

"एक सैनिक की पत्नी जिसने बहुत दिनों तक प्रतीक्षा करने के उपरान्त किसी दूसरे से विवाह कर लिया था इस बात की सूचना एक पत्र द्वारा अपने पहले पति को जो मोर्चे पर लड़ रहा था दी। उस पत्र के पहुँचने से पहले उस सैनिक की मृत्यु हो गई और वह पत्र उसके एक दूसरे मित्र सैनिक को मिला। वह मित्र सैनिक उस पत्र का उत्तर उस महिला को देता है जिसमें वह लिखता

है कि यदि यह पत्र उसके मित्र अर्थात् उस महिला के पहले पति को मिलता तो उसकी क्या दशा हुई होती ?"

फिर उन्होंने एक दूसरी कविता पढ़ कर समझायी। इस कविता का केन्द्रीय भाव यह था, "इस विनाशकारी युद्ध में से मैं कैसे बचकर आ सका, इसे केवल मैं और तुम ही जान सकते हैं और कोई नहीं जान सकता। दूसरे इसलिये नहीं जान सकते कि वे प्रतीक्षा नहीं कर सकते थे। इसे केवल तुम्हीं जान सकती हो, क्योंकि तुम जानती हो प्रतीक्षा किस प्रकार की जाती है।" इस पर मैंने सुश्री केंप से पूछ लिया।

"इस कविता में यह तुम कौन है ?—सैनिक की पत्नी या प्रेमिका ?"

"पत्नी ही है।"

"मुझे ऐसा लगता है कि प्रेम-भाव की तीव्रता और गहनता जितनी प्रेमिका के प्रति होती है, उतनी पत्नी के प्रति नहीं। क्या मनोवैज्ञानिक आधार पर यह सत्य है ?"

"हमारे देश में तो ९० प्रति-शत प्रेमिकायें ही पत्नी बनती हैं, और फिर पत्नियों के प्रति ही प्रेम की तीव्रता और गहनता अधिक होती है। पर तुम्हारी उम्र के अविवाहित व्यक्ति को तो यही लगेगा कि प्रेम भाव की तीव्रता और गहनता प्रेमिका के प्रति ही अधिक होती है। मनोवैज्ञानिक आधार पर दोनों ही बातें अपनी अपनी परिस्थितियों में सत्य हैं।"

"पर हमारे देश में तो ऐसा है कि ९० प्रतिशत cases में प्रेमिकायें पत्नी नहीं बन पातीं, इसलिये यह बात हमें तो शाश्वत सत्य सी ही लगती है कि प्रेम भाव की गहनता प्रेमिका के प्रति ही अधिक होती है।"

"आपके यहाँ arranged विवाह होते हैं, जहाँ व्यक्ति को अपना

जीवन-साथी चुनने के लिये संघर्ष ही नहीं करना पड़ता। ऐसी दशा में भाव की गहनता कैसे हो सकती है?"

"हाँ, यह बात तो ठीक है।"

इसके उपरान्त सुश्री केंप की सेविका काफी ले आयी। मैंने एक प्याला काफी पी। आज की काफी काफी स्ट्रोंग थी। पीने पर ऐसा लगा जैसे बुद्धि के शिथिल तन्तु खिंच गये हों। सामने रक्खी हुई 'यामा' मैंने उठा ली और उसमें से निम्नलिखित कविता उन्हें समझायी :

मेरे हँसते अधर नहीं,
जग की आँसू लड़ियाँ देखो।
मेरे गीले पलक छुओ मत,
मुर्झाई कलियाँ देखो।

यह कविता उन्हें बहुत पसन्द आई। फिर मैंने उन्हें दूसरी कविता 'किन उपकरणों का दीपक किसका जलता है तेल' पढ़ी और नन्द कुमार जी वाला अँग्रेजी अनुवाद देने के लिये कहा। उस अनुवाद की प्रति तो आपके पास है। उसे भेज दीजियेगा।

रक्षा-बन्धन की बात उठ खड़ी हुई। मैंने कहा, "मेरी एक बड़ी बहिन है। आपकी ही उम्र की होगी। वे डाक से राखी भेजेंगी। अगर वह राखी आ गई तो आप उसे मेरे हाथ में बाँध दीजियेगा।

"और यदि मैं अलग से बाँध दूं तो?"

"तो··· " मैं गम्भीर हो गया और एक पल के लिये अपने को भूल कर शांत भाव से बोला।

"तो···· कुछ नहीं·······सभी प्रकार के बन्धन जो इस त्यौहार की आत्मा से जुड़े हैं मुझ पर लागू होंगे।" वातावरण गम्भीर हो गया था। कुछ पलों की निस्तब्धता के उपरान्त मैं उठ कर चला आया। अपनी छोटी छोटी बहिनों के यहाँ गया। उन्होंने राखियाँ बाँधी। मैं फिर पाँच बजे सुश्री केंप के यहाँ गया। नन्हीं नन्हीं बूंदें

पड़ रही थीं। मैं चुपचाप जा कर बैठ गया। मैंने पूछा, "यह वर्षा आप को कैसी लगती है?"

बोलीं, "इस वर्षा के साथ एक प्रकार की उदासी melancholy जुड़ी है।"

"हाँ, है तो ऐसा ही। और प्रतिदिन संध्या के साथ भी ऐसा ही लगता है।" मैंने कहा।

मेरे हाथ में राखी बँधी देखकर पूछ बैठीं, "यह राखी किन्होंने बाँधी है?"

"मेरे एक मित्र की दो छोटी-छोटी बहिनें हैं, उन्होंने?"

"मेरे लिये राखी लाये हो?"

मैंने एक सुन्दर सी राखी उनकी ओर बढ़ा दी, और साथ ही मेरा दायाँ हाथ बढ़ा का बढ़ा रह गया। उन्होंने शांत और गम्भीर भाव से वह राखी मेरे हाथ में बाँध दी। मेरा शरीर सिहर उठा। रोमांच हो आया। राखी तो आज तक इस कलाई में सैकड़ों बँधी होंगी, पर आज जैसा अनुभव कभी नहीं हुआ। मैं मुग्ध भाव से भूला सा यह सब कुछ देखता रहा। वे विद्युत गति से उठकर अन्दर गईं और एक प्लेट में कुछ Cake और Pastries ले आयीं; मैंने उन्हें खाया। एक प्रकार की अवर्णनीय प्रसन्नता का मन ने अनुभव किया, और साथ साथ ऐसा भी लगा जैसे एक महान् उत्तरदायित्व मुझे चारों ओर से बाँध रहा हो, एक कर्तव्य की भावना ने मुझे अभिभूत कर दिया हो। बहुत दिन हुए मैंने 'सिकन्दर' सिनेमा देखा था। उसमें एक जगह कथोपकथन में आया था "यह वह राखी है जो फारस ने हिन्दुस्तान के हाथों में बाँधी है।" यही वाक्य मस्तिष्क में विद्युत की भांति कौंध गया और उसके आगे प्राणों में ऐसा लगा जैसे कल्पना ने उजले अक्षरों में लिख दिया हो, "यह वह राखी है जो यूगोस्लाविया ने...... ......" फिर और आगे सोचने लगा। कभी कभी बड़े आधार पर ऐसी ही घटनायें होती हैं और कभी कभी देश का

इतिहास भी बदल देती हैं। छोटे आधार पर क्या यह भी एक इसी प्रकार की घटना नहीं थी?"

कुछ ही पलों के भीतर ये सब भाव आये और अपने चिह्न छोड़ते चले गये। मैं अब एक विशेष स्थिति से जगा। मुझे अब form का ध्यान आया। मैंने थोड़े से फल उनकी ओर बढ़ा दिये और गद्गद् वाणी से केवल इतना ही निकला, "इन्हें आप रख लीजियेगा।"

कुछ पल हम निस्तब्ध बैठे रहे। इसके उपरान्त सुश्री केम्प बोलीं, "When I will inform my mother that I have adopted a brother here she will be very much pleased."

"आप की माता जी कहाँ हैं? मैंने पूछा।

"She is in America."

"आपकी माता जी हैं, यह बहुत सुन्दर बात है। कभी यदि मिल सका तो मैं उनके दर्शन करूंगा।"

"आपके पिता जी भी तो जीवित हैं?"

"हाँ।"

"सुश्री केम्प, वैसे तो कहने को बहुत से सम्बन्ध होते हैं, पर मेरे साथ सम्बन्धों की बात बड़ी अजीब सी है। आपको चाहे वह अजीव न भी लगे, पर इस देशवाले तो उसे सुनकर मुझे घृणा भी कर सकते हैं।"

"इस विषय में क्या तुम्हारे कोई अजीव विश्वास हैं?"

"केवल बात इतनी है कि मैं रक्त के सम्बन्धों को नहीं मानता। किसी भी सम्बन्ध के प्राण उसके निर्वाह में निहित होते हैं। दो व्यक्तियों के बीच में चाहे वे किसी देश, जाति अथवा उम्र के हों वास्तविक सम्बन्ध तो केवल उतना ही होता है जितना वे दोनों एक दूसरे के लिये अनुभव करते हैं।"

"बात तो ऐसी ही है।" सुश्री केम्प ने कहा और फिर आगे बोलीं "सम्बन्धों के प्रति मेरी माता जी का सदैव ही बड़ा उदार दृष्टिकोण रहा है। मेरे मित्रों को देखकर वे सदा ही प्रसन्न होती थीं।"

यह बात यहीं रह गई। मैंने बाहर देखा, आकाश में हल्के श्वेत और सुरमई बादल घिरे हुए थे और नन्हीं नन्हीं फुहारें पड़ रही थीं। मैंने टूटी फूटी रूसी भाषा में कहा, "देखिये कितना सुहावना मौसम है। चलिये कहीं बाहर घूमने चलें।" सुन कर हँस पड़ीं। बोलीं, "कहाँ चलना चाहिये ?"

"चलिये गंगा किनारे चलें।"

सुश्री केम्प जल्दी ही तैयार हो गईं। आज उन्होंने नीला चमकदार फूलों वाला रेशमी घुटनों तक का फ्राक पहना। यह वस्त्र एक नये फैशन का था बिल्कुल ऐसा नहीं जैसा कि अंग्रेज महिलायें पहनती हैं बल्कि कुछ थोड़ा Sleeping gown से मिलता जुलता। इसका रंग कुछ ऐसा था जो हल्के मेघों से भरी हुई सन्ध्या की छाया में आँखों को विशेष सुन्दर लगता था।

हमने एक सफेद घोड़े वाला तांगा लिया और साहित्यकार संसद की ओर चल दिये। संसद का रास्ता मेरे कमरे के सामने से ही निकलता है। मैं दो मिनट के लिये वहाँ रुका। अन्दर आकर एक प्रति 'महादेवी की रहस्य साधना' की ली और तांगे में बैठ कर सुश्री केम्प को उसे दे दिया। "यही वह पुस्तक है जो मेरे मित्र आपके लिये छोड़ गये हैं। इसमें महादेवी जी की कृतियों का आलोचनात्मक अध्ययन हैं। इसका नाम है—महादेवी की रहस्य साधना।"

"इसमें उनकी कविता को criticize किया है ?"

"कहीं कहीं; पर साथ ही लेखक ने उनकी कविता में अन्तर्निहित सौंदर्य पर प्रकाश डाला है, क्योंकि लेखक की राय में आलोचक के दो कर्तव्य हैं, किसी कृति में कलाकार ने कितनी कला और सौंदर्य छिपाया है उस पर प्रकाश डालना और दूसरे कुछ त्रुटियों की ओर संकेत करना। आलोचक एक पाठक ही होता है, एक विशिष्ट पाठक। वैसे यह बात सच है कि इस पुस्तक का लेखक श्रीमती वर्मा का बहुत बड़ा Admirer है।"

"श्रीमती वर्मा के साथ यह बड़े सौभाग्य की बात है कि उन्हें young generation से इतना सम्मान मिला है। दूसरे अधिकतर देशों में ऐसा रहा है कि young generation अपने से पीछे वाले कलाकारों का अधिक सम्मान नहीं कर सकी।"

"श्रीमती वर्मा के साथ यह आश्चर्य-जनक सा ही है कि उन्हें young generation से बहुत सम्मान मिला है। व्यक्तिगत रूप में इनके सैकड़ों भक्त हैं जो इनको श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं पर Old generation से उन्हें सम्मान नहीं मिला।"

"ऐसा क्यों है?"

पुरानी पीढ़ी ब्रजभाषा स्कूल से सम्बन्धित थी। कोई भी अस्तित्व जब अपनी जड़ें हिलता देखता है तो दूसरे विरोधी Challenge करने वाले स्कूल को सहन नहीं कर पाता, पर कुछ उदार हृदय ऐसे होते हैं कि विरोधी स्कूल की Genuine merits को स्वीकार भी कर लेते हैं। पर ब्रजभाषा स्कूल के कर्णधारों को ऐसा उदार हृदय नहीं मिला था; इसलिये वे विरोधी स्कूल की genuine merits को भी नहीं पहचान सके। इसलिये सम्मान का फिर प्रश्न ही नहीं उठता। हमारे देश का यह एक general character ही रहा है, कि किसी भी नवीन धारा को चाहे वह कितनी ही कल्याणकारी क्यों न हो अपनाने में हम अनुदार रहे हैं। पर फिर भी नई पीढ़ी ने इनके काव्य में निहित मौलिकता, कला और भाव-सौंदर्य को पहचाना और फिर सम्मान भी दिया। यह सम्भव है नवीनतम पीढ़ी इनको इतना आदर सम्मान न दे सके, पर फिर भी इनके काव्य में कुछ ऐसा है कि चिन्तन-शील पाठक किसी भी देश में और किसी भी युग में इनका आदर करेंगे।"

इस बीच वे 'रहस्य साधना' के पन्ने पलट रही थीं। उनकी दृष्टि 'सन्ध्या की छाया में' वाले परिच्छेद पर ठहर गई और उन्होंने परिच्छेद का शीर्षक पढ़ने का प्रयत्न किया। मैंने कहा यह है 'सन्ध्या की छाया में।'

'सन्ध्या की छाया में' लेखक की महादेवी जी से प्रथम भेंट हुई थी। उसमें उन्होंने लेखक के हृदय पर जो impression छोड़ा उसी का वर्णन इसमें है।

फिर वे आपका समर्पण देखने लगीं। मैंने मुस्कराकर कहा, "यह उसी प्रकार का Dedication है, जैसा आपने अपनी पुस्तक Traditions and rituals of southern slavs में दिया है। जैसे आपने नाम के initials को लेकर लिखा है 'To,P.P. ऐसे ही इन्होंने लिखा है, 'सा' को।"

"यह 'सा' कौन हैं ?"

'इसे कोई नहीं जानता। मैं भी नहीं जानता। ऐसा लगता है लेखक ने जहाँ इस पुस्तक में पाठकों के लिये महादेवी जी के रहस्यवाद को सुलझाने का प्रयत्न किया है, वहाँ अपने रहस्य में उन्हें उलझा लिया है।" इस पर थोड़ी हँसी रही। पर पल भर बाद ही सुश्री केंप कुछ उदास हो गईं और बोलीं, "मैंने अपनी पुस्तक जिसे dedicate की है वह एक मेरा सहयोगी था। उसने अपने को गोली मार ली।" इतना कह कर वे पल भर रुक गईं। मैं आश्चर्य विस्फारित नेत्रों से देखता हुआ व्यथापूर्ण स्वर में बोला उठा; "ओह, कैसे ?"

बोलीं, "वह एक बड़ा प्रतिभाशाली हंगेरियन भूगर्भ शास्त्री Geologist था। वैज्ञानिक था। जब पिछली लड़ाई में जर्मनी ने हंगरी को हड़प लिया तो उसने अपने देश की राष्ट्रीयता को plead करते हुए कुछ लेख लिखे। गवर्नमेन्ट ने उससे अपने प्रति Loyal रहने की कसम लेनी चाही। फिर उसे जिस म्यूजियम में वह था वहाँ से dismiss कर दिया। यह असह्य अपमान था। घर आकर उसने अपने को गोली मार ली। हमने वर्षों तक साथ साथ काम किया था। मेरा विषय Enthrography था। मैं यह पुस्तक लिख रही थी। Museum से तथा दूसरी जगहों से बहुत से matter की आवश्यकता होती थी। वह उस सभी की व्यवस्था कर देता था। उसी के कारण

यह पुस्तक इस रूप में आ सकी। इस पुस्तक का Dedication उसी को है।"

वातावरण व्यथापूर्ण हो गया था। चारों ओर की निस्तब्धता, संध्या, और आकाश से आती हुई रिमझिम फुहारों ने इस उदासी को और भी घनीभूत कर दिया हो, ऐसा लगा। इसमें घोड़ों के पैरों का खटखट् कठोर स्वर ऐसा लग रहा था जैसे इस उदास निस्तब्धता का हृदय चीरे डाल रहा हो। बहुत से प्रश्न आये—जीवन क्या है? मानव क्या है? जीवन की गहराई में क्या है? कुछ मिनटों तक कोई किसी से नहीं बोला। अब रसूलाबाद बीत कर गंगा तट पर समाप्त होने वाली सड़क का ढाल आ गया था। इसी समय इस गम्भीर उदासी को अपनी हँसी से चीरती हुई सुश्री केंप बोलीं,
"Look how beautiful looks this slope,"

"हाँ, लगता है जैसे पथ अनन्त की ओर जा रहा हो।"

ताँगा रुक गया। सामने हलके हर-हर स्वर से उर्मिमयी गंगा बह रही थी। दूर दूसरे किनारे को छूते हुए से क्षितिज पर से घटा उमड़ रही थी। बायीं ओर बादलों के पीछे से संध्या अपना अरुणिम प्रकाश फेंक रही थी. और कुछ बादलों के छोर स्वर्णिम तथा अरुणिम हो गये थे। और दाँयी ओर था 'साहित्यकार संसद्' का प्राचीर।

मैं और सुश्री केंप धीरे-धीरे आगे चलने लगे और किनारे पर उस स्थान पर आ कर खड़े हो गये, जहाँ गंगा की लहरें हमसे लगभग एक फिट की दूरी पर होंगी। मैंने गंगा के विशाल वक्षस्थल पर तैरती हुई विभिन्न नावों की ओर संकेत कर कहा, "ये सामान ढोने की बड़ी नाव है, यह पालदार नाव है, ये छोटी डोंगियें हैं, और वह दूर बालू के तट पर कुछ लोग मछली पकड़ रहे हैं।"

"ऊँ हूँ! और यह क्या है?" गंगा तट पर एक देवालय की ओर संकेत कर उन्होंने पूछा।

"यह मन्दिर है—राधाकृष्ण का मन्दिर। कृष्ण का नाम तो आपने सुना होगा ?"

"ऊँ हूँ।"

"और राधा ? जानती हैं राधा कौन थी।"

"नहीं।"

"राधा थी कृष्ण की प्रेमिका। वैसे तो कृष्ण सुन्दर थे, कलाकार थे, उनको प्रेम करने वाली बहुत थीं, पर जिसे वे भी प्रेम करते थे वह थी राधा। राधा से उन्होंने विवाह नहीं किया था। राधा उनकी प्रेमिका थी। आदर्श प्रेम का भारतीय conception राधा-कृष्ण-प्रेम-कथा में ही निहित है।" हम ये बातें करते-करते किनारे-किनारे दाँयीं ओर संसद् के मार्ग पर आये। मेरे पैर अपने आप ही उस ओर मुड़ गये। ऊपर चढ़ कर हम संसद् के महादेवी जी वाले plot पर आये। सुश्री केंप ने उस plot से लगे हुए मन्दिर की ओर संकेत कर पूछा, "यह भी मन्दिर है ?"

"हाँ, यह शिव का मन्दिर है। पुजारी बैठा हुआ कथा बाँच रहा है। आज पूर्णिमा है न। यही इसकी जीविका का साधन है। गाँवों में एक नहीं बहुत से आदमी इन धार्मिक तिथियों सम्बन्धी कथा कह कर अपना पेट पालते हैं।"

"यह कथा क्या है ?"

"पुराण की कोई कहानी, कि हमारे ancestors ने इस तिथि पर ऐसा किया था, बस यही।" अब हम महादेवी वाले plot के कोण पर आ खड़े हुए थे। यह तो आप भी जानते हैं कि पहले तो संसद् की भूमि का यह plot सबसे अच्छा भाग है और फिर वह कोना उस plot का सबसे अच्छा भाग। इस कोने पर खड़े होकर गंगा की छवि, सूर्यास्त की शोभा और चारों ओर का सब कुछ, एक अद्भुत सौंदर्य से भरा लगता है। मैंने क्षितिज की ओर संकेत कर सुश्री केंप से रूसी

भाषा में ही कहा, "कैसा सुन्दर दृश्य है।" और सुश्री केंप ने रूसी में ही उत्तर दिया, "बहुत!"

फिर इँगलिश में कहने लगीं, "यह तो प्राकृतिक सौंदर्य है, पर इतना ही सौंदर्य वहाँ भी होता है जहाँ श्रमिक मिलकर उत्पादन का कार्य करते हैं।"

"हाँ, क्यों नहीं।"

छोटी-छोटी नन्हीं-नन्हीं बूंदें पड़ने लगीं। सामने एक boat किनारे पर आ लगी थी। मैंने पूछा, "Boating के लिये चलियेगा।"

"देखो गहरी घटा घिर रही है, और कुछ देर भी हो रही है। आज चाँदनी भी तो नहीं खिलेगी। देखो न, कितने गहरे बादल घिरे हुए हैं। फिर किसी दिन आयेंगे।" बात करते ही करते बूंदें घनी हो गईं। सुश्री केम्प ने अपना छाता खोल लिया और मुझसे बोलीं, "छाया में आ जाओ।"

"नन्हीं-नन्हीं बूंदों में मुझे भीगना अच्छा लगता है।" मैंने कहा।

"लगता तो मुझे भी बहुत अच्छा है, पर यह घर के आंगन में ही हो सकता है, बाहर मुझे लोग इस तरह भीगता देख लें तो हँसे न?" मैं हँस पड़ा। हम ऊपर संसद् भवन की ओर चल दिये। रास्ते में मैंने 'कमल जलाशय' दिखाया, फिर हम ऊपर आये। संसद् भवन के द्वार के दोनों ओर बीसियों गमले रखे थे। मैंने उनकी ओर संकेत कर कहा, "ये विभिन्न प्रकार के फूल पौधे हैं—लौंग, इलायची, पान तथा सुपारी इत्यादि के पेड़! श्रीमती वर्मा इन्हें Globe nursery Calcutta से लाई थीं।"

"तो तुम मुझे कहाँ ले आये?" सुश्री केम्प ने चौंक कर पूछा।

यही वह स्थान है जिसके लिये मैं कहा करता था, साहित्यकार

संसद्—यह संस्था साहित्यिकों को सभी प्रकार की उचित सुविधा देने के लिये है।

"अच्छा"

इतने में निराला जी का पौरुष स्वर कान में पड़ा और द्वार की ओर संकेत कर उन्होंने कहा, "इस ओर से अन्दर आ जाइयेगा।" हम अन्दर चले गये। निराला जी बैठने के लिये कुर्सी की व्यवस्था करने लगे, क्योंकि वे सोच रहे थे सुश्री केम्प को फर्श पर बैठने में कठिनाई होगी और विशेष कर इसलिये कि आज उन्होंने फ्राक की तरह कोई चीज पहन रखी थी। मैंने कहा, "हम नीचे ही बैठेंगे।" और सुश्री केम्प को भी इसमें कोई आपत्ति नहीं थी। अन्दर सुन्दर Persian carpet और काश्मीरी कालीन बिछा हुआ था, और उसी कमरे के एक भाग में निराला जी का पलंग बिछा था। हम नीचे फर्श पर बैठ गये। नौकर ने बिजली जला दी। सभी रंग उस प्रकाश में चमक उठे। निराला जी हमारे सामने बैठे थे—विशाल, स्थूल-काय महन्त की तरह, अपने भव्य व्यक्तित्व की किरणें बखेरते हुए एक शांत गम्भीर, लघुकाय हिमाचल की भांति स्थित मुद्रा में। उनके तेजस्वी चमकीले विशाल नेत्रों की स्थिति अब भी बता रही थी कि वह कोई महान् कलाकार है। निराला जी प्रतीत हो रहे थे उस विशाल चट्टान की भांति जिसने निरन्तर लहरों के थपेड़ों की उपेक्षा की हो, ऊपर से सदा की भांति स्थित और अटल, चाहे वह अन्दर से चूर-चूर हो गई हो। उन्होंने केवल एक अंगोछा ही पहन रखा था। कदाचित् ही कभी इस ओर उनका ध्यान जाता हो। शरीर की व्यवस्था तथा प्रसाधन का भाव ही जैसे अब उनमें नहीं जगता। पर यह और भी आश्चर्य की बात है कि वे इस अव्यवस्था में भी सुन्दर लगते हैं। मैंने सुश्री केम्प से कहा, "ये महाकवि निराला जी हैं हमारे साहित्य की विभूति।"

"जिस हिन्दी कवि का नाम मैंने सब से पहले सुना था और

जिसकी कविताओं का अंग्रेजी अनुवाद मैंने सब से पहली बार पढ़ा उस कवि से मिलकर मुझे अतीव प्रसन्नता हुई," सुश्री केम्प ने कहा।

"हम असभ्य, असंस्कृत, जंगली; नंगे बदन, नंगे पाँव हम से मिल कर भी किसी को प्रसन्नता हो सकती है," निराला जी बोले। मैंने निराला जी को बताया कि सुश्री केम्प हिन्दी पूर्णतया नहीं समझतीं। सुश्री केम्प को मैंने निराला जी की बात का अनुवाद कर दिया तो वे तुरन्त बोलीं, "No, not so. It all looks beauiful." "What is beautiful in India is the nakedness" निराला जी ने कहा। निराला जी की अब तक बातें बिल्कुल एक स्वस्थ मनुष्य की बातें थीं, उस मनुष्य की जिसका मन मस्तिष्क शरीर तीनों ही स्वस्थ हैं। मैं अपने मन में बार बार यही दोहराता रहा : What is beautiful in India, is the nakedness. भारत की गरीबी और गरीब जनता की अर्द्धनग्नता पर इससे सुन्दर नहीं कहा जा सकता था।

यह बात सब इतनी जल्दी हो गई थी कि मैं सुश्री केम्प का परिचय देना ही भूल गया था। मैंने निराला जी से कहा,

"ये मिस पी० एम० केम्प हैं। इलाहाबाद यूनिवर्सिटी में रूसी भाषा की अध्यापिका हैं। जन्म से यूगोस्लाव हैं, नागरिकता से इंगलिश और कर्म से भारतीय।"

निराला जी बोले, "मैं भी एक बार रूस गया था। मास्को में वहाँ के विद्वानों के मध्य अपनी कविता पढ़ी थी। चार बार इंगलैंड जा चुका हूँ।" इसी प्रकार निराला जी बहुत देर तक बोलते रहे। उन्होंने जो कहा उसका सार इस प्रकार है।

"गीतांजलि आपने पढ़ी होगी। वह मैंने ही लिखी थी। वह मेरी Premature attempt थी। पर रवीन्द्रनाथ के नाम के नीचे छपी। हमारे हजारों अंग्रेजी में, बंगला में works हैं। उन सब पर नाम और फोटो जाता था रवीन्द्रनाथ टैगोर का; पर वे हैं मेरे ही।

शेली और कीट्स में शेली का नाम भी आपने सुना होगा।

शेली भारतीय नाम है। वे हमारी कवितायें हैं, जब मैं दो वर्ष का बच्चा था।

हमारी लाखों करोड़ों रुपये की सम्पत्ति है और करोड़ों रुपये का व्यापार है और इसका अधिकांश भाग विदेशों में है। इस इलाहाबाद में ही हमारे आठ दस बँगले हैं। यह बँगला भी हमारा ही है। जहाँ महादेवी जी रहती हैं वह भी हमारा ही बंगला है।"

ये सब पागलपन की बातें निराला जी गम्भीर भाव से हो कर रहे थे। कोई उनके चेहरे के भावों से तथा उनके बातचीत के ढंग से यह नहीं कह सकता था कि इस व्यक्ति के मस्तिष्क की वर्णनिधि उलट गई है, क्योंकि मैंने देखा वे सुश्री केम्प से यह तक बता रहे थे कि दर्रे दानियाल में होकर वे कैसे मास्को पहुँचे।

अपने इस पागलपन के बीच वे कभी कभी ऊंची-ऊंची बातें भी कर जाते हैं। एक जगह जब वे रवीन्द्रनाथ; शेली और अपनी बात कर रहे थे तो बोले, There is no difference between man and man. What makes him superior or inferior is the manifestation of his genius.

I have read Aristotle Plato, Kant and Hegel and I have the spirit of Vivekanand in me.

English is foreign language. I can not speak in English I do not speak in English I fail to speak in English"

इस प्रकार पौन घन्टे तक निराला जी धारा-प्रवाह अंग्रेजी बोलते रहे। सुश्री केम्प अधिकतर सुनती ही रहीं। निराला जी बोले, "मैं आपका किस तरह स्वागत करूं। यहाँ तो इस समय कुछ है नहीं। मैं एक दिन आप को अपने यहाँ निमन्त्रित करूंगा। आप बताइये मिस केम्प आप अंग्रेजी खाना पसन्द करेंगी या भारतीय ?"

"भारतीय।" सुश्री केम्प ने कहा।

मैंने इस समय निराला जी से कहा, "आप अपना कोई गीत सुनाइये।" निराला जी मुस्कराये—जैसे पूर्व में नव प्रभात सिहर

उठा हो। निराला जी अब कम हँसते हैं और मुस्काते भी नहीं; पर उनकी मुस्कान उनके चेहरे की निश्छल रेखाओं में दिव्याभा का फूल सा खिला देती है। वह मुस्कान एक पल भर की थी। लहर की तरह आकर विलीन हो गई और अपनी एक करुण छाया छोड़ गई। निराला जी ने आलाप लेकर अपने गीत के स्वर उठाये "तुमने करुणा की किरणों से......" एकदम वातावरण सजीव हो उठा। अपनी मधुर वाणी से बंधे हुए स्वर में निराला जी अपनी काव्य-कला को संगीत-कला में बाँधते रहे। कुछ ही क्षणों में ऐसा लगने लगा जैसे वातावरण में करुणा की धारा प्रवाहित हो उठी हो। हम मंत्र-मुग्ध की तरह देखते रहे, सुनते रहे। गीत समाप्त हुआ जैसे जादू का रेशमी धागा टूट गया हो। आत्म-विभोर निस्तब्धता के बीच निराला जी बोले,

"Do you like Indian music ?"
"Yes, I like it very much."
"Then let me sing you an Indian song."

निराला जी ने कहा और उन्होंने पक्के राग में रामायण का वह मंगलाचरण आरम्भ किया "रामचन्द्र कृपालु भज मन ....." पंद्रह मिनट तक हम उनकी राग-मूर्च्छना में डूबते उतराते रहे। फिर गीत समाप्त हुआ जैसे किसी मायावी ने अपना मोह-जाल खींच लिया हो। उस निस्तब्धता के बीच हम उठे, घर चलने के लिये। बाहर घोर अंधकार था। हलकी-हलकी बूंदें पड़ रहीं थीं। टार्च किसी के पास नहीं थी। मैं सुश्री केम्प का हाथ पकड़ कर आगे उस अंधकार के समुद्र को पार करता हुआ चला। निराला जी कहने लगे, "मैं आगे चलूंगा।" मैंने उन्हें बहुत समझाया, "नहीं आप यहीं रहिये। हम ठीक चले जायेंगे," पर वे माने नहीं। साथ साथ आते रहे। सीढ़ियें पार कर हम गंगा तट पर आ गये। दो मिनट वहाँ हम रुके, अंधकार वारिधि के बीच दुग्ध धवल गंगा हर-हर स्वर से बही जा रही थी।

वहाँ का सब कुछ ही रहस्यमय-सा लग रहा था। उस वातावरण में विदा के समय महादेवी जी के अभाव का अनुभव हमने किया।

हम ताँगे में बैठकर चल दिये। निराला दो पल खड़े हमें देखते रहे फिर वह स्थूल-काय अर्द्धनग्न शरीर धीरे-धीरे अंधकार में खो गया।

बादलों के पीछे से आने वाली चांद की हलकी छाया के नीचे सुन-सान लम्बी रहस्यमयी सी सड़क की छाती पर घोड़ों के पैरों की आवाज करुण स्वर सा जगाने लगी। चारों ओर ऐसा लगा जैसे एक प्रकार की melancholy घुल गई हो। यह बाहर की थी या अपने मन की और प्राणों की निश्चय करना कठिन है।

सुश्री केंप निराला जी के विषय में कहने लगीं, "He is a very handsome poet, kind hearted and hospitable. But he talks sometimes all sorts of cynical things." मैंने उन्हें समझाया कि निराला जी की मस्तिष्क की वर्ण-निधि में अव्यवस्था आ गई है। यह उनके मन पर हुए अमित प्रहारों का प्रभाव है। आप मनोवैज्ञानिक आधार पर बताइये निराला जी ऐसा बातें क्यों करते हैं? इस पर सुश्री केंप कहने लगीं, "शैली और कीट्स अपने युग में सबसे अधिक घृणित व्यक्ति समझे जाते थे। उन्हें कोई सम्मान नहीं मिला। निराला जी के साथ भी कदाचित् ऐसी ही बात है, इसीलिये शैली और कीट्स की बातें करते हैं। और, रवीन्द्र नाथ टैगोर का सा सम्मान पाने की भूख कहीं इनके unconscious plane में है, इसीलिये ये टैगार की बातें करते हैं और कहते हैं कि मैंने ही सब कुछ लिखा है। धन की भी ऐसी ही भूख उनके unconscious plane में रह गई है और साथ ही उन्होंने इतना दर्शन पढ़ा है; उसमें उलझ जाने से कहीं उनके मस्तिष्क में व्यक्तित्वों के पारस्परिक मिश्रण की बात है। इसी से वे कहते हैं शैली मैं ही था और रवीन्द्रनाथ भी मैं ही था।

There lingers in his mind an idea of intermingling of personalities."

"इस जीवन के विषय में कुछ कहा नहीं जा सकता, आज हम क्या हैं, पता नहीं हम कल क्या हो जायें," मैंने कहा।

"हाँ, यह ठीक ही है, नागर, मेरी उम्र अभी चालीस की भी नहीं है, पर मेरे तीन प्रकार के जीवन रहे हैं।"

"एक साथ?"

"नहीं एक-एक करके। किसी दिन तुम्हें बताऊंगी।"

"आप अपने संस्मरण क्यों नहीं लिखतीं?"

"वह तो मुझसे नहीं हो सकेगा।" उदास और गम्भीर होकर सुश्री केंप ने कहा और फिर बोलीं, "नागर! तुम पूरे भारतवर्ष में घूमे हो।"

"घूमा तो मैं बहुत हूँ, पर पूरी यू० पी० ही घूमा हूँ अभी। पहाड़ मैं गया हूँ—मंसूरी, नैनीताल। पैदल घूमने का ही मुझे शौक था।"

"नागर, मैं बहुत घूमी हूँ। यह कदाचित् इसी का प्रभाव है कि मैं पैदा ही Train में हुई थी।" इस पर सुश्री केम्प को हँसी आ गई। फिर बोलीं,

"मेरी मा लंकाशायर में यात्रा कर रही थीं, तभी मेरा जन्म हुआ। अब भी मेरी ambition घूमने सम्बन्धी ही है। अब तो तुम मेरे भाई हो, इस की पूर्ति मं मेरी सहायता तुम्हें करनी ही होगी।"

"क्यों नहीं, सभी तरह। मैं तो सदैव तत्पर हूँ, पर आपकी ambition है क्या।"

"मैं एक बार Arctic जाना चाहती हूँ।"

"क्यों?"

"Only to see the effect of snow and sky."

"लगता है आप चली जायेंगी ."

तांगा मेरे कमरे के सामने आ कर रुक गया। सुश्री केम्प उतर कर कमरे में आईं। कमरे में रखी हुई चीजों में उन्हें table lamp पसन्द आया। मैंने एक प्रति 'निराधार' की उन्हें दी। कमरे को देख कर कहने लगीं,

"You are just living as students live in foreign countries in small and sturdy rooms. I also used to live in such a room when I was of your age."

मैं उन्हें पहुँचाने घर गया। घर पर एक दो मिनट निराला जी के सम्बन्ध में बात करते हुये बताने लगीं, इस प्रकार इंगलैंड में भी बहुत से कवि पागल हो चुके हैं, Clare, Smart, William Blake और Gray में भी कुछ-कुछ ऐसा ही था।

"जीवन की abnormal परिस्थितियों में रह कर ही ये ऐसे हो जाते हैं," मैंने कहा। अब ९॥ बजने वाले थे। मैं विदा लेने लगा तो बोलीं, "अच्छा नागर, मुझे तुम्हारे साथ बाहर घूमने जाना अच्छा ही लगता है, पर आगे से तुम्हें एक वायदा करना पड़ेगा।"

मैंने कहा "क्या ?"

"कि तांगे वाले को तुम pay नहीं करोगे।"

"अच्छा चलिये, वायदा हो गया, बस।"

"हाँ, तुम यह क्यों भूल जाते हो, आखिर मैं तुम्हारी बड़ी बहिन हूँ।"

सश्रद्धा
शिवचन्द्र

६७

३० ए० बेली रोड
इलाहाबाद
१०।१०।४८

आदरणीय 'मानव' जी,

आपका २७।९ का पत्र मिला। उत्तर प्रति दिन प्रयत्न करने

पर भी नहीं दे पाया। ५ ता० को सुश्री केम्प देहली गई हैं। वहाँ वे रूसी राजदूत से मिलेंगी। उनसे उन्हें अपने यहाँके Russian Association के अंतर्गत कुछ सांस्कृतिक विनिमय के विषय में बातचीत करनी है। उससे पहले कई दिन तक उनकी तैयारी चलती रही। चारों ओर से चीजें इकट्ठी कीं। काम इतना था कि वे तीन ता० को दिल्ली जाने वाली थीं और पाँच को जा सकीं। परिस्थितियों में ही इतना उलझा रहना पड़ा कि कितने ही आवश्यक कार्य अब भी नहीं हो पाये। तार मैंने इसीलिये दिया था कि आप यहाँ आ जायें। छुट्टियों में यहाँ कुछ दिन रहें ! अच्छा लगेगा। दूसरी विशेष बात यह थी कि कलाकार परिषद् के अन्तर्गत जिसका उद्घाटन श्री पंत जी द्वारा हो चुका है, हम एक कवि-गोष्ठी रख रहे थे और यह निश्चय हुआ था कि वह आप के सभापतित्व में हो। आठ ता० की प्रभात में कटनी जाती हुई श्री शकुन्तला सिरोठिया जी यहाँ दुबे जी की अतिथि बनीं थीं। श्रीमती शान्ति एम० ए० ने भी आने की स्वीकृति दे दी थी। इन परिस्थितियों में ही मैंने तार दे दिया था। अब आप जब कभी भी आइयेगा तो आपको इस परिषद् में बोलना है। आपके लिये विषय रखा गया है "कला और कलाकार।" आशा है आप विषय के लिये अपनी स्वीकृति दे देंगे। परिषद् की शाखायें प्रत्येक नगर में जहाँ अपने मित्र हैं खोलने का विचार है।

पिछले दिनों महादेवी जी का स्वास्थ्य गिर गया था। वे कुछ बीमार भी थीं। अब ठीक हैं।

बच्ची के नामकरण के विषय में मैंने महादेवी जी से पूछा था तो हँसकर कहने लगीं, "किसी को भी बिना देखे तो नामकरण नहीं होता भाई।" फिर थोड़ी देर रुक कर बोलीं "नाम तो 'साधना' भी अच्छा है।"

"नन्हीं सी बलिका के लिये 'साधना' नाम बहुत भारी लगता है" मैंने कहा।

"हमेशा तो वह वैसी नहीं रहेगी, बड़ी होने पर उसे यह नाम बहुत अच्छा लगेगा।"

आजकल महादेवी जी बाढ़ पीड़ितों की सहायता में प्रयत्नशील हैं। जब बाढ़ आई और रसूलाबाद तथा आसपास के सैकड़ों आदमियों के घर-बार बह गये, तो बहुत से वे घर-बार पीड़ितों के लिये उन्होंने साहित्यकार संसद भवन खुलवा दिया था। उसमें वे लोग कुछ दिन रहे।

मैंने महादेवी जी से संसद के उद्घाटन के लिये पूछा, तो कहने लगीं "वास्तव में तो हमारा उद्घाटन हो गया।"

"कैसे?" मैंने पूछा। कहने लगीं, "यह संस्था तो गरीब पीड़ित लेखकों की है। यदि ऐसे स्थान पर चार पीड़ित व्यक्ति मिल बैठे तो उसका वही उद्घाटन हो गया। इसीलिये मैं तो जब इसमें बहुत से बाढ़ पीड़ित बे-घर-बार व्यक्ति रहने लगे, उसे ही उद्घाटन समझती हूँ।" मैं जल्दी ही उठ खड़ा हुआ। ये बरामदे में चली आयीं। मैंने उदास भाव से कहा :

"यह सभी के लिये दुःख की बात है कि आपका स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता।"

"अब तो यह शरीर सचमुच ही व्याधि-मन्दिर हो गया है। अपने से बाहर कोई चीज होती तो उनके द्वार पर फेंक आते और कह आते 'कि लो यह रखो अपनी धरोहर।' पर अब तो ऐसे ही चलना पड़ रहा है जैसे वे चला रहे हैं। अब तो कभी कभी हमारा मन सचमुच रोने को करता है, पर जहाँ पीड़ा में आदमी रोते हैं वहाँ हम हँसते हैं।" मैं प्रस्तर मूर्ति की तरह खड़ा सुनता रहा।

सुश्री केम्प यदि लखनऊ आईं, तो आप से मिलेंगीं।

सश्रद्धा

शिवचन्द्र

६८

३० ए. बेली रोड
इलाहाबाद
५।११।४८.

आदरणीय 'मानव' जी,

आप का ४।११ का पत्र मिला।

पिछले सप्ताह जीवन इतनी गति से बढ़ा है कि मैं प्रयत्न करने पर भी उसे नहीं पकड़ सका। कभी शांति और अवकाश के समय उन पलों को बाँधूंगा।

मैं दिल्ली गया था-सुश्री केंप को लन्दन के लिये विदा करने के लिये। यह आँसुओं भरी विदा भी भुलाई नहीं जा सकेगी। अब वे चली गईं। जाने वाले का क्या भरोसा लौटे या न लौटे। यहाँ प्रयाग में स्नेह के दो केन्द्रों के बीच जीवन चल रहा था। एक केन्द्र अब नहीं रहा।

मन भरा भरा है, और जीवन चारों ओर से इतना बँधा हुआ कि आपको सब कुछ लिख कर ही अपने मन को हलका कर सकूंगा। इस समय तो इतना ही कहूँगा: यह महिला अद्भुत है—एकदम अद्भुत! इसके जीवन की एक कहानी है, उस कहानी के चारों ओर एक रहस्य है और उस रहस्य का सार इतना ही है कि भारत में वे प्रेम के लिये आई थीं और प्रेम के लिये ही उन्होंने भारत छोड़ दिया।

शेष मिलने पर।

सश्रद्धा
शिवचन्द्र

६९

३० ए. बेली रोड
प्रयाग
२२।१२।४८.

आदरणीय 'मानव' जी,

आपका २०।१२ का पत्र आज मिला।

आपने इस पत्र में सुख दुःख की बात उठाई है। जिस व्यक्ति ने जीवन में बहुत सुख उठाया हो और बहुत दुःख भी तो फिर उस व्यक्ति की अनुभूति के तन्तु दोनों से इतने परिचित हो जाते हैं कि सुख सुख सा नहीं लगता और दुःख दुःख सा।

सुख लौटेगा क्यों नहीं ? अवश्य लौटेगा। कालाकर का कोई भी पल व्यर्थ नहीं जाता। रात्रि में सोने पर जब वह प्रभात में उठता है तो वह नहीं होता जो सोने से पहले था। अपने पिछले चार वर्षों को एक दुःस्वप्न की तरह भूल जाइयेगा। प्रकृति में हम देखते हैं कि जब कभी जितनी गहरी शून्यता और घुटन घिरी रहती है, उतनी ही जोर की आँधी आती है। एक बड़ा दुःख, एक कलाकार के लिये, एक बड़े ही सुख की भूमिका है, इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं।

उत्साह का तन्तु टूटा कहीं नहीं, खो गया है या यों कहूँ कि मन पर पड़े आघात ने ढक लिया है, पर समय मन के घाव को भर देता है। हाँ, यह मैं मानता हूँ उसका चिन्ह जीवन भर नहीं मिटता।

डा० रमेश का सब कुछ मेरे पास है। यहाँ रहकर उन्होंने कहानियों में संशोधन किया था। फिर सब चलती बार मुझे सौंप गये। सश्रद्धा

शिवचन्द्र नागर

७०

३० ए. बेली रोड
प्रयाग
२८ । १२ । ४८.

आदरणीय 'मानव' जी,

२५ । १२ का आपका पत्र मिला।

२३ । १२ की प्रभात में मैं 'श्री राहुल' जी से मिला था। आप की एक 'अवसाद' एक 'निराधार' तथा एक 'खड़ी बोली के गौरव ग्रन्थ' उन्हें दे आया था। 'रहस्य साधना' की तो एक भी प्रति शेष नहीं। राहुल जी आपको धन्यवाद भेजते हैं।

राहुल जी जरा विशालकाय हैं। इस व्यक्ति ने महान् साहित्यिक श्रम किया है इसमें कोई संदेह नहीं और परिश्रम किसी का भी व्यर्थ नहीं जाता। आज के साहित्यिकों में यह एक ऐसा साहित्यिक है जिसने सबसे अधिक लिखा है। पर सब कुछ देखते हुये यही कहा जा सकता है कि ये एक महान लेखक तो हैं, पर महान् कलाकार नहीं।

कांति जी आयेंगी। उनके हाथ २० महादेवी की रहस्य-साधना, १० खड़ी बोली के गौरव-ग्रन्थ ५ निराधार ५ अवसाद भेज दीजिएगा।

लौकिक सफलता तो केवल अवसर की बात है, पर जो साहित्य-साधना निष्काम पूजा-भावना से करते हैं, उनकी साधना निष्फल नहीं जाती, ऐसी मेरी धारणा है। यह माना कि किसी को यह सफलता जीवन में ही मिल जाती है और किसी को मृत्यु के उपरान्त और यह भी माना कि मृत्यु के उपरान्त वाली सफलता का उस व्यक्ति के लिये कोई मूल्य नहीं, पर साधक कलाकार मूल्य की अपेक्षा नहीं रखता। हीरा हो सकता है वर्षों तक अन्धकार के गर्भ में पड़ा रहे, पर किसी दिन उसकी किरणें अवश्य किसी की दृष्टि आकर्षित कर लेती हैं, और जब जौहरी उसे परख कर हीरे की संज्ञा दे देता है तो उस दिन से उसकी कोई भी उपेक्षा करने का साहस तक नहीं करता।

संसार में रहकर संसार के सामयिक मान दंडों के अनुसार चलना पड़ता है। यदि शाश्वत मान दंड समय से पीछे रह गये हैं और जीवन में उनका कोई उपयोग नहीं रह गया, तो उन्हें फेंक देना चाहिये, उसी तरह जिस प्रकार पुजारी अगले दिन प्रभात में देवता के चरणों से मुरझाये फूल फेंक देता है। आप अपने जीवन-देवता से रूठे हुये हैं, तभी तो उसके नित नवीन शृंगार में रस नहीं लेते। पर सच पूछिये तो आपको रस लेना होगा, अपने लिये नहीं तो दूसरों के लिये।

उचित-अनुचित, न्याय-अन्याय, पाप-पुण्य का Conception कभी शाश्वत नहीं होता। ये सभी सापेक्ष वस्तुयें हैं। एक ही बात जो

एक स्थान पर पाप है, दूसरे पर पुण्य समझी जा सकती है। मेरे लिये तो केवल नैतिकता का इतना ही Conception है कि जिसने कभी हमारे मन को ठेस नहीं पहुँचायी, उसके मन को कभी ठेस, व्यथा या पीड़ा नहीं पहुँचानी चाहिये, और हमारा जो कार्य समाज के लिये अहितकर है, वह पाप है।

थीसिस के कार्य पर आपने ध्यान ही नहीं दिया, इसीलिये रह गई, पर मैं समझता हूँ अब भी कुछ बिगड़ा नहीं। यह काम तो हो ही जाना चाहिये।

जब जीवन में क्रियाशीलता आती है तो सब कामों के लिये मन करता है और निष्क्रियता में डूबा मन कुछ भी नहीं कर पाता, मस्तिष्क कुछ भी नहीं सोच पाता, जीवन निष्प्राण सा हो जाता है। अब निष्क्रियता के चार वर्ष समाप्त हो गये समझिये। आप नवीन रूप से जीवन आरंभ करने की बात क्यों नहीं सोचते?

सश्रद्धा
शिवचंद्र नागर

७१

३० ए. बेली रोड
इलाहाबाद
२।२।४६

आदरणीय 'मानव' जी,

आप का पत्र तथा डा० देवराज जी की पुस्तक 'जीवन रश्मि' दोनों ही मिले; पर मुझे बड़ा ही संकोच है कि मैं बहुत दिनों से आपको पत्र नहीं लिख सका।

कलाकार तो सदा से मानव-समाज में नव चेतना और नव जीवन का संदेश वाहक रहा है। मैं नहीं समझता कि 'वादों' के वाद विवाद में फँस कर वह कैसे पनप सकता है चाहे वे 'वाद' राजनीति के हों अथवा साहित्य के। 'वाद' तो अंधकार की सीमायें हैं और चेतना

एक प्रकाश की भाँति है। प्रकाश के लिये कोई अंधकार की सीमा बंधन क्यों बने ? इसी प्रकार सदैव मेरा मन किसी भी प्रगतिशील आन्दोलन के साथ चलने को होता है; पर वह प्रगतिशील आन्दोलन यदि किसी विशेष पार्टी का है तो उसका सदस्य होना मुझे कभी नहीं भाया। इसीलिये मैं आज तक कई बार सोचने पर भी न तो समाज-वादी और न साम्यवादी पार्टी में ही अपना नाम लिखा सका। राजनीतिज्ञ तात्कालिक सत्य को लेकर चलता है और कलाकार चिरंतन सत्य को; फिर दोनों एक में कैसे मिल सकते हैं ?

फ्रांस की क्रांति के द्रष्टा और जन जन के मन में क्रांति-चेतना को प्रवाहित करने वाले वहाँ के कलाकार ही थे और उस क्रान्ति को मूर्त रूप देने वाले थे वहाँ के सैनिक और राजनीतिज्ञ !

एक तो वैदिक सूक्तों के निर्माण करने वाले ऋषि थे और दूसरे उन्हीं वेदों की ऋचाओं का पाठ कर के हवन करने वाले पुरोहित। उसी प्रकार का कलाकार और राजनीतिज्ञ का सम्बन्ध है। दोनों अपने अपने स्थान पर महान् हैं !

× × ×

प्रयाग तो आप जानते ही हैं कि आज भी कला और साहित्य का केन्द्र है। यहाँ रहने से मुझे ऐसा लगने लगा है कि कम से कम एक साहित्यिक को तो यहीं रहना चाहिये। आप को संभव है लखनऊ सुन्दर लगता हो और सुन्दर है भी; पर वह सुन्दरता उन लहरों की तरह है जिनमें उषा और संध्या के सौ-सौ रंग झिलमिलाते रहते हैं पर अपने भीतर का वहाँ कुछ भी नहीं होता, और इस प्रयाग का सौंदर्य अजन्ता की गुफाओं का सा सौंदर्य है। मैं सोचता हूँ कि यदि आप के जीवन की साधना साहित्य है तो आप को प्रयाग में ही अपना घर पर बनाना चाहिये। कुछ दिनों तक हो सकता है यहाँ किसी साहित्यिक को गलियों की धूल छाननी पड़े; पूँजीपतियों के शोषण का लक्ष्य बनना पड़े; पर फिर भी इसी शोषण के बीच जीवित रह

कर यहाँ के अनेक साहित्यिक महान् बने हैं और यहाँ की धूल ही ने अनेक मोतियों की आभा को और अधिक निखार दिया है।

महादेवी जी साहित्यकार संसद के सम्बन्ध में मौलाना आजाद से मिलने दिल्ली गई हैं। इधर मैं यूनियन के चुनावों में आवश्यकता से अधिक व्यस्त रहा, इस लिये उनसे भेंट नहीं हो पाई।

आप कभी यहाँ आइये न ? अब तो आपको प्रयाग आये काफी दिन हो गये।

सश्रद्धा
शिवचंद्र नागर

७२

३० ए. बेली रोड
इलाहाबाद
१।३।४६

आदरणीय 'मानव' जी,

मैं इधर यूनिवर्सिटी 'यूनियन' की गतिविधि में बहुत अधिक व्यस्त रहा, इसी से इस बीच कहीं भी कुछ नहीं लिख सका। उत्तर देने के लिये आपके कई पत्र हैं, पर फिर भी उन सबका उत्तर पहले इस पत्र को लिखे बिना नहीं दिया जा सकता।

राजनीति में व्यक्ति का व्यक्तित्व दल के व्यक्तित्व में समाहित हो जाता है इसका अनुभव मुझे जीवन में पहली बार अभी हुआ है। यहाँ मेरे एक मित्र श्री सुभाषचन्द्र काश्यप हैं। जहाँ तक प्रयाग विश्व विद्यालय यूनियन की राजनीति का सम्बन्ध है हम दोनों साथ साथ रहे हैं। अब पिछले दिनों जो चुनाव हुए, तो सभापति पद के लिये मैं भी उम्मीदवार था और सुभाष भी। आरम्भ में यह चुनाव लड़ने को मेरा विशेष मन नहीं था; पर फिर परिस्थितियों को अपने पक्ष में मुड़ा हुआ देखकर मैंने सुभाष के सामने यह बात रख दी। अन्त में मित्रों में

सर्वसम्मति से सुभाष का खड़ा होना ही निश्चय हुआ। मैंने अपना नाम वापिस ले लिया—बाह्य परिस्थितियों के कारण नहीं; बल्कि अपनी आन्तरिक नैतिकता के आवेश में। लोग कहते हैं कि राजनीति तो केवल अवसर का खेल है, उसमें नैतिकता के लिये स्थान कहाँ! पर मैं ऐसा नहीं मानता। मैंने अपनी सारी शक्ति सुभाष के पक्ष में लगा दी। हम विजयी हो गये। सुभाष के विजयी होने से मुझे उतनी ही प्रसन्नता हुई, जितनी शायद मुझे अपने विजयी होने पर होती।

प्रत्येक नये चुनाव के उपरान्त, नये सभापति के सभापतित्व में यूनियन का उद्घाटन होता आया है। सुभाष के सभापति होने के उपरान्त, एक दिन हम कई मित्र सभापति के कक्ष में मिले। निश्चय यह करना था कि इस बार यूनियन का उद्घाटन कौन करे; अतः अपने-अपने दृष्टिकोण के अनुसार लोगों ने नाम सामने रखे जैसे यदि कोई समाजवादी था तो उसने जयप्रकाश नारायण और अरुणा आसफ़ अली के और यदि कोई काँग्रेसी था तो उसने कुछ काँग्रेसी नेताओं के; जिनमें श्री अबुल कलाम आजाद के लिये लोगों का विशेष झुकाव रहा। मैं चुपचाप बैठा रहा। सुभाष ने मुझसे पूछा—

"तुम क्यों चुप हो, बताओ न अगर तुम किसी को ठीक समझते हो तो?"

मैंने कहा, "मैं तो यही सोचता था कि अब की बार यूनियन का उद्घाटन किसी साहित्यिक द्वारा होता, तो अच्छा था।"

"तो कोई नाम बताओ न!"

"महादेवी वर्मा यदि स्वीकार कर लें तो बहुत ही अच्छा हो।" उस दिन बात यहीं समाप्त हो गई थी। इसके बाद एक दिन संध्या को सुभाष के साथ घूमते घूमते बात हुई। उन्होंने मेरी बात मान ली। पर अब महादेवी जी के मानने का प्रश्न था।

मैं यह जानता था कि महादेवी जी कहीं बाहर सभा-सोसाइटियों में नहीं जातीं; अतः उन्हें यूनियन में लाना सहज काम नहीं।

एक दिन सन्ध्या को मैं और सुभाष महादेवी जी से मिलने गये। मिलने पर उनसे यूनियन का उद्घाटन करने की प्रार्थना की गई। सुनकर बोलीं, "मैं तो कहीं आती जाती नहीं, पंत जी (सुमित्रानन्दन पंत) यह काम कर देंगे।

"वे भी अत्यंत उपयुक्त व्यक्ति हैं, पर इस समय तो हम आप से ही चाहते हैं। अब तक यूनियन का उद्घाटन डा० झा को छोड़कर राजनीतिज्ञों द्वारा ही होता आया है। हो सकता है परतंत्र देश में राजनीति तथा राजनीतिज्ञों का प्रमुख स्थान रहा हो, पर स्वतंत्र देश में में ता वह स्थान साहित्यिक का होना चाहिये। इस वर्ष से, हम राजनीति के रँग में रंगे हुये यूनियन को साहित्यिक और सांस्कृतिक गतिविधियों से भरना चाहते हैं। अतः आप हमारी प्रार्थना स्वीकार कर ही लीजिये।" महादेवी जी सुनकर हँस पड़ीं। मैंने बात फिर आगे बढ़ा दी, "जो दिन तथा समय आप को ठीक पड़े, हम वही रख लेंगे, पर फरवरी के भीतर ही भीतर हम उद्घाटन कर देना चाहते हैं।"

अंत में महादेवी जी ने बात मान ली। मेरे लिये इससे अधिक प्रसन्नता की बात और क्या हो सकती थी?

कलाकार का जीवन असाधारण होने के कारण, उसको जानने के लिये जनता स्वाभाविक रूप से ही उत्सुक रहती है। फिर आप ही बताइये यदि कोई महान् कलाकार व्यक्ति के रूप में जनता से सदैव दूर रहा हो, तो उसके व्यक्तित्व के प्रति जनता में कितना आकर्षण और कौतूहल होगा? सामान्य जनता के लिये तो महादेवी जी का जीवन, व्यक्तित्व और साहित्य सभी कुछ रहस्यमय रहा है। केवल इसीलिये उनको देखने के लिये, उनसे मिलने के लिये, लोग कितने उत्सुक रहते हैं इसे महादेवी जी नहीं जानतीं, मैं जानता हूँ। ऐसी ही जनता की भीड़ प्रयाग विश्वविद्यालय में भी रहती है। उन सब को कितनी प्रसन्नता होगी इस विचार से मुझे अपनी व्यक्तिगत

प्रसन्नता में ऐसी अनुभूति हुई कि जैसे उन सब की सामूहिक प्रसन्नता मेरे मन की प्रसन्नता में समा गई हो।

२८ फरवरी को सन्ध्या के ६ बजे, महादेवी जी द्वारा उद्घाटन करने की बात निश्चित हो गई।

परसों से ही मैं प्रबन्ध में व्यस्त था। कल तो विशेष रूप से व्यस्त रहा। कल महादेवी जी द्वारा यूनियन का उद्घाटन करने की बात बिजली की तरह फैल गई।

दोपहर से ही मन ने चाहा जल्दी सन्ध्या हो तो अच्छा है। अन्त में पाँच बजे। सवा पाँच बजे मैं अपने एक मित्र की कार ले कर महादेवी जी को लेने पहुँच गया। महादेवी जी मिलीं तो लगा जैसे कुछ नाराज हैं। मुझे देखते ही बोलीं, "तुम लोग यह क्या गड़बड़ करते हो, अखबार में छपा है कि मेरे साथ यूनियन की कार्यकारिणी का फोटो होगा। मैं फोटो बोटो में सम्मिलित नहीं हो सकूँगी।"

"पत्र में देने से पहले यह फोटो की बात आपसे पहले पूछ लेनी चाहिये थी; पर उसमें क्या बात है, मुश्किल से दो मिनट लगेंगे। हमारे यहाँ यह एक प्रथा सा है कि जो उद्घाटन करता है उसके साथ यूनियन की कार्यकारिणी फोटो खिंचवाती ही है।"

"मुझसे इस प्रथा का पालन नहीं होगा। आप लोग अधिक गड़बड़ करेंगे तो मैं यूनियन में भी नहीं जाऊँगी।"

मेरा मन धक से रह गया। एक क्षण के लिये मैं निस्तब्ध और निश्चेतन सा खड़ा रहा। जैसे तैसे मैंने अपने को सँभाल कर कहा, "अच्छा! फोटो की बात रहने दीजिये। बाहर कार खड़ी है। मैं आप को लेने आया हूँ।"

"कार तुम ले जाओ। मैं अपने ताँगे से आऊँगी। तुम मुझे सवा छह बजे यूनिवर्सिटी कोर्ट की मीटिंग में से ले लेना। मैं तो वहाँ जाती भी न, पर आज तुम्हारे कुलपति का चुनाव है इसलिये अभी मैं तुरन्त वहीं जा रही हूँ।" मुझे लगा कि इस समय महादेवी जी शिवचन्द्र से

बात नहीं कर रही थीं, बल्कि यूनियन के प्रतिनिधि बनकर आये हुये शिवचन्द्र नागर से बात कर रही थीं। यदि यह बात मेरे मन में न आई होती, तो उनकी कठोरता देखकर सचमुच मैं रो पड़ा होता। फिर भी खाली कार लेकर लौटना मुझे अच्छा नहीं लगा। सैकड़ों विद्यार्थियों की भीड़ प्रतीक्षा में खड़ी थी और मैं लज्जावनत अपराधी की तरह खाली कार लिये हुये लौट आया।

फोटो वाले को बुला तो लिया ही था; अतः फोटो तो खिंचवाना ही पड़ा। पर वास्तव में वह न खिंचने के बराबर ही था। छह बजते बजते तो पूरा यूनियन हाल ठसाठस भर गया और बाहर के मैदान में भीड़ जमा होने लगी। सब मुझसे पूछने लगे, "अभी महादेवी जी नहीं आईं" और मैं उन्हें कुछ भी उत्तर न दे सका। छह बजे मैं फिर कार लेकर म्योर कालिज, जहाँ यूनिवर्सिटी कोर्ट की मीटिंग हो रही थी, पहुँच गया। अभी थोड़ी देर पहले वहाँ कोर्ट की मीटिंग के सामने कुछ Students Federation के लोग फीस विरोधी प्रदर्शन कर चुके थे। इसी से कोर्ट की मीटिंग विजयनगरम् हॉल में चारों ओर से द्वार बन्द करके हो रही थी। शीशों में से झाँक-झूँक कर अन्त में मैंने पता लगाया कि महादेवी जी उस भीड़ में कहाँ बैठी हैं। बड़ी मुश्किल से एक चपरासी ने जरा सा दरवाजा खोला। महादेवी जी उसी ओर कोने पर बैठी थीं। मैं भीतर घुस कर तुरन्त उनके पास तक चला गया और काँपते हुए स्वर में बोला।

"चलिये !" और वे तुरन्त मेरे साथ उठ कर चल दीं।

सवा छह का समय हो गया था! यूनियन के भीतर तो तिनका भर जगह थी ही नहीं और बाहर भी सैकड़ों विद्यार्थियों की भीड़ उत्सुकता से महादेवी जी की प्रतीक्षा कर रही थी। कार के रुकते ही, भीड़ ने चारों ओर से घेर लिया, महादेवी जी के दर्शन के लिये वह उमड़ पड़ी। भीड़ को हटाना बहुत ही कठिन था; फिर भी मैं तथा यूनियन की कार्यकारिणी के कुछ सदस्य भीड़ में से रास्ता

बनाकर महादेवी जी को अन्दर 'कमेटी रूम' में ले गये। वहाँ चाय का प्रबन्ध था। चाय हुई। महादेवी जी को कार्यकारिणी के सदस्यों का परिचय दिया गया। अब तक मैं उदास था, पर अब मेरी प्रसन्नता का बाँध भी हँसी में टूट पड़ा। महादेवी जी बैठी थीं—चाय की ओर से बिल्कुल उदासीन। मैंने उनके सामने रक्खे हुए प्याले में चाय बनाते हुए कहा, "चाय पीजिये।"

"बाहर इतने विद्यार्थी खड़े हैं वे सभी तो यूनियन के सदस्य हैं न। उन सब को छोड़कर तुम थोड़े से लोगों के साथ क्या चाय पियें?"

"ये थोड़े से भी तो उन सब के ही भेजे हुए प्रतिनिधि हैं, और यह विशेषाधिकार तो उन्होंने इन्हें दिया ही है। डैमोक्रैसी में ऐसे ही होता है।"

"भाई खाने पीने के मामले में मुझे ऐसी डैमोक्रैसी पसन्द नहीं" महादेवी जी ने हँस कर कहा। मैं भी हँस पड़ा और बोला,

"आप की बात तो ठीक है। फोटो खिंचवाने के विषय में आप की बात मान ली गई;पर चाय के विषय में हम लोग नहीं मानेंगे।"

जैसे तैसे महादेवी जी ने एक प्याला चाय पी। फिर भी अपना असंतोष वे प्रकट करती ही रहीं; "जब कोई राजनीतिज्ञ आता है तो भी यही फोटो, चाय और फूल-मालायें चलती हैं। यदि हम भी सब कुछ वही स्वीकार करने लगें,तो फिर एक साहित्यिक और एक राजनीतिज्ञ में अन्तर ही क्या रहा गया।"

बाहर भीड़ के धैर्य की सीमा का अन्त हो गया था, और अब वह चिल्लाने भी लगी थी। कुछ ही क्षणों में महादेवी जी के साथ हम लोग सभा-मंच पर पहुँच गये। करतलध्वनि से हाल दो मिनट तक बराबर गूँजता रहा। उस समय ऐसा ही लग रहा था जैसे इस भीड़ के महासमुद्र में प्रसन्नता, सम्मान और श्रद्धा का ज्वार आ गया हो और उस ज्वार की लहरें महादेवी जैसे महान् कलाकार के चरण-स्पर्श करना चाहती हों।

कुछ लड़कियों द्वारा राष्ट्रीय-वन्दना के उपरान्त 'यूनियन' के सभापति श्री सुभाष काश्यप ने महादेवी जी का स्वागत करते हुये तथा उन्हें अभिनन्दन-पत्र भेंट करते हुये कहा :—

"इस यूनियन का इतिहास सभी दृष्टियों से बड़ा महान् और उज्ज्वल रहा है। विश्व वंद्य बापू, पं० मदन मोहन मालवीय, पं० जवाहर लाल नेहरू तथा कृपलानी जी जैसे अनेक उच्चकोटि के राजनीतिज्ञ इस सभा-मंच से बोल चुके हैं। आज हमारे लिये सबसे अधिक प्रसन्नता की बात यह है कि उसी संस्था का उद्घाटन महादेवी जी जैसी महान कला-साधिका द्वारा हो रहा है। इस विश्व-विद्यालय के छात्रों की ओर से उनकी श्रद्धा के सुमनों के रूप में मैं यह अभिनन्दन पत्र भेंट करता हूँ।" यह कहकर श्री सुभाष ने अभिनन्दन पत्र पढ़ा—

"त्रिवेणी के तट पर बसे हुए प्रयाग विश्वविद्यालय में काव्य, संगीत और चित्र कला की त्रिवेणी रूप आज आप को अपने बीच पाकर हमारे आल्हाद की सीमा नहीं रही। हम हृदय से आज आप का अभिनन्दन करते हैं... "

अंत में श्री सुभाष ने पढ़ा "जापान के कवि नागूचो ने आप के लिए कहा था कि आप प्रयाग की गंगा हैं, पर हम उसमें इतना और जोड़ना चहाते हैं कि आप प्रयाग को गंगा ही नहीं; बल्कि, काव्य की गंगा; चित्र कला की यमुना और संगीत की अंतः-सलिला सरस्वती से युक्त साक्षात् त्रिवेणी हैं और हमें लग रहा है कि आज हम आप के संपर्क से पावन हो गये हैं।"

महादेवी जी को फूल मालाओं से लाद दिया गया था। उनको बिठा कर बीस मिनट से उन पर अभिनन्दनों की वर्षा हो रही थी। मैंने देखा, उनके गौरवर्णी मुख पर हल्की-सी संकोच की अरुणिमा छा गई थी। वे सहमी जा रही थीं; सकुचाई जा रही थीं, कदाचित् अब अभिनन्दनों का बोझ उनके लिए असह्य हो गया। मैं उस समय यही

सोच रहा था कि आज पता नहीं प्रयाग महिला-विद्यापीठ के एकांत शांत कोने में रहने वाली इस साहित्य-साधिका को इस अपार जनसमूह के बीच कैसा लग रहा होगा ? कहीं वे आज भी यही न सोच रही हों;

अश्रुमय कोमल कहाँ तू
आगई परदेशिनी री'

थोड़ी ही देर में खादी के वस्त्र परिधान किए वह चेतना-मूर्ति जिसके कंधों पर एक सुन्दर काश्मीरी श्वेत रंग का हल्का सा शाल पड़ा था, माइक के सामने भाषण देने के लिए खड़ी हो गई। सारे जन-समूह में शान्ति छा गई। महादेवी जी ने अपना भाषण प्रारम्भ किया—
"बहनों तथा भाइयो !

आपके सौहार्द और अपनी अनेक स्मृतियों से घिरकर मुझे आज प्रसन्नता और विस्मय की वैसी ही मिश्रित अनुभूति हो रही है, जैसी किसी यात्री को एक दीर्घकाल के उपरान्त अचानक और अनजाने ही अपने घर के द्वार पर पहुँचकर होती है। आपके समान ही इस विश्वविद्यालय की सीमा में मेरे जीवन के आदर्श ढले हैं, संकल्प बने हैं और स्वप्नों ने रूपरेखा पाई है। इस नाते आप मुझे अपरिचित न लग कर छोटे भाई बहन जान पड़ें, यह स्वाभाविक ही है।

जिस कार्य के लिए आपने मुझे आमन्त्रित किया है उसका पौरोहित्य तो कोई नवीन सन्देश देने का अधिकारी विशेष विज्ञ व्यक्ति ही कर सकता था। मैं तो जीवन की महान पुस्तक की वैसी ही जिज्ञासु विद्यार्थिनी हूँ जैसी एक युग पहले थी; अतः आपने मुझसे जीवन के सम्बन्ध में कोई तात्विक निर्णय पाने की आशा की होगी, तो आपको निराश ही होना पड़ेगा। किन्तु विद्यार्थी जीवन में प्राप्त सम्बल मेरी अब तक की यात्रा में कितना उपयोगी सिद्ध हुआ, आज मैं उसके महत्व को किस रूप में स्वीकार करती हूँ और उस रूप का कितना मूल्य आँकती हूँ आदि प्रश्न स्वाभाविक ही हैं।

आप जानते ही हैं कि हमारे देश में ज्ञान की परम्परा अत्यन्त भव्य और प्राचीन है। इस परम्परा को अविच्छिन्न रखने का श्रेय इस देश के तत्वदर्शी गुरु और साधक जिज्ञासुओं को ही दिया जा सकता है, जिनकी पारदर्शी दृष्टि को गहनतम अन्धकार और दुर्लंध्य बाधायें भी नहीं रोक सकीं।

राजनीतिक जय-पराजय तो संयोग-साध्य भी हो सकती है। इतिहास के आलोक में हम अनेक बार अत्यन्त प्राचीन जातियों को किसी छोटी भूल के कारण परास्त होते देखते हैं। किन्तु किसी देश की सांस्कृतिक जय-पराजय इस प्रकार संयोग-निर्भर नहीं रहती, क्योंकि वह जीवन की एक विशेषता न होकर उसके बुद्धि, हृदय, आदर्श आचरण, ज्ञानकर्म आदि का सम्पूर्ण परिष्कार-क्रम है।

सांस्कृतिक-दृष्टि से तभी कोई जाति पराभूत होती है जब उसके जीवन के मूल्य गिर जाते हैं, मान भ्रामक हो जाते हैं और अतीत के सारतत्व के आधार पर नये निर्माण के उपकरण खोजने वाली जिज्ञासा समाप्त हो जाती है। कभी-कभी राजनीतिक दृष्टि से पराजित जातियों की संस्कृति इतनी गम्भीर और अजस्र प्रवाहमयी होती है कि उसमें पराजय की क्लान्ति और जय का गर्व घुलकर एकरस हो जाता है।

जीवन की वाह्य व्यवस्था अथवा राजनीति तो वस्त्रों के समान पहनी उतारी जा सकती है। जिस प्रकार वस्त्र शरीर के नाप से काटे छाँटे जाते हैं, उसी प्रकार शासन नीतियाँ भी जीवन के विकास की दृष्टि से बनाई जाती हैं और जीवन जाति-विशेष के संस्कार-क्रम के साँचे में ढाला जाता है। यदि एक पौधे के लिये आवश्यक जलवायु, काटना-छाँटना आदि वाह्य उपचार है, तो दूसरा उसकी शाखा उपशाखा पल्लव आदि का विस्तार है जिसमें उसके जीवन-रस की अभिव्यक्ति होती है। जीवन रस के चुक जाने से सूखे पौधे के लिए वाह्य उपचार का प्रश्न ही व्यर्थ हो जाता है।

हमारे तत्वदर्शियों ने इस विकास शृंखला की हर कड़ी को भली भाँति परख लिया था। अतः उन्होंने प्रत्येक नवीन पीढ़ी को बुद्धि और हृदय की दृष्टि से स्वस्थ बनाने की क्रिया को सबसे अधिक महत्व दिया।

इस विशाल देश के पास ऐसी विराट संस्कृति है जिसमें ज्ञान विभिन्न विचारों का, भाव विविध अनुभूतियों का और कर्म अनेक कर्तव्यों का समन्वयात्मक संघात है। कहने की आवश्यकता नहीं कि ऐसी संस्कृति तत्वतः समन्वयवादिनी होगी और समन्वय के लिए संकीर्णता घातक है। विचारगत संकीर्णता और हृदयगत अनुदारता एक ऐसी अस्वाभाविक स्थिति उत्पन्न कर देती है जिसमें तत्वतः किसी विषय की परीक्षा सम्भव नहीं रहती। ज्ञान में बुद्धि की मुक्ति और भाव में हृदय की मुक्ति सहज करने के लिए ही हमारे यहाँ जिज्ञासु ब्रह्मचारी वर्ण और सम्प्रदाय की कठिन सीमा में नहीं बाँधा जाता था। वह जिस वातावरण में जीवन के मूल्यों का अध्ययन करता था उसमें शक्ति बुद्धि को प्रणति देती थी और ज्ञान साधना के निकट नतमस्तक रहता था। बुद्धि और हृदय का समन्वय ही ऐसा ज्योतिद्वार था जिसे पार कर कर्मक्षेत्र में प्रवेश सम्भव हो सकता था।

मेरे कथन का यह तात्पर्य नहीं कि हम हजारों वर्ष पीछे लौट जावें। यह तो सम्भव भी नहीं है और यदि सम्भव भी होता तो यह प्रत्यावर्तन किसी जीवित जाति का लक्षण नहीं कहा जा सकता। लक्ष्य इतना ही है कि संकीर्णता और अनुदारता दूर रखने की परम्परा हमारी शिक्षा की आधार शिला रही है। आज भी हमारी शिक्षा का उद्देश्य अपने आपको सांस्कृतिक दृष्टि से अधिक स्वस्थ्य और पूर्ण मनुष्य बनाना होना चाहिये; क्योंकि उसके अभाव में हम अपनी युग व्यापी विषमता से संघर्ष करने में असमर्थ रहेंगे।

गत् कई शताब्दियों से हम परन्तत्र रहे हैं और परिस्थितियों से उत्पन्न गतिरोध ने हमारी दृष्टि के सामने एक ऐसी कुहेलिका उत्पन्न कर दी है हम भविष्य की किसी रूपरेखा की कल्पना ही नहीं कर पाते

और ऐसी कल्पना के बिना निर्माण सम्बन्धी शक्ति और साधनों का प्रश्न ही नहीं उठता। हमारी स्थिति उस शिल्पी के समान है जो अपने औज़ारों से खेल कर ही शिल्प कर्म की कमी पूरी कर लेता है।

आज हम राजनीतिक दृष्टि से स्वतन्त्र हैं, किन्तु राजनीतिक स्वतन्त्रता अपने आप में निरपेक्ष्य साध्य नहीं है। बुद्धि को जड़ता से, संस्कृति को रूढ़िग्रस्तता से और जीवन को विषमता से मुक्ति दिलाने के लिये राजनीतिक स्वतन्त्रता साधन मात्र रहेगी। यदि हम उसी को साध्य मान लेने की भूल करेंगे, तो अपने जीवन को और भी संकीर्ण कारावद्ध कर लेंगे। पात्रता का प्रमाण किसी वस्तु के उपयोग की क्षमता में मिलता है, उसे पा लेने मात्र में नहीं। अच्छे से अच्छे अस्त्र के प्रयोग में यदि दिशा ज्ञान न रहे तो वह चलाने वाले के शरीर को भी आहत कर सकता है।

हमारे वर्तमान दृष्टिकोण की सबसे बड़ी त्रुटि यह है कि वह जीवन को आदर नहीं देता; अतः जीवन के मूल्यों के सम्बन्ध में भ्रम हो जाना अनिवार्य हो जाता है। हम ऐसे पुजारी हैं जो देवता से अधिक मुखर होने के कारण शङ्ख घड़ियाल को पूजने लगे हैं।

समय ने जैसी चुनौती आपको दी है, किसी अन्य युग के विद्यार्थी को कदाचित ही मिली हो।

हमारे विजय के शङ्ख-रव के नीचे जीवन का हाहाकार गूँज रहा है, हमारी मुक्त आकाश में फहराती हुई पताका के तले ही दुःख और अभावों का संसार बसता जा रहा है और हमारे स्वत्व के प्रासाद की छाया में जीवन के खण्डहर बिखरते जा रहे हैं।

भावी नागरिक के नाते आप के कर्तव्य और उत्तरदायित्व इतने विविध और गुरु हैं कि विशेष तैयारी के अभाव में उन्हें आप न सँभाल सकेंगे। आप को इसी क्षत-विक्षत मानवता को स्वस्थ शरीर देना है। इसी खण्डहर में जीवन का प्रासाद बनाना है और इसी राख को शस्यश्यामला धरती में परिवर्तित करना है।

ऐसे युग में उत्पन्न होना सौभाग्य और दुर्भाग्य दोनों हो सकता है। यदि आप अपने परिश्रम से इस विकलांग संसार को सुन्दर रूप दे जावें, तो ऐसे कठिन युग में उत्पन्न होना वरदान है और यदि आप अपने जीवन को भी परिस्थितियों के साँचे में ढलकर विरूप बन जाने दें, तो इसे अभिशाप ही कहना उचित होगा।

कृत्रिम उष्णता देकर और वर्षा आँधी से बचाकर जिन पौधों की रक्षा की जाती है, उनसे वे देवदारु के वृक्ष श्रेष्ठ हैं जिनकी जड़ें पर्वत के कठिन नीरस पत्थरों से संघर्ष करके अपनी स्थिति बनाये रखती हैं और जिनका मस्तक आतप और हिमपात, झंझा और बज्राघात सब कुछ सहकर भी मुक्त आकाश में उन्नत रहता है।

मेरा विश्वास है कि आप अपने युग की अग्नि-परीक्षा में उत्तीर्ण हो सकेंगे !

आपके शिक्षा-केन्द्र आपको जीवन के नव-निर्माण के साधन देने में अभी इतने समर्थ नहीं हैं जितने अन्य स्वतन्त्र राष्ट्रों के हो सकते हैं। वे जिस परतन्त्र युग की कठिन परिस्थितियों के साँचे में ढाले गए हैं, उसकी जड़ीभूत रेखायें उन्हें बाँधे हुये हैं। परतन्त्र देश का ज्ञान-वैभव न शासकों से सम्मान पाता है और न शासितों से; अतः यह दोहरी उपेक्षा उसे एक विशेष अस्वाभाविक स्थिति दे देती है।

आप बौद्धिक दासता से मुक्ति पाने के लिए जीवन-पुस्तक के खुले बिखरे पृष्ठों पर भी दृष्टि रखें। उससे बड़ी विशाल पर सरल भाषा में लिखी कोई अन्य पुस्तक नहीं है।

आप अपनी सम्मेलन सभाओं को भी पारस्परिक विचार-विनिमय, सौहार्द तथा सद्भाव के आदान-प्रदान का केन्द्र बनाने का प्रयत्न करते रहें। उन्हें राजनीतिक दलों के आदर्श पर चलने पर आप को वे सभी त्रुटियाँ अपनानी पड़ेंगी जिनके कारण समस्त मानव-समूह केवल स्वपक्ष और विपक्ष में बँट जाता है।

यह सत्य है कि जीवन के सब विभाग आज इस प्रकार मिल जुल गए हैं कि उनकी संघर्षशीलता अनिवार्य हो उठती है; परन्तु प्रयत्न का चरमविन्दु विकास ही रहना चाहिये। यदि हम अपनी समस्त क्रियाशीलता की परीक्षा कर उसे मानव-कल्याण की दिशा में मोड़ते चलें, तो यह कार्य इतना दुष्कर नहीं रहेगा। एक ही देवता के पुजारियों में श्रद्धा की मात्रा में अन्तर चाहे रहे, परन्तु विरोध का प्रश्न नहीं उठता।

आप को उत्तराधिकार में अतीत का सांस्कृतिक वैभव भी प्राप्त है और वर्तमान जीवन की अकिञ्चनता भी। आप अपने दायित्व का इस प्रकार निर्वाह करें कि यह दोनों सीमा-रेखायें एक दूसरे के समीप आ सकें।

एक यात्री दूसरे यात्रियों को शुभकामना के अतिरिक्त और सम्बल क्या दे सकता है। अतः "शुभास्ते पन्थानः" के साथ विदा लेती हूँ।"

भाषण समाप्त हो गया, पर उसकी गूंज अब भी मेरे कानों में बनी हुई है। यह महान् सन्देह क्या कभी भुलाया जा सकता है!

सश्रद्धा

शिवचन्द्र नागर

७३

३० ए० बेली रोड

इलाहाबाद

१६।३।४६

आदरणीय 'मानव' जी,

प्रयाग में आप के ये दो-तीन दिन सुंदर ही बीते। मेरा तो ऐसा विचार है कि आप को प्रयाग आ ही जाना चाहिये। मैंने किसी पुस्तक में पढ़ा था कि कलाकार को किसी एक स्थान में बँधकर नहीं रहना चाहिये। इस दृष्टि से आप का लखनऊ का एक वर्ष बहुत तो नहीं; पर फिर भी लगता है बहुत हो गया। आप के लखनऊ आ जाने पर

मुझे ऐसा लगा था कि यह आप के जीवन में एक नए जीवन का संचार करेगा और वहाँ का क्रियाशील रुपहला वातावरण आप के अंतर में उमड़े हुए उदासी के बादल चीर देगा जिससे सृजनात्मकता की शिराओं में नवीन रस का संचार होगा; पर लगता है आप के प्राणों की उस वृत्ति के अनुकूल या तो उस नगर का वातावरण नहीं या फिर वह नगर कलाकार की सौंदर्य-वृत्ति को तुष्ट करने में जितना अधिक समर्थ है, उतना ही उसे कलात्मक अभिव्यक्ति दिलाने में असमर्थ भी। मैं समझता हूँ इस कला और संस्कृति के केन्द्र प्रयाग में कदाचित् आप को साहित्य-सृजन का अनुकूल आधार मिल जाये।

आपके पत्र की प्रतीक्षा में—

सश्रद्धा
शिवचंद्र नागर

७४

२ ० ए० बेली रोड
इलाहाबाद
४।४।४६

आदरणीय 'मानव' जी,

आपका पत्र २।४ की मध्यान्ह में मिल गया था। इस बार आपने पत्र की प्रतीक्षा बहुत करायी!

परीक्षा के छह दिन शेष रह गये हैं। जैसे जैसे दिन पास आते जा रहे हैं, लगता है कोर्स की शुष्क और निर्जीव पुस्तकें प्राणवान होती जा रही हैं। पहले जिन पर धूल जमी देखकर भी उपेक्षा कर जाता था, अब उनसे डर लगता है। आप शायद हँसे, पर सच समझिये कभी कभी सुबह को जब थका-माँदा सो कर उठता हूँ तो सबसे पहले सिरहाने रक्खी हुई कूट-नीति की पुस्तकों को हाथ जोड़ने को मन होता है। अब तो यही डर लगा रहता है कि कहीं ये पुस्तकें रुठ न जायें।

परसों संध्या को महादेवी जी से मिलने चला गया था। उनसे मिलने पर जो प्रसन्नता होती है, उसे बहुत दिनों तक अपने में ही सीमित रखना मेरे लिये कठिन हो जाता है, इस लिये इस समय पुस्तकें एक ओर रख कर पत्र लिखने बैठ गया हूँ।

महादेवी जी का स्वास्थ इन दिनां अच्छा है और वे कुछ अधिक प्रसन्न भी हैं। मेरा स्वास्थ गिरा हुआ देख कर उन्होंने पूछा "क्यों कैसे हो ?"

"कुछ नहीं, अब तो चार दिन बाद परीक्षायें हैं। पुस्तकों में जुटा रहना पड़ता है।"

"तभी इतने थके हुये से लग रहे हो !"

मैं बोला, "अच्छा, आप अपने हाथ का एक चित्र तो यूनियन को दे दीजिए।"

"वह मैं दे दूँगी। महात्मा बुद्ध का एक बड़ा-सा चित्र ठीक रहेगा, पर यहाँ अभी इतना बड़ा कोई अच्छा कागज नहीं मिल रहा !"

"मैंने आपके हाथ का महात्मा बुद्ध का एक चित्र आत्माराम जी के यहाँ देखा था ! मुझे तो सुन्दर लगा !"

"वह तो जल्दी में उसके जन्म-दिन पर बनाकर उसे दे दिया था।"

"जल्दी तो आप सभी चित्र बना लेती हैं।"

"हाँ, चित्र बनाने में कोई अधिक देर तो लगती नहीं। जब तूलिका चल गई तो चित्र के पूर्ण होने में पन्द्रह मिनट से अधिक मुझे कभी नहीं लगे।"

"मैं समझता हूँ चित्रकार का समय ड्राइंग पर अधिक लगता है। रंगों से उसे सजीवता प्रदान करने में उतना नहीं लगता। आप रंगों का संबल लेकर ही चलती हैं, ड्राइंग का नहीं ?"

"हम अपने को चित्रकार ही कब कहते हैं ?" महादेवी जी ने सहसा एक हलका-सा प्रश्न मेरे सामने फेंक दिया; पर मुझे लगा कि जैसे उस प्रश्न का उत्तर भी उस प्रश्न में ही निहित है।

"यह निर्णय करना तो दूसरों का काम है। यदि हमें आपके चित्र भाते हैं तो हमें आपको चित्रकार कहने से कौन रोक सकता है?" मैंने कहा। फिर पूछा—

आपकी रंग योजना की शैली पश्चिमी शैली के अधिक निकट लगती है पर हर चित्र में Figures आपकी अपनी ही होती हैं। कोई यहीं का चित्रकार कह रहा कि आपके चित्रों पर शम्भुनाथ मिश्र का प्रभाव है?

"शम्भु नाथ जी तो मुझसे हमेशा मेरे चित्रों की रंग-योजना तथा रेखाओं के लिये झगड़ते रहे है। तब उनके प्रभाव की तो बात ही नहीं उठती। उनका रास्ता अलग है, मेरा अलग। उन्हें मोटी मोटी रेखायें भाती हैं, मुझे उकील ब्रदर्स की सी सूक्ष्म पर घनी नहीं, बल्कि कनुदेसाई की भाँति कम से कम। उन्हें गहरे रंग पसंद हैं और मुझे हलके।"

"पर क्या शंभुनाथ जी चित्रकला में आपके गुरु नहीं रहे? चित्रकला तो आप ने यहाँ इलाहाबाद में ही सीखी होगी?"

"नहीं, चित्रकला तो मैं बचपन में इंदौर में ही सीखती रही थी। हमारे गुरु एक मराठी सज्जन श्री सदाशिव राव थे। रंगों पर तो उनसे भी झगड़ा रहता था। एक बार एक चित्र में मैंने सीता जी को हलके गेरुए रंग की साड़ी पहना दी। शाम को जब गुरु जी आये तो बोले: सीता तो एक विवाहिता राजरानी है। उन्हें लाल साड़ी पहनाओ। उनके कहने से मैंने उनके सामने उस पर लाल रंग फेर दिया। पर जब वे चले गये तो फिर उस पर वही पुराना रंग चढ़ा दिया। इस तरह पता नहीं उस पर कितनी बार रंग चढ़े और उतरे। वह चित्र मेरे पास अब भी रक्खा है।"

इस पर मैं हँस पड़ा। मैंने पूछा, "अब बताइये। सीता जी की साड़ी पर आपका रंग है या गुरु जी का।"

"मेरा ही है।"

"आप के पास तो बहुत से रंग तथा बहुत से ब्रुश होंगे।"

"बहुत से कहाँ ? मेरे पास तो गिने हुए तीन रंग और दो ब्रुश हैं !"

"अच्छा !" मैंने आश्चर्य से कहा पर आपके चित्रों में तो बहुत रंग मिलते हैं।"

"बहुत कहाँ हैं। मेरे पास तो White, cina blue और Pink बस तीन ही तो रंग हैं। अन्य रंग इन्हीं को एक दूसरे में मिला कर बना लिये जाते हैं।"

"आपके पास ब्रुश कौन कौन से नंबर के हैं ?" मैंने पूछा।

"एक बारीक जीरों नंबर का और एक मोटा ५ का। बस !"

"उपकरणों की दृष्टि ये जिन आचार्यों ने चित्रकला को काव्य के बाद रक्खा था और दूसरा स्थान दिया था, आपके रंग और ब्रुश तो उनके लिये निस्संदेह चुनौती हैं। लगता है आप चित्र-कला को काव्य के स्थान पर विभूषित करने में प्रयत्नशील हैं। एक कवि को भी तो लेखनी और मसि-पात्र चाहिये। मैं समझता हूँ आप के तीन रंग और दो ब्रुश कदाचित् ही उस लेखनी और मसि-पात्र से अधिक भारी हों ?"

"रवीन्द्र नाथ टैगोर के बहुत से चित्र तो उनकी कविता लिखने वाली लेखनी से ही बने हैं। रवीन्द्र नाथ कभी-कभी कविता लिखते-लिखते जब उसे काट देते थे तो उस काटने में ही चित्र बना देते थे। लगता है जैसे रवीन्द्र की चित्र-कला उनकी कविता का विराम हो। उपकरणों की बात यदि हम जाने दें तो मूलतः सब कलायें एक ही हैं।" महादेवी जी ने कहा और मैं मंत्र-मुग्ध सा सुनता रहा। सहसा पास के चर्च में घंटे बज पड़े। मैं चौंक कर खड़ा हो गया। मैंने हाथ जोड़ कर विदा माँगते हुए महादेवी जी से कहा, "अच्छा अब मैं चलूं।"

"अच्छा, तुम्हें पढ़ना है, जाओ।"

मैं बाहर बरामदे में आ गया। महादेवी जी बाहर तक आईं। उन्होंने आप के विषय में पूछा, "मानव जी 'किताब-महल' में आने वाले थे ? अभी नहीं आये लगते ?"

"किताब-महल वालों ने उन्हें पहली एप्रिल को आने के लिए लिखा था। उन्होंने उत्तर दिया है: पहली एप्रिल को तो क्या आऊंगा ?"

महादेवी जी हँस पड़ीं।

और तब मैं चला आया।

मिस केंप का एक पत्र पाँच दिन हुए लंदन से आया था। अब तो आप स्थायी रूप से प्रयाग में रहने के लिए आ ही रहे हैं। कहने के लिए बहुत कुछ है। पत्रों में सब कुछ लिखा भी तो नहीं जा सकता। मिलने पर बतलाऊंगा।

सश्रद्धा

शिवचंद्र नागर

परिशिष्ट

महादेवी जी के गीतों के सम्बन्ध में 'मानव' जी की ऐसी धारणा रही है कि उनकी मार्मिकता सार्वकालिक एवं सार्वदेशिक होने से वे विश्व-साहित्य की निधि हैं, अतः बहुत दिनों तक वे इस प्रयत्न में रहे कि यदि उनके चुने हुए १०० गीतों का अँग्रेजी में अनुवाद करने वाला कोई उपयुक्त व्यक्ति मिल जाये तो बाहरी संसार को हिन्दी-काव्य की समृद्धि और शक्ति का परिचय मिल सकता है। इस काम के के लिये समय-समय पर कई व्यक्तियों को चुना गया, पर संतोष नहीं हुआ। अंत में मैंने अपने मित्र नन्दकुमार को उनसे मिलाया। नन्द कुमार जी अँग्रेजी के कवि हैं; पर उनकी मातृ-भाषा गुजराती होने के कारण हिन्दी बहुत अच्छी नहीं जानते। अतः यह निश्चय हुआ कि पहले प्रत्येक गीत की व्याख्या और सौंदर्य की विवेचना 'मानव' जी कर दें और फिर नन्दकुमार जी उसका अनुवाद करें। इस पद्धति पर सबसे पहले 'रश्मि' के 'दीप' शीर्षक गीत का अनुवाद हुआ। यह अनुवाद स्वीकृति और संशोधन के प्रस्तावों के लिये महादेवी जी के पास भेजा गया, परन्तु बहुत दिनों तक इसका कोई उत्तर नहीं मिला। इसी बीच नंदकुमार जी बम्बई चले गये और फिर उनका लौटना नहीं हुआ। प्रारंभिक पत्रों में इसी अनुवाद की चर्चा हुई है। । अनुवाद मूल सहित नीचे दिया जा रहा है।

नागर

दीप

किन उपकरणों का दीपक
किसका जलता है तेल?
किसकी वर्ति, कौन करता
इसका ज्वाला से मेल?

शून्य काल के पुलिनों पर
आकर चुपके से मौन,
इसे बहा जाता लहरों में
वह रहस्यमय कौन?

कुहरे-सा धुँधला भविष्य है
है अतीत तम घोर;
कौन बता देगा जाता यह
किस असीम की ओर?

पावस की निशि में जुगनू का
ज्यों आलोक--प्रसार,
इस आभा में लगता तम का
और गहन विस्तार!

इन उत्ताल तरंगों पर
सह झंझा के आघात,
जलना ही रहस्य है, बुझना
है नैसर्गिक बात!

THE LAMP

Which matter constituteth, this lamp of mystic glory?
Which oil doth cause its burning, to tell in flame its story?
Whose is the wick? Enkindleth who? What maketh it so bright?
Who passeth unknowingly, and flames with it unite?

On eternity's shore, midst voidness, who doth come?
Pacing silent and gentle, so quiet and so dumb,
To leave it on the waters floating up all alone,
Who is so mysterious, so hidden, so unknown?

As though in foggy dimness, its future is enshrouded.
Its past to it is as if in dead of dark enclouded.
Who can its course determine, and destination know?
To what unconfined object, doth it unconcious flow?

The more the glow worms twinkle, while in the rainy night.
The denser grows the darkness, to its deluding sight,
Embracing crazy waters, under the stormy sway.
Its glowing is but mystic, no wonder its decay.

———